ध्वनि और संगीत

प्रो० ललितकिशोर सिंह, M Sc
प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय





• भारतीय ज्ञानपीठ, काशी •

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला हिन्दी ग्रन्थाङ्क-३२
सम्पादक-नियामक लक्ष्मीचन्द्र जैन

DHWANI AUR SANGEET
(Music)
by
LALITKISHORE SINGH
Published by
Bhartiya Jnanpeeth Kashi

•

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ काशी
मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी
द्वितीय संस्करण १९६२
मूल्य साढ़े चार रुपये

•

भारतीय संगीतके आदि आचार्य

भरतकी

पुण्य स्मृतिमें

विषय-सूची

●

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक दो भागोंमें बाँटी जा सकती है। इनमें से पहले भागका विस्तार बारहवें अध्याय तक होगा, जिसमें ध्वनि विज्ञानके तथ्योंका वर्णन और मौलिक सिद्धान्तोंका स्पष्टीकरण है। दूसरे भागका क्षेत्र तेरहवें अध्यायसे अन्त तक होगा, जिसमें नये पुराने, सभी भारतीय स्वर ग्रामोंका वैज्ञानिक विश्लेषण है। पहले भागमें संवाद, संघात, ग्राम रचना विधि आदिका वर्णन अपेक्षाकृत विस्तारसे दिया गया है, इसलिए कि ध्वनि विज्ञानकी सामान्य पाठ्य-पुस्तकोंमें इनका स्पर्शमात्र पाया जाता है।

ध्वनि विज्ञानवाले भागकी रचना प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंकी कृतियोंके आधारपर हुई है। पर भारतीय संगीतवाले भागमें बहुतेरे ऐसे सिद्धान्तों और परिणामोंका निरूपण है, जिनका उत्तरदायित्व पूरे तौरसे लेखकपर ही है। जैसे—वैदिक, भरत और शार्ङ्गदेवके स्वर ग्रामका निरूपण, श्रुति, मूर्च्छना, न्यास आदि पारिभाषिकोंका तात्पर्य निर्णय, रामामात्यके ग्राम-गस्थान और 'स्वयम्भूस्वर' की व्याख्या, संवाद और यमकत्वके आधारपर भातखण्डेके दस ठाट विधानकी निष्पत्ति, इत्यादि। ये परिणाम विवाद ग्रस्त हो सकते हैं। विवाद वैज्ञानिक आधारपर हो तो इससे नये अनुसन्धानको प्रश्रय ही मिलेगा। पर यदि बद्धमूल धारणा और जड़ीभूत संस्कारसे विवाद खड़ा हो जाये तो इससे कोई लाभ नहीं। नये परिणामोंकी निष्पत्तिमें यथाशक्ति तर्क और प्रमाणका उपयोग किया गया है। फिर भी परम वाक्यके अधिकारी होनेकी स्पर्धा विज्ञानके विद्यार्थीके लिए निषिद्ध है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इस कृतिका प्रधान विषय हिन्दुस्तानी या उत्तरीय पद्धति है। यह अन्तिम अध्यायमें स्पष्ट हो

जाता है। प्रसंगवश आधुनिक दाक्षिणात्य पद्धतिपर भी विचार किया गया है और जहाँ-तहाँ पाश्चात्य पद्धतिका भी स्पर्श है। पर इन पद्धतियोंके साथ व्यावहारिक सम्पर्क न होनेसे इनकी विवेचनामें प्रामाणिकताका दावा नहीं किया जा सकता। अन्तिम अध्यायमें हिन्दुस्तानी-पद्धतिकी विशेषताओंको अधिक स्पष्ट करनेके लिए दाक्षिणात्य पद्धतिके साथ तुलना आवश्यक जान पड़ी। इस प्रसंगमें दाक्षिणात्य पद्धतिकी कई त्रुटियोंकी ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। यह आक्षेप जैसा लग सकता है, पर इसमें अपमानकी भावना नहीं है। दोनों पद्धतियोंका विभेद यदि तथ्यतः भ्रान्त सिद्ध हो जाये तो यह संतोष ही की बात होगी, क्योंकि परिणाममें दोनों पद्धतियोंकी एकता ही चरम लक्ष्य है।

ध्वनि विज्ञानका स्वतन्त्र समावेश हेल्महोज, एलिसेर्ना, जीन्स आदि प्रमुख वैज्ञानिकोंके लिखे हुए संगीतविषयक ग्रन्थोंके ढाँचेपर हुआ है। नाद और संगीतमें समवाय सम्बन्ध है, इसलिए नाद विज्ञानके द्वारा ही संगीतका भौतिक संस्थान समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ इसकी विशेष आकांक्षा है। आये दिन अनुसन्धानकी धुन सभी क्षेत्रोंमें दिखायी पड़ती है। आपाततः संगीत प्रेमी भी अनुसन्धानके लिए उत्तेजित हो उठे हैं। यह निःसन्देह शुभ लक्षण है। पर अभी उनकी दृष्टि भारतीय संगीतके अतिलौकिक, अतिप्राकृतिक और आध्यात्मिक पक्षपर ही केन्द्रित है। इसीलिए वनस्पतियोंपर रागोंका प्रभाव या भिन्न भिन्न रोगोंकी चिकित्सामें भिन्न भिन्न रागोंकी उपयोगिता जैसे विलक्षण, पर उत्तेजक, विषयोंमें ही उनका मनोयोग है। अनुसन्धानका क्षेत्र चुनना व्यक्तिगत रुचिपर निर्भर है, पर यह बता देना आवश्यक है कि भारतीय संगीतके भौतिक पक्षमें भी अनुसन्धानका बहुत बड़ा क्षेत्र है, और ऐसे अनुसन्धानके लिए ध्वनि विज्ञानका ज्ञान अनिवार्य है। इसलिए जो संगीत प्रेमी भौतिक अनुसन्धानमें रुचि रखते हों, उनके लिए यह ध्वनि विज्ञानका अङ्ग बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। अनुसन्धानका यह मार्ग न तो नूतन है और न विलक्षण। शार्ङ्गदेव, मतङ्ग आदिने संगीत

का उद्देश्य जनसाधारणको यथारुचि आनन्द देना ही बताया है। शार्ङ्गदेव ने संगीतके लिए 'अनाहतनाद'का निराकरण किया है। वस्तुतः संगीतमें रहस्यवाद कवियोंकी देन है, संगीत शास्त्रियोंकी नहीं।

परिशिष्टमें संगीतके संस्कृत ग्रन्थोंका उद्धरण विस्तारसे दिया गया है। वह इसलिए कि ये ग्रन्थ सभी जगह नहीं पाये जाते। इसी उद्देश्यसे मिस्री, फारसी आदि स्वर ग्राम भी दे दिये गये हैं। तीक्ष्ण दृष्टिवाले संगीत प्रेमी इनमें कुछ न कुछ कामकी बातें निकाल ही सकते हैं।

पाठ्यपुस्तक न होनेसे इस पुस्तकके प्रकाशनमें बहुत विलम्ब हुआ। इसी अपराधके कारण इसकी पाण्डुलिपि एक प्रमुख संस्थाके कार्यालयमें सालों पड़ी रही। धन्यवाद है भारतीय ज्ञानपीठके अधिकारियोंको, जिन्होंने इसके प्रकाशनका गुरु भार मुक्त हृदयसे ग्रहण किया। ज्ञानपीठके कार्यकर्ता भी प्रशंसाके पात्र हैं जिनकी तत्परतासे ही यह पुस्तक शीघ्र प्रकाशित हो सकी।

अंतमें उन मित्रोंको धन्यवाद है जिनकी शुभकामना पुस्तकके निर्माण कालमें निरन्तर लेखकके साथ रही है। लेखकपर सबसे अधिक आभार आचार्य र० कृ० आसुण्डीका है जिनका प्रोत्साहन, सहयोग और सत्परामर्श लेखकको सदा मिलता रहा है।

हि० वि० वि०
काशी

—ललितकिशोर सिंह

१ प्रवेश

१ यद्यपि ध्वनिका बोध कानोंसे ही होता है, पर इतनेसे ही ध्वनिकी धारणा पूरी नहीं होती। जब हम ध्वनि सुनते हैं तो यह खयाल होता है कि यह किसी-न-किसी द्रव्यमें पैदा हुई है और एक विशेष दिशासे, कुछ दूरी तय कर, हमारे पास आ रही है। अर्थात ध्वनिके बोधके लिए उत्पादक, माध्यम और ग्राहक, इन तीनोंका अस्तित्व अनिवार्य है। कभी-कभी कानोंमें आपसे आप गूँज उठा करती है। इसका कारण कान और मस्तिष्कका विकार है। ऐसी गूँजकी उत्पत्तिमें न तो किसी उत्पादक द्रव्य और न किसी माध्यमकी सहकारिता है, इसलिए इसे 'ध्वनि' नहीं कह सकते। संगीतके प्राचीन शास्त्रकारोंने इसीलिए योगके 'अनाहत नाद'को संगीतका आधार नहीं माना है। वे द्रव्यके आघातसे उत्पन्न 'आहत नाद'से ही संगीतका उद्भव मानते हैं।

तात्पर्य यह कि संगीत और विज्ञानकी परिभाषामें वह भौतिक ध्वनि ही आती है जो किसी भौतिक द्रव्यमें उत्पन्न होती है, किसी भौतिक माध्यममें चलकर कानों तक पहुँचती है और उनके ज्ञान तन्तुओंको छेड़ती है, जिससे मस्तिष्क उसका अनुभव करता है।[1]

---

१ यों तो अन्य द्रव्यके कम्पनसे, द्रव्यके माध्यममें उत्पन्न सभी आन्दोलनों या तरंगोंको ध्वनि कहते हैं, चाहे वह कानोंको सुनायी दे या न दे। आजकल भौतिक विज्ञानमें एक नये विभागकी वृद्धि हो रही है जिसका सम्बन्ध उन 'अतिध्वनिक' तरंगोंसे है जिनका ग्रहण करना कानोंकी क्षमताके बाहर है। पर संगीतमें उसी ध्वनिका समावेश है जिसे कान ग्रहण कर सकें।

२ ध्वनि द्रव्यमें कैसे उत्पन्न होती है, इसपर विचार करना आवश्यक है। किसी कांसेके कटोरेको ठोकर लगनेसे या किसी तने हुए पीतलके तारको छेड़नेसे आवाज सुनायी पड़ती है। वैसे ही टेबलपर हाथ मारनेसे भी शब्द सुनायी देता है। कटोरे, तार या टेबलको पटककर ध्यानसे देखनेपर वे हिलते हुए मालूम होंगे। तबलेके परदेपर बालूके कण फैला दिये जायँ तो तबलेको अँगुलियोंसे ठुकराते ही बालूके कण नाच उठेंगे। इसलिए यह अनुभव सिद्ध है कि उत्पादक द्रव्यके कम्पनसे ध्वनिकी उत्पत्ति होती है।

पर हाथको धीरे धीरे वायुमें हिलानेसे ध्वनि सुनायी नहीं देती। वैसे ही एक मोटी लाठी या एक चाबुकको हाथमें लेकर उसे अपने चारों ओर धीरे धीरे घुमायें तो पहले कोई ध्वनि सुनायी न देगी। पर यदि उसके घूमनेकी गतिको धीरे धीरे बढ़ायें तो एक अवस्थामें धीमी आवाज सुनायी देगी, और जैसे-जैसे गति बढ़ती जायगी वैसे-वैसे आवाज तेज होती जायगी। मतलब यह कि हर तरहके कम्पनसे ध्वनि पैदा नहीं होती। कम्पनकी एक सीमा है जिससे धीमा होनेसे द्रव्यमें कम्पन होनेपर भी वह ध्वनि उत्पन्न नहीं करता।

३ कम्पन काफी तेज होनेसे ध्वनि पैदा होती है। पर वह कानों तक कैसे पहुँचती है? साधारणतः कान और उत्पादकके बीच वायु रहती है और इसी वायुमें ध्वनिका संचार होता है। पर इससे यह न मान लेना चाहिए कि वायु ही ध्वनि-गमनका एकमात्र आश्रय या माध्यम है। कोई पानीके भीतर ईंट बजावे तो पानीके भीतर ही दूसरा व्यक्ति ईंट बजनेकी आवाज काफी दूरी तक सुन सकता है। एक लम्बी सूखी लकड़ीके लम्बे कुन्देके एक सिरेपर कोई कान रखे तो दूसरे सिरेपर धीरे धीरे चाकूसे कुरेदनेकी खरखराहट साफ सुनायी देगी। रेलवे लाइनपर कान लगानेसे बहुत दूरपर लगी हुई धीमी ठोकर या गाड़ीकी आवाज स्पष्ट सुनायी देगी। इन सब अनुभवोंसे यह मानना पड़ता है कि ध्वनि-गमनका माध्यम वायुकी तरह गैस, जलकी तरह द्रव, या लोहे-लकड़ीकी तरह ठोस—इनमें-से कोई

भी द्रव्य हो सकता है।

४ अब प्रश्न यह उठता है कि किसी द्रव्यके अभावमें अर्थात शून्यमें ध्वनिका संचार सम्भव है या नहीं। इस प्रश्नका निर्णय एक साधारण प्रयोगसे हो सकता है। एक बड़ी कांचकी बोतलके साथ वायु निकालनेवाला पम्प लगा दिया जाये। उस बोतलमें एक बिजलीकी घण्टी लटका दी जाये जिसके तार और बटन बाहर हों। बोतल इस तरह बन्द कर दी जाये कि हवा आ-जा न सके। अब बटन दबानेसे बिजलीकी घण्टी बजने लगेगी और ध्वनि बाहर सुनायी देगी। पर पम्पके द्वारा हवा जैसे-जैसे बाहर निकलेगी वैसे-ही-वैसे ध्वनि धीमी पड़ती जायगी। यहांतक कि एक अवस्थामें आंखोंसे घण्टी बजती हुई दिखायी देगी पर कोई ध्वनि सुनायी न पड़ेगी। इस साधारण प्रयोगसे, जिसका प्रबन्ध किसी भी प्रयोगशालामें आसानीसे हो सकता है, यह सिद्ध होता है कि ध्वनि-संचार द्रव्यके अभावमें, या शून्यमें नहीं हो सकता। उसके लिए किसी द्रव्यका माध्यम, चाहे वह गैस, द्रव या ठोस अवस्थामें हो, आवश्यक है।

इस प्रकार उत्पादक द्रव्यमें उत्पन्न कम्पन गैस, द्रव या ठोस माध्यमके द्वारा कानों तक पहुँचता है। इस आगत कम्पनके वेगसे कानके परदे भी कम्पित हो उठते हैं और फिर इन परदेके कम्पनसे, हड्डियां, परदे और द्रव जटिल पर सूक्ष्म यन्त्रके द्वारा, श्रुति-तन्तुओंमें स्पन्दन पैदा होते हैं। इन्हीं स्पन्दनोंसे मस्तिष्कको ध्वनिका बोध होता है।



२ कम्पन और आवृत्ति

५ यह साधारण अनुभवकी बात है कि कुछ ध्वनियाँ कानोंको खास तौरसे प्रिय मालूम होती हैं जैसे बाँसुरीकी आवाज या तारोंकी झनकार। ऐसी ध्वनियोंको संगीत ध्वनि या नाद कहते हैं। इनके अतिरिक्त सारी ध्वनियोंको 'नाद' कहते हैं। इस पारिभाषिक अर्थमें राव कहेंगे। राव' का प्रयोग यहाँ बहुत ही व्यापक अर्थमें हुआ है। वैज्ञानिक परिभाषामें टेबुलपर हाथ मारनेसे या साधारण बोल चालसे जो ध्वनियाँ निकलती हैं वे सब राव कही जाती हैं। रावसे अभिप्राय संगीतेतर ध्वनिसे है।

यह बताया जा चुका है कि ध्वनिकी उत्पत्ति द्रव्यके कम्पनसे होती है। राव और नादका भेद इस कम्पनकी प्रक्रियामें ही प्रत्यक्ष हो जाता है। रावके उत्पादकका कम्पन क्षणिक और अनियमित होता है और वह माध्यमको क्षणिक अभिघातसे आन्दोलित कर देता है। इसीसे कान भी एक आकस्मिक अभिघात या धक्का ही अनुभव करता है। इसके विपरीत नादके उत्पादकका कम्पन नियमित और लगातार होता है। इससे माध्यम और कानके परदेमें भी नियमित स्पन्दन पैदा होता है। मनुष्यके गलेसे, या सामान्यत सभी आवाजें ग्म्स, दोनों प्रकारकी ध्वनियाँ निकलती हैं।

यह सम्भव है कि अनुभवकी दृष्टिसे कहीं नाद राव सा जान पड़े और राव नाद-सा। किसी ऐसे कमरेमें जहाँ दीवारोंसे ध्वनिका परावर्तन अधिक होता हो मधुर संगीत भी राव-सा ही जान पड़ेगा और किसी हरनकी आवाज, जो कठिन पत्थरपर उसके अभिघातसे पैदा होती है मधुर संगीत सी मालूम होगा। पर इससे ऊपर दिया हुआ नाद और रावका पारिभाषिक भेद उपयुक्त ही सिद्ध होता है।

आजकल नगरोंका राव एक सामाजिक समस्या हो गया है इससे

ध्वनिविज्ञानका ध्यान रावके अध्ययनकी ओर आकर्षित हुआ है। पर संगीतका सम्बन्ध नादसे है, रावसे नहीं।

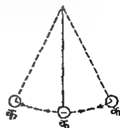
६ नाद द्रव्यके नियमित कम्पनसे पैदा होता है। किसी सितार या तमूरेके तारको छेड़कर उसे ध्यानसे देखनेपर इस कम्पनके रूपकी कुछ धारणा



आकृति १

हो सकती है। तारको छेड़नेपर वह अपनी स्थिति क (आ० १) से वक्र होकर ऊपर का क' पर आता है। यहां इसकी गति शून्य हो जाती है और यह क की ओर लौटता है। पर क पर अब यह अपने वेगके कारण ठहर नहीं पाता, इससे दूसरी ओर क" तक जाता है। क" पर इसकी गति शून्य हो जाती है और यह पहले ही की तरह क की ओर लौटता है। इस बार भी यह क पर ठहर नहीं सकता। इससे फिर पहला कम्पनकी आवृत्ति होती है। कम्पनकी इस लगातार और नियमित आवृत्तिसे ही नाद पैदा होता है।

पर नादोत्पादक द्रव्यकी गति इतनी तीव्र होती है कि उसे आँखोंसे पर खना कठिन है। इसीसे दोलकके द्वारा, जो इस नियमित कम्पनका स्थूल रूप प्रत्यक्ष कर देता है, इसकी विवेचना की जा सकती है। एक हलके और दृढ़ धागेमें किसी धातुका भारी गोली लटकाकर दोलक बनाया जा सकता है जैसा राजमिस्तिरीका साहुल होता है। इसे स्थितिके स्थान क (आकृति २) से हिलाकर छोड़ दें तो यह बहुत देर तक डोलता रहेगा। गोली क से क' पर जायेगी और वहां क्षणिक स्थितिके बाद इसकी दिशा बदलेगी।



आकृति २

यह फिर लौटकर क पर आवेगा। पर यहाँ अपने वेगके कारण ही यह रुक न सकेगी और क" तक पहुँचेगी। वहाँसे फिर पहलेकी ही तरह लौटकर क पर पहुँचेगी। इसी कम्पनकी आवृत्ति बहुत देर तक होती रहेगी।

इस दोलकके कम्पनमें और तारके कम्पनमें कोई अंतर नहीं है। नादके सभी उत्पादकोंमें इसी प्रकारका कम्पन पाया जाता है।

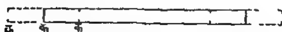
७ (आ० १ २) क से क' क' से क, क से क" और फिर क" से क तककी गतिको एक कम्पन कहते हैं। यह एक ऐसा टुकड़ा है जिसकी आवृत्ति होती रहती है। क–क'–क"–क का चक्र पूरा करनेमें जितना समय लगता है उसे 'कम्पन-काल' या संक्षिप्त रूपमें 'काल' कहते हैं। क–क' या क–क" की दूरीको 'कम्प विस्तार' कहते हैं। एक सेकेण्डमें किसी दोलक या तारका जितना कम्पन होता है उसे उस दोलक या तारकी 'आवृत्ति' कहते हैं। संगीतकी दृष्टिसे यह 'आवृत्ति' सबसे अधिक महत्त्वकी परिभाषा है।

८ ऊपरकी परिभाषासे काल और आवृत्तिका सम्बन्ध बड़ी सरलतासे निकाला जा सकता है। यदि काल क है और आवृत्ति आ है, तो

$$\text{आ} = \frac{1}{\text{क}} \qquad (१)$$

अर्थात् यदि काल $\frac{1}{10}$ सेकण्ड हो तो आवृत्ति १० कम्पन प्रति सेकण्ड होगी।

९ आकृति १ के अनुसार तारका कम्पन आड़ी दिशामें होता है। पर यदि अंगुलियोंमें रालकी बुकनी लगाकर उनसे तारको रगड़ें तो एक बहुत ही महीन आवाज सुनायी पड़ेगा। इस अवस्थामें कम्पन तारकी लम्बाईकी दिशामें ही होता है (आ० ३)।



आकृति ३

पहले प्रकारके कम्पनोंको अनुप्रस्थ कहते हैं और दूसरे प्रकारके कम्पनको 'अनुदैर्घ्य'। किसी काँच या पीतलके टुकड़ेपर रालकी महीन बुकनी छिड़क

कर उसपर किसी धातुके छडको तिरछे रगडें तो अनुदैर्घ्य कम्पनकी ध्वनि काफ़ी तेज सुनायी पड़ेगी। कभी कभी इसराज या बेला बजानेमें जब कमानी आड़ी न चलकर तिरछी हो जाती है और तारको लम्बाईकी दिशामें रगड़ा देती है तो इसी तरहके शब्द निकलते हैं।

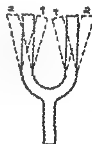
१० • धातुके दण्ड या छड़में, तारकी तरह अनुप्रस्थ कम्पन भी होता है। एक डण्डेके दोनों सिरोंके नीचे दो तिकोनी गिट्टियां रख दें और बीचमें काठकी हथौड़ीसे ठोंककर मारें तो डण्डसे अनुप्रस्थ कम्पनकी ध्वनि निकलेगी। इस कम्पनकी आवृत्ति मामूली तौरसे, डण्डेके अनुदैर्घ्य कम्पनकी आवृत्तिसे बहुत ही कम होती है। (आ० ४)



आकृति ४



(क)



(ख)

आकृति ५

अनुप्रस्थ कम्पनके लिए एक चौकोर लोहेके डण्डको आ० ५ (ख) की तरह मोड़कर एक यन्त्र बनाया जाता है जिसे द्विभुज कहते हैं। इसके नीचे बीचो-बीच लोहेकी डण्टी लगी रहती है, जिसे अँगुलियोंसे पकड़कर द्विभुजको टकरानेसे इसकी दोनों भुजाओंमें कम्पन होने लगता है। इसी अवस्थामें द्विभुजको टेबुलपर डण्टीके सहारे खड़ा कर दें तो इसके कम्पनसे उत्पन्न ध्वनि साफ़ सुनायी पड़ेगी। शब्द अध्ययनके लिए यह द्विभुज बड़ा ही उपयोगी यन्त्र है। यह आगे बताया जायेगा कि इसमें-से शुद्ध स्वर निकलता है और इसीलिए इसका स्वर तुलनाके लिए प्रमाण माना जाता

... इसके कम्पनका ढंग आ० ५ (ख) में दिखाया गया है (अनुच्छेद ३४)। किसी एक भुजाको ठुकरानेसे, पहले दोनों ही भुजाएँ एक दूसरेकी तरफ झुकती हैं, फिर एक-दूसरेसे दूर हटकर फैल जाती हैं। यह क्रिया बार-बार होती रहती [redacted]।

११ हम देखते हैं कि तार या दोलकको छेड़ देनेपर वह थोड़ी देर तक हिलता रहता है फिर धीरे-धीरे हिलना बन्द हो जाता है। यदि दोलककी एक आवृत्तिके समयको घड़ीसे नापें तो पता चलेगा कि यह समय सदा बराबर ही रहता है। उसका विस्तार जरूर घटता जाता है जो अन्तमें शून्य हो जाता है पर कालमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। थोड़ी देर हिलनेके बाद दोलककी गोलीकी चाल सुस्त मालूम होती है, इससे बहुधा यह धारणा होती है कि दोलकका आवृत्ति काल बढ़ गया, अर्थात् आवृत्ति घट गयी। पर चालकी सुस्तीके साथ साथ विस्तार भी घट जाता है इसलिए आवृत्ति-काल सदा बराबर रहता है। मामूली तौरसे यह कहा जा सकता है कि किसी भी कम्पमान वस्तुकी आवृत्ति विस्तारपर निर्भर नहीं है। विस्तार बहुत अधिक बढ़ जानेपर आवृत्तिके ऊपर कुछ असर अवश्य पड़ता है। पर साधारण अवस्थामें विस्तार और आवृत्ति एक दूसरेसे स्वतन्त्र हैं। अब, तार चाहे अ म ज (आकृति १) तक ही हिले या इससे अधिक या कम, पर तारकी आवृत्ति ज्यों की-त्यों रहेगी।

किसी वस्तुकी आवृत्ति उसकी लम्बाई, मोटाई घनत्व स्थिति-स्थापकत्व¹ आकार आदि अनेक भौतिक गुणोंपर निर्भर है। जबतक इन गुणोंमें कोई अन्तर नहीं होता तबतक वस्तुकी एक सेकण्डकी कम्पन संख्या या आवृत्तिमें भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। एक पतले तारकी लम्बाई मोटाई और खिंचाव बराबर एक-सा रहे तो जब कभी भी छेड़नेपर उसकी

---

१ जो वस्तु दबानेसे जितना कम दबता है या मड़ोरनेसे जितना कम मुड़ता है, वह उतना ही अधिक स्थिति स्थापक माना जाता है।

प्रति-सेकेण्ड कम्पन संख्या एक ही निकलेगी।

१२ आगे कुछ मुख्य मुख्य वस्तुओंकी आवृत्तिका उनके भिन्न भिन्न भौतिक गुणोंके साथ सम्बन्ध दिखाया जाता है—

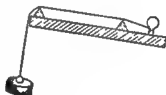
(१) तार—

तारकी आवृत्तिके सम्बन्धमें मर्सनने नीचे दिये हुए नियम निकाले हैं

(क) आवृत्ति तारकी लम्बाईकी व्युत्क्रम (उलटा) अनुपाती होती है। अर्थात्, तारको दूना लम्बा कर देनेसे आवृत्ति आधी हो जाती है। (पाइथागोरसने इस सम्बन्धका आविष्कार किया था।)

(ख) यदि लम्बाई बराबर रखें और खिंचावका बल बढ़ावें तो कम्पनकी आवृत्ति इस बलके वर्गमूलके अनुपातसे बढ़ती है।

काठके परदेपर बैठाया हुई दो तिपाही घोड़ियापर तार फैला दें और उसके एक छोरसे १ सेरका बाट लटका दें तो तार तन जायगा। (आ० ६)। इस तार को छेड़नेपर एक निश्चित आवृत्तिकी ध्वनि निकलेगी। अब यदि एक सेरके बदले चार सेरका बाट लटकावें तो तार की आवृत्ति दूनी हो जायेगी।



आकृति ६

(ग) लम्बाई और खिंचाव समान रहे तो आवृत्ति तारके भारके वर्गमूलकी व्युत्क्रम अनुपाती होती है। अर्थात् कुल तारका भार चौगुना हो जाये तो आवृत्ति आधी हो जायगी।

यहाँपर यह ध्यानमें रहना चाहिए कि तारका भार दो तरहसे बढ़ सकता है—एक तो तारकी मोटाई बढ़नेसे दूसरे तारकी धातुका घनत्व अधिक होनेसे। जैसे बराबर लम्बाई, मोटाई और खिंचावके लोहे और पीतलके तारमें लोहेवालेकी आवृत्ति ज्यादा होगी, क्योंकि लोहा पीतलसे हल्का होता है।

(२) डण्डा—

(क) अनुप्रस्थ कम्पन—डण्डेके अनुप्रस्थ कम्पनकी आवर्ति स्थिति स्थापकत्वके वर्गमूलकी अनुपाती उसके घनत्वकी व्युत्क्रम अनुपाती और लम्बाईके वर्गकी व्युत्क्रम अनुपाती होती है।

यदि एक ही डण्डेका विचार करें तो उसकी आवर्ति लम्बाईके वर्गकी व्युत्क्रम अनुपाती होगी। अर्थात् अगर किसी डण्डेकी लम्बाई आधी कर दी जाय तो उसकी आवर्त्ति चौगुनी हो जायेगी और लम्बाई तिहाई कर देनेपर आवर्ति नौगुना बढ़ जायगा। डण्डा जितना छोटा होगा आवर्ति उतनी ही अधिक होगी। मोटाई बढ़नेसे डण्डेकी आवर्ति बढ़ती है।

(ख) अनुदैर्घ्य कम्पन—डण्डेका अनुदैर्घ्य कम्पन लम्बाईका व्युत्क्रम अनुपाती होता है। अर्थात् लम्बाई आधी करनेसे आवर्ति दूनी और लम्बाई तिहाई करनेसे आवर्ति तिगुनी हो जाती है। इसपर मोटाईका कोई असर नहीं होता। (अनुप्रस्थ कम्पनसे तुलना करो।)

(३) द्विभुज—



आकृति ७

द्विभुजकी आवर्ति लम्बाईके वर्गकी व्युत्क्रम अनुपाती और कम्पनकी दिशामें चौड़ाईकी अनुपाती होती है। कम्पन की आड़ी दिशाकी चौड़ाईका आवर्तिपर कोई असर नहीं पड़ता। अर्थात् द्विभुज जितना नाटा और मोटा होगा, इसकी आवर्ति उतनी ही अधिक होगी। आ० ७ में कम्पन की दिशामें चौड़ाई च और लम्बाई ल दिखायी गयी है।

(४) परदा (ड्रम, चमड़ा)—

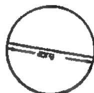
(क) चौखूटा परदा—परदेकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई या घनत्व बढ़ता है तो आवर्त्ति घटती है और जब तनावका जोर बढ़ता है तो आवृत्ति भी बढ़ती है।

(ख) गोल परदा—व्यास घनत्व या मोटाई बढ़नेसे आवृत्ति घटती है और तनाव बढ़नेसे आवर्ति बढ़ती है।

(५) चद्दरा (जैसे पीतलका)—

चौखूटे चद्दरमें लम्बाई चौड़ाई बढ़नेसे और गोल चद्दरमें व्यास बढ़नेसे आवृत्ति घटती है और मोटाई बढ़नेसे आवृत्ति बढ़ती है।

(६) घण्टी—



आकृति ८

गोल चद्दरकी तरह ही घण्टोकी दीवारकी मोटाई बढ़नेसे आवृत्ति बढ़ती है और मुँहकी गोलाईका व्यास बढ़नेसे आवृत्ति घटती है।

(७) वायु (जैसे बाँसुरीकी नलीके भीतरका वायु)—

अवच्छिन्न वायु या गैसकी लम्बाई बढ़नेसे आवृत्ति घटती है और उसमें ध्वनिका वेग बढ़नेसे आवृत्ति बढ़ती है।

३ तरंग और वेग

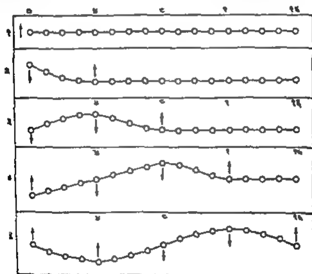
१३ जब किसी वस्तुमें कम्पन होता है तो उससे चारों ओरकी वायुमें एक प्रकारका आन्दोलन पैदा हो जाता है। यह आन्दोलन वायुमें मण्डलाकार होकर फैलता और हमारे कानोंके छिद्रसे होकर भीतरके परदेको कम्पित कर देता है। इस आन्दोलनका प्रसार तरंगके रूपमें होता है, ठीक उसी तरह जैसे जलके ऊपरी तलको कहीं बीचमें हिला देनेपर चारों ओर छोटी छोटी लहरें फैल जाती हैं।

कुछ तरंग या लहरके रूपसे तो सभी कोई परिचित हैं। पर यह कम्पनसे कैसे पैदा होती है यह जाननेकी बात है। जलकी तरंग राशिको हम प्रायः देखा करते हैं। कहीं हम बड़े बड़े समुद्री हिलोरोंको देखकर डरते हैं और कहीं शान्त नदीके किनारे छोटी छोटी लहरोंकी श्रेणी देखकर प्रसन्न होते हैं। ये लहरें कभी हमारी ओर दौड़ती हुई नजर आती हैं कभी दूर भागती हुई मालूम पड़ती हैं। पर ध्यानसे देखनेपर पता चलेगा कि आन्दोलनके कारण जलका कोई खण्ड टूटकर हमारी ओर नहीं आता। जलका छोटेसे छोटा खण्ड भी अपना स्थान नहीं छोड़ता। वह अपने स्थानपर ही ऊपर-नीचे हिलकर अपने आगेके खण्डको आन्दोलित कर देता है। इस प्रकार आन्दोलन आगे बढ़ता और फैलता जाता है। जलके ऊपर हलके काठका कोई टुकड़ा उतराता हो, तो यह प्रत्यक्ष हो जायगा कि जब उस टुकड़ेको तरंग पार करती है तो वह तरंगके साथ सिर्फ ऊपर नीचे हिलता है। हरे धानके खेतकी मेंड़पर खड़े होकर देखो—हवाके मामूली झोंकेसे धानमें एक लहर सी चलती हुई दीख पड़ेगी। लहरके साथ कोई पौधा नहीं चलता। लगातार पौधोंका सिरा, एकके बाद एक झुकता जाता है। सिरोंके इस प्रकार नियमित अन्तरपर झुकनेसे ही लहर बनती है जो

चलती हुई मालूम पड़ती है। इस तरह अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं जिनसे तरगकी कल्पना स्पष्ट होती है।

मतलब यह कि जब किसी माध्यमका प्रत्येक खण्ड या कण, एकके बाद दूसरा, कम्पित होता है तो यही कम्पन या आदोलन तरगका रूप लेकर आगे चलता है।

१४ आ० ९ में तरग निर्माणकी प्रक्रिया बतायी गयी है। इस समस्याको स्थूल रूप देनेके लिए पहली पक्तिमें जलके ऊपरी तलके १७ कण दिखाये गये हैं। कणोपर क्रमानुसार ०, ४, ८, १२ और



आकृति ९

१६ के अक लगा दिये गये हैं। शून्य अकवाला कण दोलककी गोलीकी तरह कम्पित होता है और इस प्रकार अपने कम्पनसे तरग पैदा करता है। पहली पक्तिमें सभी कण एक समतलमें हैं। दूसरी पक्तिमें कण ० अपने पूरे विस्तार तक पहुँच गया है। कण ० के साथ लगे हुए कणोकी श्रेणी भी

इसके साथ ही साथ ऊपरको खिंच आयी है। इस खिंचावका असर कण ४ तक पहुँच गया है जो ऊपर चलनेको तैयार है। गतिकी दिशा तीरसे बतायी गयी है। जितने समयमें कण ० ऊपर तक पहुँचा उतने समयमें इसके खिंचावका असर कण ४ तक पहुँच गया। तीसरी पंक्तिमें जब कण ० लौट कर फिर अपने पहले समतलके स्थानपर पहुँचता है तो कण ४, पहले खिंचावके कारण, अपने पूरे विस्तार तक जाता है। यहाँपर उस कण ० के साथ ० और ४ के बीचवाले कण आगे पीछे नीचेकी ओर चले वैसे ही कण ४ के साथ ४ और ८ के बीचवाले कण ऊपरको खिंच आये और इस खिंचावका असर कण ८ तक पहुँच गया। चौथी पंक्तिमें कण ० नीचेकी ओर अपने विस्तारके अन्तमें पहुँच गया है। इतने समयमें ४ पहलेके समतलमें और ८ ऊपरकी ओर अपने विस्तारके अन्तमें पहुँचा है। ८ के खिंचावका असर १२ पर पड़ा जो अब ऊपरकी ओर विचलित हो रहा है। पाँचवीं पंक्तिमें ० अपने पहलेके समतलमें ठीक आरम्भकी दशामें पहुँच गया है। इस समय ४ नीचेकी ओर अपने विस्तारके अन्तमें, ८ समतलमें और १२ ऊपरकी ओर अपने विस्तारके अन्तमें पहुँचा है। १२ के खिंचावका असर अब १६ पर पड़ रहा है। १६ अब ठीक उसी तरह ऊपरको जायगा जिस तरह ० कण। दोनोंकी दशा एक है।

पाँचवीं पंक्तिपर ध्यान देनेसे पता चलता है कि जितने समयमें कण ० ने एक पूरा कम्पन समाप्त किया उतने समयमें आन्दोलन कण १६ तक पहुँच गया और बीचके सारे कणोंका एक वक्र बन गया। ऊपरका तल अब सम न रहा — ० से १६ तकका आधा नीचेको धँस गया और आधा ऊपरको उभर आया (आ० १०)। इस



आकृति १०

प्रकार एक खाल और एक उभारसे बने हुए ० से १६ तकके सारे वक्रको एक तरंग कहते हैं। इसकी सीधी लम्बाई 'ल' को तरंगमान कहते हैं।

समतलसे उभारकी ऊँचाई या घालकी गहराई 'व' या तरंगविस्तार कहते हैं।

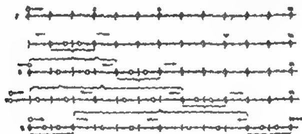
आकृति ९ की सारी पंक्तियोंको ध्यानसे पता चलेगा कि कण० के एक कम्पनमें एक पूरा तरंग बन गया और आंदोलन तरंगमान ■ दूरी तक पहुँच गया। अब ० के दूसरे कम्पनके साथ साथ १६ का पहला कम्पन शुरू होगा और वह अपने एक कम्पनमें अपने आगे पहले जैसी ही तरंग बना देगा। अर्थात् ० के दो कम्पनमें दो तरंग बनेंगी और आन्दोलन २×ल तक पहुँच जायगा। इस प्रकार यदि कण ० १ सेकण्डमें १० कम्पन पूरा करता है तो आन्दोलन, तरंग ऊपर एक सेकण्डमें १० ल तक पहुँचता है। एक सेकण्डमें तरंग जितनी दूर चलती है वही उसका वेग माना जाता है। मान लो कि हम कण ० के ऊपर कम्पित द्विभुजकी एक भुजा रखते हैं जिसकी आवृत्ति 'आ' है। द्विभुजकी प्रेरणासे कण ० में १ सेकेण्डमें 'आ' कम्पन होंगे और आन्दोलन एक सेकण्डमें आ×ल तक पहुँचेगा। यही तरंगका वेग हुआ अर्थात् आवृत्ति और तरंगमान मालूम हों तो तरंगका वेग आसानीसे निकाला जा सकता है। जैसे—

वे=आ×ल। (२)

१५ ऊपर जलकी तरंगकी चर्चा की गयी है। पर वायुकी तरंगमें एक विलक्षणता है। जलके अणु एक-दूसरेसे प्राय चिपके हुए होते हैं। इसलिए जब एक अणु ऊपर उठता है तो उसके अगल-बगलके अणु भी उसके साथ बँधे-से ऊपरको खिंच आते हैं। पर वायु या किसी भी गैसके अणु एक दूसरेसे स्वतन्त्र होते हैं। इसलिए जलके अणुकी तरह ऊपर उठकर ये अपने अगल बगलके अणुओंको विचलित नहीं कर सकते। ये तो अपने सामनेके अणुको धक्का मारकर ही आन्दोलनको आगे बढ़ा सकते हैं। इसलिए जहाँ जलकी तरंगकी दिशा इसके अणुओंके कम्पनकी दिशाके साथ समकोण बनाती है अर्थात् आड़ी होती है वहाँ वायु या गैसकी तरंगकी दिशा अणुओंके कम्पनकी दिशामें ही होती है। इस प्रकार, तारके कम्पनकी तरह ही तरंग भी दो प्रकारकी होती है। पहली

अनुप्रस्थ तरंग और दूसरी अनुदैर्घ्य तरंग। ऊपरके विचारसे यह स्पष्ट है कि गैसोंमें केवल अनुदैर्घ्य तरंग पैदा की जा सकती है, किन्तु द्रव या ठोसमें दोनों ही प्रकारकी तरंगें पैदा हो सकती हैं।

१६. वायुके अणुके कम्पनसे अनुदैर्घ्य तरंग कैसे पैदा होती है, यह आ० ११ में बताया गया है। एक सीधी रेखामें १३ अणुओंके स्थान



आकृति ११

खड़ी रेखाओंसे चिह्नित किये गये हैं। दो अणुओंके बीचकी दूरी, दो बिन्दुओंके द्वारा तीन बराबर हिस्सोंमें बाँटी गयी है। पहली पंक्तिमें सभी अणु अपने अपने स्थानपर हैं। दूसरी पंक्तिमें अणु ० कम्पित होकर अपने विस्तारके अन्त तक पहुँचता है, जो दो अणुओंके बीचके अन्तरके बराबर मान लिया गया है। अणु ० अपने आगेके अणुको धक्का देकर कम्पित कर देता है और इस प्रकार कम्पन आगे बढ़ता है। यह कम्पन आगेके अणुओंमें क्रमशः कुछ समयके अन्तरसे पहुँचता है। इसलिए जिस समय अणु ० अपने पूरे विस्तारपर पहुँचता है उस समय अणु १ अपने आगे दूसरे बिन्दुपर, और अणु २ बिन्दु १ पर पहुँचता है। अणु ३ चलनेको तैयार है, अर्थात् अणु ० के कम्पनका असर अब अणु ३ तक पहुँच गया। दूसरी पंक्तिको ध्यानसे देखनेसे पता चलेगा कि ० से ३ तकके अणु एक-दूसरेके पास आ गये हैं। अणुओंके इस प्रकार पास-पास आ जानेसे 'संघनता' पैदा होता है। तीसरी पंक्तिमें, जब अणु ० अपने पहले स्थानपर पहुँचता है तो

'सघनता' की दशा ३ से ६ तक पहुँचती है। अब तीसरी पंक्तिका पहलीके साथ तुलनेपर मालूम होगा कि ० और ३ के बीचके अणु एक-दूसरेसे दूर-दूरपर हैं। इस प्रकार यहाँ 'विरलता' पैदा हो गया है। चौथी पंक्तिमें 'सघनता' ६ से ९ तक पहुँची है और 'विरलता' ० से ६ तक। पाँचवी पंक्तिमें सघनता ९ से १२ तक और विरलता ३ से ९ तक पहुँच गयी हैं। इस प्रकार ० ने एक पूरे कम्पनमें सघनता १२ तक पहुँच गयी और अणु १२ अब ठीक ० की दशामें कम्पन आरम्भ करनेको तयार है। इससे आगे ० दूसरी सघनता और १२ अपनी पहली सघनता पैदा करेगा।

पाँचवीं पंक्तिसे यह स्पष्ट है कि सघनताके पीछे विरलता लगा रहती है। इस एक सघनता और एक विरलताको मिलाकर एक अनुदैर्ध्य तरंग मानी जाती है—ठीक उसी प्रकार जैसे एक उभार और एक गाल मिलकर एक अनुप्रस्थ तरंग बनती है। यदि सघनताकी मात्राको उभारसे और विरलताकी मात्राको खालसे प्रकट करें तो दोनों प्रकारकी तरंगें एक ही रूप ले लेती हैं। इसलिए अनुदैर्ध्य तरंग भी आ० १० के ढंगसे ही प्रकट की जा सकती है। यहाँपर एक सघनता और एक विरलताके बीचकी दूरी तो तरंगमान होगी और पहली पंक्ति (आ० ११) की अपनी अन्तिम सघनता जितनी अधिक होगी वही तरंग विस्तार होगी।

अनुप्रस्थ तरंगकी तरह ही, अगर तरंगमान मालूम हो और अणुओंकी आवृत्ति मालूम हो तो अनुदैर्ध्य तरंगका वेग भी निकाला जा सकता है।

१७ अनुच्छेद ११ में आवृत्तिका सम्बन्ध वस्तुके आकार-प्रकारके साथ दिखाया गया है और यहाँ आवृत्तिका सम्बन्ध तरंगवेग और तरंग मानके साथ दिखाया गया है। विचार करनेपर पता चलेगा कि इन दोनों बातोंमें कोई भेद नहीं है। उदाहरणके लिए तारकी आवृत्तिको लें। यह बताया जा चुका है कि तारकी आवृत्ति उसकी लम्बाई, खिंचाव और तौल-पर निर्भर है। यहाँ लम्बाईका सम्बन्ध तरंगमानसे है और खिंचाव और तौलका सम्बन्ध तरंगवेगसे है। खिंचाव जितना अधिक और तौल जितना

कम होगा, तारमें अनुप्रस्थ तरगका वग उतना ही अधिक होगा। इसी प्रकार डण्डेमें उसके स्थिति स्थापकत्व और घनत्वके अनुसार अनुदध्य तरगका वग घटता-बढता ह। वायुमें तरगका वेग वायुका दाव बढनेसे बढ़ता ह और घनत्व बढनसे घटता ह। मनत्व यह कि अनुच्छेद ११ में हर एक वस्तुकी आवृत्ति निकालनेके लिए जिन जिन माप-तौलोंकी आवश्यकता है वे दो भागोंमें बाँट जा सकते हैं। पहला भाग तो स्थिति स्थापकत्व, घनत्व आदि भौतिक गुणोंका ह जिसका सम्बन्ध वगसे ह और दूसरा भाग आकारके मापका जसे लम्बाई, चौडाई व्यास आदि जिसका सम्बन्ध तरंग मानसे ह।

१८ किसी वस्तुमें घनत्व आदि निश्चित और स्वाभाविक गुण ह, इसलिए उस वस्तुमें ध्वनिका वग भी निश्चित ह। डण्डे और चदरमें, स्थिति-स्थापकत्व उनके अणुओंके आपसके खिंचावपर निभर ह। तार और परदेमें यह खिंचाव कृत्रिम बल लगाकर पदा किया जाता है। इसलिए इस कृत्रिम खिंचावको यदि बदला न जाय तो यह भी स्वाभाविक गुणकी कोटिमें ही डाला जा सकता ह। इस प्रकार, यह मानना पडता ह कि किसी वस्तुमें ध्वनिका एक बधा हुआ वग होता ह जो उसकी स्वाभाविक दशापर निभर ह। अब यदि वस्तुकी लम्बाई आदि आकारके मानको बदलें तो यह सिद्ध ह कि उस वस्तुकी आवृत्ति बदल जायगी। और यदि आकारको भी निश्चित कर दें तो उस वस्तुकी एक अपनी आवृत्ति होगी जो उस वस्तुके लिए स्वाभाविक समझी जायेगी। इस ही वस्तुकी सहज आवृत्ति' कहते ह। अनुच्छेद ११ में जो आवृत्तिकी गणना या सम्बन्ध बनाया गया ह वह असलमें सहज आवृत्ति'की ही गणना ह। यद्यपि प्रेरणाके द्वारा किसी वस्तुमें कोई भी आवृत्ति पदा की जा सकती ह (अनुच्छेद ३६) जिसका सम्बन्ध वस्तुकी दशासे नहीं ह।

१९ घन द्रव या गसमें ध्वनिका संचार अनुदध्य तरगके द्वारा ही होता ह। इस तरंगका वग माध्यम (जिसमें होकर ध्वनि चलती ह) के

स्थिति-स्थापकत्व और घनत्व—मुख्यतः इन्हीं दो गुणोंसे बंधा होता है। इसलिए जबतक इन दो गुणोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ता तबतक माध्यममें ध्वनिका वेग निश्चित होता है। भिन्न भिन्न द्रव्योंमें ध्वनि वेगका मान जाननेवाले अनेक प्रयोगोंसे निकाला है। उन प्रयोगोंका परिणाम कुछ सामान्य द्रव्योंके लिए, नीचे दिया गया है।

सारिणी १

द्रव्य	तापक्रम	वेग
वायु	०° (डिग्री सण्टीग्रेड)	१०८७ } फुट प्रति
हाइड्रोजन	०° ,,	४२६३ } सेकण्ड
जल	१५° ,,	४७१४
ताँबा	२०° ,,	११६७० ,,
लोहा	२०° ,,	१६८२०
लकड़ी, ओक (आँतर साथ)	१०°–२०° ,,	१२६२० ,,
काँच	१०°–२०° ,,	१६४०० १९७०० ,,

इस सारिणीको देखनेसे पता चलता है कि ध्वनिका वेग गैसोंकी अपेक्षा द्रवोंमें अधिक और द्रवोंकी अपेक्षा घनोंमें अधिक होता है। हाइड्रोजनका घनत्व वायुसे कम होता है इसलिए इसमें ध्वनिका वेग बढ़ जाता है। द्रव या घनका घनत्व गैसोंसे अधिक होता है इसलिए इनमें वेग घटना चाहिए। साथ ही-साथ इनका स्थिति-स्थापकत्व गैसोंसे बहुत ज्यादा होता है इसलिए वेग बढ़ना चाहिए। पर पहले कारणसे वेगमें उतनी कमी नहीं होती जितना दूसरे कारणसे वेगमें वृद्धि होती है। इसलिए दोनों मिलकर घन और द्रवके तरंगका वेग गैसोंकी अपेक्षा बहुत अधिक हो जाता है।

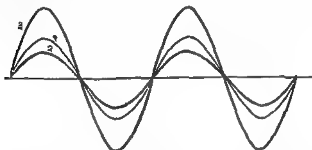
ऊपरकी सारिणीमें वेग निश्चित तापक्रमपर बताया गया है। यह इस

लिए कि माध्यमका तापक्रम बदलनेसे वेगमें भी अन्तर आ जाता है, क्योंकि तापक्रमका असर स्थिति-स्थापकत्व और घनत्व, दोनों ही पर पड़ता है। तापक्रम या गरमी बढ़नेसे गैसोंमें ध्वनिका वेग बढ़ जाता है। वायुमें हर एक डिग्रीकी बढ़तीपर वेग लगभग २ फुट प्रतिसेकण्ड बढ़ जाता है। घनों में प्राय तापक्रम बढ़नेसे वेग घटता है। किन्तु लोहे और चाँदीमें २०° से १००° तक तो वेग बढ़ता है और १००° से २००° के बीच और घनोंकी तरह घटता है।



४ तरंग-संयोग और स्थावर तरंग

२० किसी माध्यममें दो तरंगें एक ही साथ और एक ही मार्गसे एक दूसरेके ऊपर चलें तो माध्यमका हर एक कण दोनों ही तरंगों-द्वारा विचलित होगा। ऐसे कणोंका विस्तार अलग अलग दोनों तरंगोंके कारण

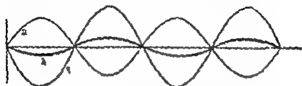


आकृति १२ (१)

जो विस्तारके मान होंगे, उन्हींके योगसे बनेगा। जब प्रत्येक कणका विस्तार इन दोनों तरंगोंके प्रभावसे बदल जायेगा तो एक नयी तरंग तैयार होगी और पहलेकी दोनों तरंगोंका अस्तित्व इस नयी तरंगमें ही लुप्त हो जायेगा।

आ० १२ (१) में दो तरंगें एकके ऊपर एक दिखायी गयी हैं। इनमें तरंग २ का विस्तार तरंग १ के विस्तारसे आधा है और दोनोंका तरंग मान बराबर है। दोनों तरंगें माध्यममें इस दशामें चल रही हैं कि एककी उभार दूसरेकी उभारपर और एककी खाल दूसरेकी खालपर पड़ती है। जब दोनोंकी उभार एक साथ माध्यमके किसी कणको ऊपर खींचेगी तो उस कणका विस्तार ऊपरकी दिशामें तरंग १ के विस्तारका ड्योढ़ा हो जायेगा। यही दशा खालकी भी होगी। दूसरे कणोंका नया विस्तार भी

इसी तरह बनेगा। इस प्रकार तरंग ३ बनती है जिसका तरंगमान तो पहले ही जैसा है पर विस्तार तरंग १ से डयोढ़ा है।



आकृति १२ (२)

तरंग १ और तरंग २ माध्यममें ऐसी दशामें भी चल सकती है कि एककी उभार दूसरेकी खालपर और एककी खाल दूसरेकी उभारपर पड़े। ऐसी दशामें माध्यमके किसी कणको जिस समय तरंग १ की उभार ऊपर खींच रही है उस समय तरंग २ की खाल उसे नीचे खींच रही है। अब यदि तरंग २ का विस्तार तरंग १ के विस्तारका आधा है इसलिए कणका विस्तार तरंग १ के विस्तारका आधा रह जायगा। अब दोनों तरंगोंके संयोगसे तरंग ३ बन जायगी [आ० १२ (२)] जिसका तरंगमान तो पहले ही जैसा रहेगा पर विस्तार तरंग १ का आधा होगा।

अगर माध्यममें दोसे अधिक तरंग चलती हों तो ये सारे तरंग मिल कर एक ऐसा तरंग बनावेंगे जिसका विस्तार इन तरंगोंके विस्तारोंको जोड़ घटा कर निकाला जा सकता है।

२१ जब कई तरंगोंके मेलसे एक नया तरंग बन जाती है तो जिस समय हम किसी तरंगका अनुभव करते हैं उस समय यह कैसे कहा जा सकता है कि यह दूसरे तरंगोंके मेलसे नहीं बनी है? हम ऐसी अनेक तरंगोंकी कल्पना कर सकते हैं जिनके विस्तारको जोड़ घटा कर अनुभूत तरंग तयार की जा सकती है। मतलब यह कि जब अनेक तरंगोंका अस्तित्व मालूम होनेपर उनसे बनी तरंग बनेगी यह जाना जा सकता है वैसे ही, इसके उलटा, अगर किसी तरंगका अस्तित्व मालूम हो तो वह किन किन

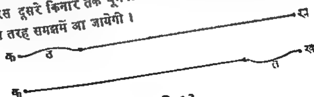
तरगासे बन सकता है यह भी मालूम किया जा सकता है। इनमें पहला तरगाका 'सश्लेषण' हुआ और दूसरा तरगोका 'विश्लेषण'।

आ० १२ में दोना तरगें बराबर तरगमानकी ली गयी ह। किन्तु यदि हमने तरगाके सयोगका नियम समझ लिया है तो चाहे तरगें किसी भी मानकी हो या किसी भी दशामें हा, उनका सयोग आसानीसे निकाला जा सकता ह।

आ० १२ (?) में यदि दोना ही तरगाको बराबर विस्तारका मानें तो एकको उभार और दूसरेकी खाल मिलकर शून्य हो जायेगा। परिणाम यह होगा कि माध्यमम दो तरगाका सचार होते हुए भी माध्यम शात रहेगा। यह दशा केवल काल्पनिक नही ह। अनेक प्रयोगोंसे इस दशाके अस्तित्वको प्रमाणित किया गया ह।

२२ अगर माध्यम दूर तक फैला हुआ हो तो उसमें तरग प्रतिक्षण आगे बढ़ती हुई नज़र आयेगी और यदि तरगका ग्राहक जैसे कान, और प्रेषक जैसे त्रिभुज, माध्यमके भीतर ही हा तो ग्राहकपर इस बढती हुई तरगकी गतिका हो असर होगा। इस प्रकारको तरगको 'जगम तरग' कहते ह। इसी तरगके द्वारा हम ध्वनि सुनते ह।

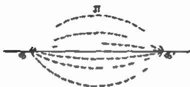
जब माध्यम छोटा और सीमित होता ह जैसे लोहेका छोटा डण्डा या बाँसुरी, तो तरग एक किनारेसे दूसरे किनारेपर पहुँचकर वहासे लौटती ह और फिर पहले किनारेपर पहुँचकर लौटती ह। इस प्रकार तरग एक किनारेसे दूसरे किनारे तक घूमती रहती ह। रस्सीके दृष्टातसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जायेगी।



आकृति १३

किसी पतली रस्सीका एक छोर खूँटो ख म बाँध दो (आ० १३) और दूसरे छोरका हाथमें पकडो जिसमें रस्सी तनी रहे। अब हाथ

हिलाकर रस्सीमें उभार पैदा कर लें। यह उभार ख तक जायेगी और वहाँसे परावर्तित होकर उलट जायगी और खालके रूपमें क की ओर आवेगी। इस स्थूल प्रयोगसे तरंगका परावर्तन या लौटना मालूम होता है।



आकृति १४

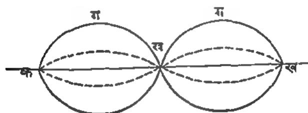
इसे सूक्ष्म बनानेके लिए रस्सीकी जगह रेशमका पतला धागा लो और हाथकी जगह द्विभुजकी एक भुजा लगा दो जिसका कम्पन धागेके आड़े हो। धागेका खिंचाव और लम्बाई ऐसी रखो कि द्विभुजके एक कम्पनके समयमें तरंग दूसरे छोरसे लौटकर द्विभुजके पास पहुंच जाये। अब धागेमें बड़ी शीघ्रतासे तरंगका संचार होगा और थोड़े समयमें ही धागेमें आ० १४ की तरह कम्पन होने लगेगा जिसका रूप ठीक ठीक आ० १ में दिये हुए तारके कम्पन सरीखा है। इसमें नीचे ऊपरकी खण्डित रेखाएँ भिन्न भिन्न समय पर धागेकी स्थिति बताती हैं।

इस तरंगको, जो आगे बढ़ती हुई नहीं मालूम पड़ती, स्थावर-तरंग कहते हैं। वबरने पहले-पहल रस्सीके साथ प्रयोग करके स्थावर तरंगका अध्ययन किया था। पीछे मेल्डाजने पतले रेशमी धागे और द्विभुजके उपयोग करके स्थावर तरंगके सम्बन्धमें बड़े ही रोचक प्रयोग किये। फिर टिण्डलने रेशमी धागेकी जगह बिजलीकी धारासे गरम किये हुए प्लेटिनमके तारसे मेल्डाजके सारे प्रयोगोंको दिखाया। स्थावर तरंगके कारण जो माध्यममें क्रिया होती है उसकी कई विशेषताएं हैं। पहली तो यह कि इसमें माध्यमके कुछ बिन्दु या स्थान अचल होते हैं जैसे क, और ख, (आ० १४)। इन स्थानोंको ग्रंथि या गाँठ कहते हैं। इसी प्रकार कुछ बिन्दु ऐसे होते हैं जिनका विस्तार सभी स्थानोंसे अधिक होता है, जैसे ग बिन्दु।

इन स्थानोंको 'प्रतिग्रंथि या फंदा' कहते हैं। दूसरी यह कि प्रतिग्रंथिके दोनों ओर हर बिन्दुका विस्तार नियमित रूपसे घटता जाता है जो ग्रंथि तक पहुँचते-पहुँचते शून्य हो जाता है। तीसरी यह कि सभी बिन्दुओंकी आवृत्ति समान होती है।

अब यह समझना आसान है कि तार आदि जिन वस्तुओंमें कम्पन होता है उसका कारण यह स्थावर तरंग ही है। जब हम तारको बीचमें छूते हैं तो बीचके बिन्दुसे दोनों ओर तरंगें चलती हैं और ये दोनों तरंग दोनों बंधे हुए छोरसे उलट कर लौटते हैं। ये बीचमें एक-दूसरेको पार कर फिर अपनी अपनी राहपर चल देते हैं। इसीसे कम्पन पैदा होता है। बीचमें, जहां दोनों तरंगें आपसमें मिलती हैं वहां सबसे अधिक विस्तारवाली प्रतिग्रंथि बनती है। यह तरंग संयोगके नियमसे स्पष्ट है। (अनुच्छेद २०)।

ऊपरके द्विभुजकी से दूनी आवृत्तिवाले द्विभुजके द्वारा भी आ० १४ के धागेमें स्थावर-तरंग पैदा की जा सकती है। पर इस बार एक नयी बात पैदा हो जायेगी।



आकृति १५

पहले बताया जा चुका है कि जितने समयमें द्विभुज एक कम्पन पैदा करता है, उतने समयमें तरंग दूसरे छोरसे लौटकर द्विभुज तक पहुँच जाता है। इस बार द्विभुजकी आवृत्ति दूनी है। इसलिए जितने समयमें द्विभुज एक कम्पन पूरा करता है उतने समयमें तरंग दूसरे छोर तक पहुँचती है,

क्योंकि तरंगका पल्ला-जमा ही है। जिस समय पहली तरंग दूरके छोरसे लौटती है उस समय द्विभुजसे दूसरी तरंग निकलती है। अब ये दोनों तरंगें ठीक बीचमें एक दूसरेसे मिलेंगी। किन्तु जैसे आ० १३ में बताया गया है, पहली तरंग खालकी दशामें होगी तो दूसरी उभारकी दशामें, क्योंकि पहली तरंग दूसरे छोरसे उलट कर लौटी है। इस प्रकार एककी खाल दूसरेका उभारसे मिलकर सम हो जायेगी क्योंकि दोनोंका विस्तार बराबर है (अनुच्छेद २१) और बीचमें दोनों छोरकी तरह ही एक और ग्रंथि बन जायगी। बीचकी ग्रंथिके कारण धागा दो बराबर खण्डोंमें कम्पित होगा जैसा कि आ० १५ में दिखाया गया है। इन दोनों खण्डोंकी आवृत्ति अब दूनी अर्थात् इस दूसरे द्विभुजके बराबर हो जायेगी क्योंकि कम्पवाले खण्डकी लम्बाई आधा हो गया (अनुच्छेद १२)। इसी प्रकार तिगुनी आवृत्तिका द्विभुज लेकर धागेको तीन खण्डोंमें विभक्त किया जा सकता है जिसमें दो अन्तिम ग्रंथियोंको छोड़, दो ग्रंथियाँ और बीचमें बन जायेंगी।

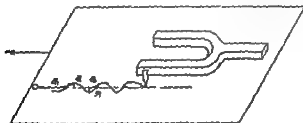
यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ग्रंथि पूरी तरह अचल या निस्पन्द नहीं होती। उसमें कुछ-न-कुछ स्पन्दन होता ही है। केवल इसका मान माध्यमक और बिन्दुओंकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है।

ऊपरके विवेचनासे यह बात मालूम होती है कि एक आगे जाती हुई और दूसरी परावर्तित होकर लौटती हुई तरंगोंके संयोगसे बना हुआ स्थावर तरंग कुसुम कम्पन पैदा करता है और इस प्रकार एक सीमित माध्यमकी स्थावर-तरंग दूसरे निस्सीम माध्यम जैसे वायु आदिमें जंगम तरंग पैदा कर देती है जो अगर हमारी ओर आवे तो हमारे कानोंके परदोंको विचलित करता है।

५ ध्वनिवक्र और उनका विश्लेषण

०

२३ द्विभुजकी एक भुजाके छोरपर एक हलका सुई ऐसा चिपकाओ कि यह भुजाके कम्पनकी दिशा और भुजा दोनोंके साथ समकोण बनाती हो।



आकृति १६

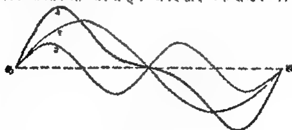
एक शीशेकी चोडी पटरीपर कालिख जमाओ और उसपर कांपते हुए द्विभुज की नोकको इस प्रकार रखो कि सूई पटरीपर खडी पडे। यह दीख पडेगा कि नोककी चालके कारण कालिखपर एक आडी रेखा खिंच जाती है। अगर द्विभुजमें कम्पन न होता तो पटरीपर सिर्फ बिन्दुका निशान पडता। जिस समय द्विभुज कांप रहा है उसी समय पटरीको भी आ० १६ में दिखायी हुई दिशामें बराबर वेगसे सरकाओ। अब यह दीख पडेगा कि पटरीकी कालिखपर तरंगकी तरह एक निशान पड गया है। सूईकी नोकके द्वारा खिंचे हुए इस वक्रपर ध्यान दो। मान लो कि ० रेखा नोकके द्वारा उस समय खींची गयी है जब द्विभुज स्थिर था। वक्रको देखकर यह समझना आसान है कि क ख ग तकका वक्र सूईकी नोक या द्विभुजके एक पूरे कम्पनसे बना है, और रेखासे ख की ऊंचाईका मान द्विभुजका कम्पविस्तार है। अगर पटरीके सरकनेका वेग ठीक ठीक नाप सकें तो यह हिसाब

लगाया जा सकता है कि क से ख' तक सरकनेमें कितना समय लगा। यही द्विभुजके कम्पनका काल होगा। काल मालूम होनेसे द्विभुजकी आवृत्ति आसानीसे निकाली जा सकती है (अनु०)।

सूईकी नोकका कम्पन द्विभुजके कम्पनके साथ और ठीक उसीकी तरह होता है और यह नोक अपने कम्पनसे वक्र बनाता है। इसीलिए द्विभुजके कम्पनके साथ वक्रका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उसकी सारी विशेषताएं वक्रमें जाती जा सकती हैं। अगर द्विभुजके कम्पनमें कोई व्याघात पड़ जाये, किसी कारणसे कोई अन्तर आ जाय तो वह ज्योंका त्यों वक्रमें प्रकट हो जायगा। इसलिए यह वक्र द्विभुजके कम्पनकी सच्ची तस्वीर है।

द्विभुजकी तरह ही नाद उत्पन्न करनेवाले सभी वस्तुओंके अनेक विधियोंसे वक्र खींचे जा सकते हैं। हरेक वस्तुका वक्र उसके कम्पनकी रेखा चित्र है और हर वक्रमें वस्तुके कम्पनकी विशेषता मौजूद रहती है। साथ-ही साथ एक वस्तुका वक्र दूसरी वस्तुके वक्रसे भिन्न होता है।

२४ सितारके वक्र इतने सरल नहीं होते जितना कि आ० १६ में दिखाया गया है। यद्यपि कि द्विभुजका भी सच्चा वक्र दिये हुए वक्रसे कुछ भिन्न होता है। इन वक्रोंके भेद और जटिलताका कारण तारके कम्पनपर ध्यान देनेसे समझमें आ सकता है। अगर तार एक खण्डमें काँप रहा



आकृति १७

हो तो उसके किसी भी बिन्दुके कम्पनका वक्र आ० १७ के वक्र १ सरीखा होगा। अगर वह आ० १५ की तरह दो खण्डोंमें काँपता हो तो उस

बिंदुका कम्पन-वक्र ऊपर दिखाये हुए वक्र २ सरीखा होगा। पर जब तार में ये दोनों कम्पन साथ साथ हों तो दोनोंके सयोगसे बना हुआ कम्पन (अनुच्छेद २०) वक्र ३ से मिलते-जुलते वक्रसे प्रकट किया जायेगा। अगर तार ३ खण्डोंमें भी काँपता हो तो सयोजित वक्र ३ का रूप और भी बदल जायेगा। इस प्रकार तारके एक खण्डवाले कम्पनके साथ अधिकसे अधिक खण्डवाले कम्पन जितने मिलते जायेंगे इसके कम्पन-वक्रका रूप उतना ही बदलता जायेगा।

यह अनुभव सिद्ध है कि जब तारमें कम्पन होता है तो वह एक ही खण्डमें नहीं होता। २ खण्ड, ३ खण्ड ४ खण्ड आदि कम्पनके जितने ढंग हैं तारमें ये सारे साथ ही साथ चलते हैं। परिणाम यह होता है कि तारका असल कम्पन एक-खण्डी कम्पनसे बहुत बदल जाता है। ऊपर केवल दो कम्पन लेकर परिणाम दिखाया गया है। कम्पनके इस अंतिम रूपपर भिन्न भिन्न कम्पनोंके विस्तारका भी असर होता है। इतना ही नहीं। तरंगमान, विस्तार आदि बराबर रहनेपर भी अगर एक तरंग दूसरेकी अपेक्षा थोड़ी खिसकी हुई हो अर्थात् थोड़ा आगे पीछे हो, तो भी रूप बदल जाता है। आ० १७ में वक्र २ को सिर्फ बायीं ओर थोड़ा खिसका दें इतनेमें वक्र ३ का आकार बदल जायेगा। अभी तो वक्र १ और वक्र २ एक ही स्थानसे शुरू होते हैं। अर्थात् दोनों एक ही कलामें हैं। एक वक्रको खिसका देनेसे कलामें अंतर आ जाता है। इस कला भेदसे भी वक्र बदल जाता है अथात् किसी तारके कम्पनके अनेक रूप हो सकते हैं।

२५ यह बताया जा चुका है कि जब तार दो खण्डोंमें काँपता है तो इसकी आवत्ति एक खण्डी कम्पनकी आवृत्तिसे दूनी हो जाती है। इसी प्रकार तीन खण्डी कम्पनकी आवत्ति तिगुनी और चार खण्डी कम्पनकी चौगुनी होती है। आ० १७ से यह मालूम होता है कि वक्र ३ का काल वक्र १ के कालके बराबर ही है। इसलिए इस सयोजित कम्पनकी आवत्ति वही होगी जो एक-खण्डी कम्पनकी है। पर इस वक्रका विश्लेषण

उपस्वर अनावर्तक होते हैं अर्थात उनके उपस्वरोंकी आवृत्तियोंमें ऐसा सरल सम्बन्ध या अनुपात नहीं होता। तुलनाके लिए नीचे तीन नादोत्पादक वस्तुओंके आंशिकोंकी आवृत्तियाँ दी जाती हैं।

सारिणी २

नादोत्पादक	मौलिक	उपस्वर			
		१	२	३	४
तार, वायु	२५६	५१२	७६८	१०२४	१२८०
घमण्डका परदा	२५६	४०९.६	५३७.६	५८८.८	६९१.२
द्विभुज	२५६	१६००	—	—	—

इस सारिणीसे यह पता चलता है कि तार और वायुके उपस्वर आवर्तक हैं क्योंकि इनका अनुपात १ : २ : ३ : ४ : ५ है। पर घमण्डके परदेके उपस्वर अनावर्तक हैं क्योंकि इनका अनुपात १ : १.६ : २.१ : २.३ : २.७ है। इसी प्रकार द्विभुजका उपस्वर भी अनावर्तक है।

ऊपर, ध्वनिवक्र खींचकर उनका गणित या विश्लेषक यन्त्र-द्वारा विश्लेषण करके उपस्वरोंका पता लगानेकी विधि बतायी गयी है। पर ऐसे भी अनेक उपकरण हैं जिनके द्वारा बिना ध्वनि-वक्र ही, सीधे ध्वनिसे उपस्वर पकड़े जा सकते हैं। इनमें सबसे पहला उपकरण हेल्महोल्जका अनुनादक (अनुच्छेद ३८) है। इसकी उन्नति करके गरम तारका माइक्रोफ़ोन बनाया गया है। अब वगल और मूरने बिजलीके वॉल्वसे ऐसा उपकरण तैयार किया है जिससे सभी उपस्वर, आवर्तक या अनावर्तक, बड़ी आसानीसे पकड़े जा सकते हैं। पर ये सारे उपकरण अनुनाद (अनुच्छेद ३७) के सिद्धान्तपर बने हैं इसलिए यहाँ इनका विवरण नहीं दिया जाता है। इनकी संक्षिप्त चर्चा अनुनादके अध्यायमें मिलेगी।

६ तारता, तीव्रता और गुण

३० नादके तीन लक्षण होते हैं (१) तारता (२) तीव्रता और (३) गुण। इन्हीं तीनों लक्षणोंके न्यूनाधिक्यसे एक नाद दूसरेसे भिन्न समझा जाता है।

(१) **तारता** स्त्री और बच्चोंकी बोली प्रायः महीन समझी जाती है और मर्दोंकी मोटी। स्त्री चाहे धीमे धीमे बोले, पर उसकी आवाजका महीनपन नहीं जाता, और पुरुष चाहे जोर चिल्लाये, पर उसकी आवाज मोटीकी मोटी बनी रहती है। चिड़ियोंके चहचहाने और घोड़ेके हिनहिनानेमें भी यही भेद है। जिस आवाजको हम महीन कहते हैं उसे गवैया ऊँचा स्वर कहता है और हम जिसे मोटी कहते हैं गवैया उसे नीचा स्वर कहता है। नादकी एक-दूसरेकी अपेक्षा इस नीची ऊँची स्थितिको ही 'तारता' कहते हैं। हार्मोनियममें बहुत-सी पटरियाँ होती हैं। बायींसे दाहिनी ओर पटरियोंको एकके-बाद एक दबाते हुए चलो। मालूम होगा कि आवाज महीन होती चली जाती है। वैसे ही दाहिनेसे बायें जानेमें आवाज मोटी होती जाती है। अर्थात् दाहिनी ओर बढ़नेमें स्वर ऊँचा होता चला जाता है और बायीं ओर बढ़नेमें नीचा। संगीतकी भाषामें स री ग म प ध नी नामक सात स्वर माने जाते हैं। हार्मोनियमकी बायें किनारेकी पहली पटरी स है इसके बाद क्रमशः और स्वर आते हैं। आठवीं सफेद पटरीको भी स ही नाम दिया जाता है और फिर बाकी स्वर पहलेकी ही तरह आगे चलते जाते हैं। ऊपर जो बताया गया है उस हिसाबसे री स से ऊँचा होता है और ग री से। मतलब यह कि स से आगे हर एक स्वरकी तारता बढ़ती जाती है।

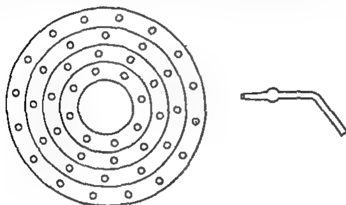
यह तारता केवल कानोंका अनुभव ही नहीं है—यह, जिस वस्तुके

कम्पनसे स्वर निकलता है उसका भौतिक धर्म है। अनेक प्रयोगोंसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि स्वरकी तारता स्वरोत्पादक वस्तुकी आवृत्तिपर निर्भर है। आवृत्ति जितनी अधिक होगी स्वर भी उतना ही ऊँचा होगा। नित्यकी घटनाओंपर थोड़ा ध्यान रखनसे ही इस बातकी सच्चाई प्रकट हो जायेगी। जब बिजलीका पंखा घूमता है तो उसमें-से एक प्रकारकी ध्वनि निकलती है। यह ध्वनि पंखेकी आवृत्तिसे ही पैदा होती है। अब बिजलीकी धारा बढ़ाकर पंखेकी गतिको तेज कर दो। तुरन्त यह मालूम होगा कि ध्वनि कुछ ऊँची हो गयी है। यह समझना आसान है कि ध्वनिकी तारतामें यह अन्तर आवृत्तिके बढ़ जानेसे ही हुआ। ऐसे ही जब आरीसे लोहे या लकड़ीको चीरते हैं तो ध्वनि सुनायी पड़ती है जो आरीके दाँतोंके लकड़ीमें लगनेसे पैदा होती है। आरीकी गति बढ़ा देनेपर, यह ध्वनि भी ऊँची हो जाती है। एक डण्डा या बेंत अपने चारों ओर घुमाकर भी यह देखा जा सकता है कि मामूली गतिपर एक गम्भीर ध्वनि निकलती है। पर जैसे जैसे गति बढ़ाते हैं, ध्वनि ऊँची होती चली जाती है।

हार्मोनियमका री स्वर स से ऊँचा है, इसका कारण यह है कि री की पटरीके साथकी रीड या पत्तीके कम्पनकी आवृत्ति स के साथवाली पत्तीकी आवृत्तिसे अधिक है। हार्मोनियम खोलकर देखनेसे पता चलेगा कि री की पत्ती स की पत्तीसे छोटी है। और यह बताया जा चुका है कि लम्बाई कम होनेसे आवृत्ति बढ़ जाती है। इसलिए री की आवृत्ति स की अपेक्षा बढ़ जाती है।

तारता और आवृत्तिका सम्बन्ध एक साधारण उपकरणसे दिखाया जाता है जो सकेत रूपसे चित्र १८ में दिया गया है। इसमें, एक पीतलके बराबर चक्रपर चार छोटे-बड़े वृत्तोंमें सूराख बने हुए हैं। पहले वृत्तमें ८ सूराख हैं, दूसरेमें १०, तीसरेमें १२ और चौथेमें १६। साथीमें लगी हुई रबरकी नलीमें कौंचका एक पतले सूराखवाला मुखनल बटाया गया है। चक्रके किसी सूराखके सामने इस मुखनलको रखकर भाथी चलानेसे

दूसरी ओरकी हवामें सघनता पैदा हो जाती है। यदि चक्का घूमता हो तो जब-जब चक्केका सूराख मुखनलके सामने आयेगा तब-तब दूसरी ओर सघनता चलेगी। मान लिया जाये कि मुखनल पहले वृत्तके सूराखके सामने रखा गया है जिसमें ८ सूराख हैं। अब अगर चक्का एक सेकेण्डमें १० बार



आकृति १८

घूमता है तो एक सेकेण्डमें ८० सूराख मुखनलके सामने आयेंगे और इसलिए दूसरी ओर एक सेकेण्डमें ८० सघनताएँ बनेंगी। इन सघनताओंके कारण जो ध्वनि पैदा होगी उसकी आवृत्ति ८० होगी। चक्केकी इसी गतिके साथ अगर मुखनलको दूसरे वृत्तके सूराखके सामने रखें तो इस ध्वनिकी आवृत्ति १०० होगी। इस प्रकार नली ऊपरके वृत्तोंके सामने उठाते जानेसे ध्वनिकी आवृत्ति बढ़ती जाती है। पर साथ-ही साथ यह भी मालूम होगा कि मुखनल जैसे जैसे ऊपर चढ़ता है स्वरकी तारता भी बढ़ती जाती है। सिर्फ इतना ही नहीं। अगर हार्मोनियमकी पटरीसे मिलाकर देखें तो पता चलेगा कि जब पहले वृत्तका स्वर स होता है तो दूसरे वृत्तका स्वर तीसरी पटरीवाला 'ग', तीसरे वृत्तका स्वर पाचवीं पटरीवाला 'प'

और चौथे वक्तका स्वर आठवां पटरीवाला दूसरा स होता है। अर्थात जस-जस आवृत्ति बढ़ती है वस ही वस स्वर भी तार होता चला जाता है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि सभी आवृत्तिका ध्वनिको कान ग्रहण नहीं कर पाता। जिस ध्वनिकी आवृत्ति १६ से कम या ३८,००० से अधिक हो उसे कान सुन नहीं सकता। कानोंको उनके अस्तित्वका ही बोध नहीं होता। कानोंकी क्षमताकी सीमा १६ से ३८,००० तककी आवृत्ति है। पर जिन नादोंका उपयोग संगीतमें होता है, उनके लिए तो कानोंकी क्षमता और भी संकुचित है। संगीतमें स्वर कमसे-कम ४० और ज्यादासे ज्यादा ४००० आवृत्तिके होने चाहिए, तभी कान उन्हें संगीतके रूपमें ग्रहण कर सकता है।

३१ (२) तीव्रता नादका दूसरा लक्षण 'तीव्रता' है। 'तीव्रता' और तारताके अन्तरको प्रायः लोग नहीं समझते। इसीसे देखा जाता है कि कोई गवैया किसी नये चेलेको जब स्वर ऊँचा करनेको कहता है तो वह जोरसे बोलने लगता है और जब वह जोरसे आवाज निकालनेको कहता है तो वह स्वर ऊँचा कर देता है।

तीव्रतासे मतलब आवाजके जोरसे है। किसी तारको आहिस्तेसे छेड़ें तो धीमी आवाज निकलेगी और यदि उसे जोरसे छेड़ें तो आवाज जोरकी निकलेगी। उसी तरह हार्मोनियमकी किसी पटरीपर अंगुली रखकर धीमी जितने जोरसे चलायेंगे स्वर भी उतने ही जोरका निकलेगा। इन सभी हालतोंमें स्वरकी तारता या आवृत्तिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। एक ही, एक ही स्वरपर मुँह पूरा खोलकर फेंफड़ेसे पूरी हवा निकालनेसे स्वरकी तीव्रता बढ़ जाती है। स्वर जहाँसे निकलता है उस स्थानसे दूर हटते जायें तो वह धीमा मालूम होता है पर उसकी तारतामें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

जैसे तारता नादोत्पादक वस्तुकी आवृत्तिपर निर्भर है वैसे ही तीव्रता उसके कम्प विस्तारपर निर्भर है। विस्तार जितना ही बड़ा होगा तीव्रता भी उसी हिसाबसे बढ़ेगा। असल बात यह है कि वस्तुका कम्प विस्तार

जितना अधिक होता है वह वायुमें उतनी ही अधिक सघनता पैदा कर
देता है। ऐसी घनी सघनता जब कानोंके परदेपर पड़ती है तो कानका परदा
अधिक दबावका अनुभव करता है। यही ध्वनिकी तीव्रताका अनुभव है।
एक सेकेण्डमें जितनी सघनता परदेपर पड़ती है उसीसे तारताका अनुभव
होता है। यही दोनोंका भेद है। सघनता जितनी घनी होती है परदेपर
आघात करनेकी शक्ति भी उसमें उतनी ही अधिक होती है। असलमें यह
शक्ति ही तीव्रताका आधार है। यह शक्ति विस्तारके वर्गकी अनुपाती
होती है। अर्थात् अगर विस्तार दूना बढ़ जाये तो शक्ति चौगुनी हो
जायेगी। ध्वनिकी इस शक्तिका प्रत्यक्ष अनुभव वहाँ होता है जहाँ कोई
भारी बम फूटता है या किसी विस्फोटकके गोदाममें आग लग जाती है।
विस्फोटकी आवाज इतनी तेज होती है कि वह बीसों कोस तक सुनायी पड़ती
और आस-पासके मकानोंके तो काँचके जंगले तक चूर-चूर हो जाते हैं।
किसी काँपते हुए वस्तुसे ध्वनि-तरंग मण्डलाकार होकर चारों ओर
फैलता है। वस्तुसे दूरी बढ़नेपर मण्डल बड़ा होता चला जाता है। इसलिए
वायुको जो शक्ति वस्तुके कम्पनसे मिलती है वह बड़से बड़े क्षेत्रपर फैलता
जाता है। नतीजा यह होता है कि किसी एक दिशामें दूर हटनेपर तरंगकी
शक्ति कम होती जाती है। इसका नियम ऐसा है कि दूरी दूना हो जानेपर
तरंगका विस्तार आधा रह जाता है और इसलिए शक्ति चौथाई रह जाती
है पर यदि तरंग मण्डलाकार न फैलकर एक ही दिशामें सीधे चले तो
शक्तिका ह्रास बहुत ही कम होगा। इसीसे किसी नलीमें ध्वनि चले तो
वह बहुत दूर तक सुनायी देती है। इसी नियमपर डाक्टरोंका स्टेथस्कोप
(आकर्णन) बना हुआ है। जलके ऊपरी तलके कुछ नीचे ध्वनि बहुत
दूर तक चल सकती है क्योंकि जलके भीतरका ध्वनि-तरंग ऊपरके तलसे
बाहर नहीं जा सकता, इसलिए आधे मण्डलमें ही फैलता है।
जहाँ बराबर विस्तार और बराबर आवृत्तिकी दो वस्तुएँ पास-पास
काँपती हों वहाँ वायु-मण्डलमें कहीं-न-कहीं दोनोंके तरंग एक-दूसरेपर

अवश्य पड़ेंगे। अगर दानाकी उभार एक दूसरपर पड़ी तो उस स्थानपर *विस्तार दूना हो जायेगा (अनुच्छेद २०) अर्थात शक्ति चौगुनी हो जायगी।* यहाँ यह प्रश्न उठता है कि दोनों वस्तुओंकी शक्ति मिलकर सिर्फ दूनी होनी चाहिए। बाकी शक्ति कहाँसे पैदा हुई? बात यह है कि वायुमें जहाँ एक स्थानपर एक तरगकी उभार दूसरेकी उभारपर पड़ती है वहाँ दूसरे स्थानपर एककी खाल दूसरेकी उभारपर पड़ती है। इसलिए इस दूसरे स्थानपर विस्तार शून्य हो जाता है अर्थात शक्ति विलीन हो जाती है। ऐसे स्थानोंपर कान रखनेसे वे नीरव मालूम होंगे। इस प्रकार दोनों वस्तुओंके चारों ओरके सारे मण्डलकी शक्ति जोड़ी जाये तो वह दूनी ही निकलेगी।

जैसे तारताके लिए कानकी क्षमताकी एक सीमा होती है वैसे ही तीव्रताके लिए भी एक सीमा होती है। पर यह सीमा उतनी निश्चित नहीं होती। तीव्रताका माप भी उतना सरल नहीं है जितना तारताका। फिर भी वैज्ञानिकोंने इसकी जाँच की है और आज भी कर रहे हैं। तीव्रताके मापके लिए भी बिजलीके अनेक उपकरण बने हैं। यह बताया जा चुका है कि कानके परदेपर सघनताके दबावसे ही तीव्रताका बोध होता है। इसलिए इस दबावसे ही तीव्रताका अनुमान लगाया जा सकता है। कमसे कम तीव्रता जिससे नीचे शब्द सुनायी नहीं देता, तारतापर भी निर्भर है। साधारणत स्वर अधिक तार हो तो थोड़ी तीव्रता होनेपर भी कान इसे सुन लेता है। अनेक प्रयोगोंमें यह अनुमान लगाया गया है कि यदि २०३४ आवृत्तिका स्वर हो तो कानके परदेपर कमसे-कम वायुमण्डलके दबावके १० अरबवाँ हिस्सेके बराबर सघनताका दबाव होनेसे कान इस स्वरको सुन लेता है। इससे कम दबाव होनेसे कान काम नहीं करता। वायु मण्डलका दबाव एक वर्गइंचपर लगभग ७ सेरके बराबर पड़ता है। इससे यह पता *चलता है कि मानवी ग्राहकता कितनी सूक्ष्म है।* कानोंको सुनायी देनेवाली कमसे-कम तीव्रताको 'ध्वनि देहली' कहते हैं। ऊपर दी हुई आवृत्तिसे

जितना नीचे उतरेंगे देहलीकी तीव्रता उतनी अधिक बढ़ जायेगी, साथ-ही साथ ऊपर चढ़नेमें भी सुननेके लिए स्वरका अधिक तीव्र होनेकी आवश्य कता होगी।

किसी स्वरकी तीव्रता कितनी बढ़ायी जाये कि कान इस अन्तरको जान ले, यह स्वरकी पहली तीव्रतापर निर्भर है। साधारणतः किसी स्वरकी तीव्रताको सवाया कर देनेपर कानको इस अन्तरका बोध हो जाता है। इसके ऊपर तारताका भी कुछ असर अवश्य होता है।

जिस तरह 'श्रुति देहली' नीचेकी सीमा है जिससे नीचे ध्वनि सुनायी नहीं पड़ती, उसी तरह तीव्रताकी एक ऊपरली सीमा भी है जिससे ऊपर तीव्रता बढ़नेमें कानोंको पीड़ा होने लगती है। इसे 'पीड़ा देहली' कहते हैं। संगीतमें व्यवहार किये जानेवाले सारे स्वरोंके लिए यह देहली लगभग बराबर तीव्रताकी होती है। १/१० छटांक प्रतिवर्ग इंचका दबाव इसके मानका अंदाज है। इससे अधिक दबाव बढ़नेपर स्वरसे कानोंको पीड़ा होती है और कभी-कभी हानि भी होती है। ऊपर दी हुई तीव्रतापर, जहां कानकी ग्राह्यता सबसे अधिक सूक्ष्म है, 'पीड़ा-देहली' का दबाव और भी कम होता है।

३२ (३) **गुण** नादका तीसरा लक्षण गुण है। हम देखते हैं कि एक आदमीकी आवाज दूसरेकी आवाजमें नहीं मिलती। एक यन्त्रका स्वर दूसरे यन्त्रके स्वरसे नहीं मिलता। कोई बाजा बजता हो तो अनुभवी आदमी सिर्फ आवाज सुनकर कह सकता है कि सितार बज रहा है या हार्मोनियम। जहाँ दस तरहके बाजे बज रहे हों, वहां सबोंके स्वरोंकी तारता एक होनेपर भी तबलेकी आवाज सितारके स्वर, इसराजके स्वर आदि सब अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं। यहाँतक कि आदमीका भी प्रायः हम उसके स्वरसे पहचान लेते हैं। स्वरकी इस विशेषताको ही स्वर का गुण कहते हैं। जब यह कहा जाता है कि तबला हार्मोनियमकी किसी पटरीसे मिल गया तो उसका मतलब इतना ही होता है कि दोनोंकी आवृत्ति

या तारता एक हो गयी, यह नहीं कि दानाकी अलग अलग पहचान मिट गयी। तारता एक हो जानपर भी दोनाके गुण अलग-अलग रहते हैं।

तारता और तीव्रताकी तरह ही गुणका भी भौतिक आधार है। यह केवल मानसिक अनुभूति नहीं है। पाँचवें अध्यायमें कम्पन-वक्र और ध्वनि वक्रकी चर्चा की गयी है। इसी वक्रके रूपसे नादके गुणका सम्बन्ध है। अगर सितारके तारके और तबलेके परदेका कम्पन-वक्र या ध्वनि-वक्र ठीक ठीक बनाएँ तो मालूम होगा कि जैसे इन दोनोके नादके गुण अलग-अलग हैं वैसे ही इन दोनोके वक्रके रूप भी दो तरहके हैं। यह बताया जा चुका है कि वक्रका आकार मौलिक आवृत्तिके साथ अनेक आवर्तकोंके मिलनेसे बदलता है। ये आवर्तक मौलिक आवृत्तिके क्रमसे पूर्णाङ्क गुने होते हैं। जैसे अगर मौलिक आवृत्ति १०० हो तो इसके आवर्तक २००, ३००, ४०० आदि होंगे। जब वक्रके आकारके भेद आवर्तकोंके कारण पैदा होते हैं तो यह भी निश्चित है कि स्वरोंके गुण भी इसी कारणसे बदलते हैं। आवर्तक किस प्रकार गुण भेद पैदा करते हैं यह संक्षेप रूपमें नीचे दिया जाता है—

(१) दो स्वरोंके आवर्तकोंकी संख्या भिन्न भिन्न हो, जैसे एकमें १०० २०० ३०० ४०० और दूसरेमें १००, २००, ३००, ४००, ५०० आवर्तक हों।

(२) आवर्तकोंकी संख्या बराबर होनेपर भी भिन्न भिन्न आवर्तक हों, जैसे एकमें १००, २००, ३००, ४०० और दूसरेमें १०० ३००, ५००, ७०० आवर्तक हों।

(३) आवर्तकोंकी तीव्रतामें अन्तर हो जैसे दोनो स्वरोंमें १००, २००, ३००,४०० आदि बराबर संख्यामें रहनेपर भी अगर एकमें २००, ४०० आदिकी तीव्रता ज्यादा है तो दोनो स्वरके गुण भिन्न भिन्न होंगे। साधारण दशामें आवर्तकोंकी तीव्रता एक क्रमसे घटती है। यह आवर्तकोंके क्रमांक पर निर्भर है। अगर मौलिकसे लेकर आगे सभी आवर्तकोंपर १ २, ३, ४ आदि अंक बैठा दें तो यह आवर्तकोंका क्रमांक होगा। जैसे—

१	२	३	४	५
१००	२००	३००	४००	५००

यहाँ जैसे जैसे क्रमांक बढ़ता है वैसे-वैसे आवर्तकोंकी तीव्रता मौलिककी अपेक्षा कम होती जाती है। अगर मौलिककी तीव्रताको १ मानें तो २ क्रमांकवाले आवर्तककी तीव्रता मौलिककी तीव्रताका $\frac{1}{4}$ अंश होगी। इसी प्रकार तीसरे आवर्तककी $\frac{1}{9}$ और चौथेकी तीव्रता $\frac{1}{16}$ होगी।

पर यह नियम सभी जगह लागू नहीं होता। जैसे, अगर किसी बाजेके तारको उँगलियोंसे या मिजराफसे छेड़ें तो आवर्तककी तीव्रता ऊपर दिये हुए नियमसे घटेगी और छठें सातवें आवर्तकके बाद नहींके बराबर रह जायेगी। पर यदि तारपर किसी नोकीली और भारी चीजसे मारें तो उसमें बहुत से आवर्तक निकलेंगे जो सबके सब बराबर तीव्रताके होंगे। आवर्तकोंकी तीव्रताके इस भेदके कारण ही इन दो तरीकोंसे उत्पन्न तारके स्वर दो भिन्न भिन्न गुणोंके हो जायेंगे। एककी आवाज चिकनी और कोमल होगी, दूसरेकी आवाज खनकती हुई होगी।

जिस तरह तारको कम्पित करनेके तरीकेसे स्वरका गुण बदल जाता है उसी तरह छेड़नेके स्थानको बदल देनेसे भी तारके स्वरका गुण बदल जाता है। थोमस यंगका यह सिद्धान्त है कि छेड़नेके स्थानपर जिन आवर्तकोंकी ग्रन्थि (अनुच्छेद २२) पड़ती है वे आवर्तक स्वरसे गायब हो जाते हैं। आ० १५ से यह स्पष्ट है कि दूसरे आवर्तककी ग्रन्थि तारके बीचोंबीच पड़ती है। ४,६,८ आवर्तककी ग्रन्थि भी वहीं पड़ेगी। इसलिए यदि तारको बीचमें छेड़ें तो दूसरा, चौथा, छठा, आठवाँ आदि आवर्तक गायब हो जायेंगे और स्वरमें पहला, तीसरा, पाँचवा, सातवाँ आदि आवर्तक रह जायेंगे। इसी प्रकार यदि तारको एक तिहाई दूरीपर छेड़ें तो ३, ६, ९ आदि आवर्तक गायब हो जायेंगे। इन आवर्तकोंकी कमीके कारण स्वरका गुण बदल जायेगा।

यंगके ऊपर दिये हुए नियमका उपयोग करके कृत्रिम उपायसे भी जिन

आवर्तनोंको चाहें ग़ायब कर सकते या उनकी तीव्रता घटा-बढ़ा सकते हैं।

३३ पिछले अध्यायमें यह बताया गया है कि सामकालिक ध्वनिमें आवर्तक उपस्वर और वकालिक ध्वनिमें अनावर्तक उपस्वर होते हैं। इसी भेदके कारण इन दोनों प्रकारकी ध्वनियोंके दो रूप हो जाते हैं। अनुच्छेद १२ में दी हुई वस्तुओंकी आवृत्तिपर ध्यान देनेसे पता चलता है कि नाद पैदा करनेवाली इन सारी वस्तुओंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है। पहले भागमें तार, वायु (बाँसुरी) आदि हैं। इनके आदिकोंका पारस्परिक सम्बन्ध १ २ ३ ४ जैसा है। इसलिए इनमें आवर्तक उपस्वर होते हैं। दूसरे भागमें डण्डा, चदरा, परदा आदि। इनके आदिकोंका पारस्परिक सम्बन्ध साधारणतः 1^2 2^2 3^2 4^2 जैसा है। इसलिए इनमें अनावर्तक उपस्वर होते हैं। चदर या परदेमें तो उपस्वरोंका सम्बन्ध और भी जटिल हो जाता है, क्योंकि लम्बाई चौड़ाई दोनों ओर विस्तार होनेसे इनका कम्पन पचीला होता है। इनके उपस्वरोंका पता इनके सतहपर ग्रंथि रेखा मालूम करके लगाया जा सकता है। चदरे या परदेपर बालूके महीन कण फैलाकर इनमें कम्पन पैदा करनेसे बालूके कण ग्रंथि रेखापर जमा हो जायँगे क्योंकि यह निस्पन्द स्थान है। भिन्न भिन्न स्थानोंको अंगुलीसे दबाकर ग्रंथि रेखाओंके भिन्न भिन्न चित्र बनाये जा सकते हैं। इन्हें क्लैड नाके चित्र' कहते हैं। ग्रंथि रेखाओंको देखकर ही चदरे या परदेके भिन्न भिन्न उपस्वरोंका पता लग सकता है। उदाहरणके लिए चमड़ेके परदेके उपस्वरोंका सम्बन्ध बताया जाता है। मान लो परदेके मौलिक स्वरकी आवृत्ति अगर १ मानी जाये तो इसके अन्य उपस्वरोंकी आवृत्ति क्रमशः १ ६ २ १, २ ३ २ ७ २ ९, ३ २, ३ ५ ३ ६, ३ ७, ४ ४ २ होगी। ये सारे उपस्वर अनावर्तक हैं। घोषने यह दिखाया है कि हिंदुस्तानी तबलेकी ध्वनिमें प्रायः आवर्तक उपस्वर होते हैं। इसका कारण है गरनेका प्रयोग जिसकी मोटाई बाचमें सबसे अधिक होती है और किनारेकी ओर नियमित रूपसे घटती जाती है।

आवर्तक उपस्वरोंके कारण ही पूर्व, पश्चिम सभी देशोंमें संगीतके लिए मुख्यतः तार और वायुके बाजे ही उपयुक्त समझे जाते हैं। अनावर्तक उपस्वरवाले बाजे तो सिर्फ ताल देनेके कामके होते हैं। संगीतके प्राचीन शास्त्रकारोंने भी दो प्रकारके वाद्योंको संगीतके लिए ग्रहण किया है, एक तन्त्री-वाद्य और दूसरा सुषिर-वाद्य जैसे बाँसुरी आदि। हिन्दुस्तानी गायकोंने तो तालके लिए भी अनावर्तक उपस्वरोंको सहन नहीं किया और तबले और मृदंग बनाकर आवर्तक उपस्वरोंका मेल तैयार करनेकी कोशिश की है।

संगीतज्ञ आवर्तक उपस्वरको ही पसन्द करते हैं—इससे यह जरूर मालूम होता है कि जिस स्वरमें आवर्तक उपस्वरोंका मिश्रण होता है वह कोमल और प्रिय होता है और जिसमें अनावर्तक उपस्वरोंका मिश्रण रहता वह कटु होता है। यह एक साधारण बात है कि आवर्तक उपस्वरोंवाला सामकालिक नाद रावसे बहुत भिन्न होता है और वैकालिक नाद और रावमें कुछ-न-कुछ समता अवश्य होती है। इसलिए अनावर्तक उपस्वरोंवाले वैकालिक नादमें रावका कुछ अंश होना जरूरी है और इसलिए उनका अप्रिय होना भी स्वाभाविक ही है।

३४ स्वर प्रायः मिश्र ही होते हैं चाहे वे प्रिय हों या अप्रिय। अगर मिश्रणके कारण स्वरोंमें कटुता आ सकती है तो इसी कारणसे इसमें मधुरता और प्रसन्नता भी आती है। सरल स्वर, जिसमें मौलिक ही मौलिक हो, उपस्वरोंका नाम न रहे, जैसे ही तो विरले हैं वैसे ही नीरस हैं। द्विभुजका स्वर प्रायः सरल होता है क्योंकि उसका उपस्वर मौलिकका ६¼ गुना होता है और इसके बहुत ऊँचा होनेसे तीव्रता बहुत कम होती है। फिर भी द्विभुज अगर भारी न हो और जोरसे ठोंका जाये तो इसके उपस्वर प्रकट हो जाते हैं। अब द्विभुजमें बिजलीकी फिरना फिरती (ए० सी०) धारासे कम्पन प्रेरित करके सरल स्वर पैदा करते हैं। पर ये स्वर वैज्ञानिकोंके ही कामके हैं, जो इन्हें स्वरोंकी तुलनाके लिए प्रमाणस्वरूप मानते हैं। गायकोंको

३७ इस दूसरी अवस्थाके कम्पनको जब मुक्त कम्पन और प्रेरित कम्पनकी आवृत्ति एक हो जाती है अनुनाद' या गूँज कहते हैं। यह गूंज प्रेरक बल थोड़ा होनेपर भी बहुत तीव्र होता है। यह कैसे होता है यह एक साधारण दृष्टान्तसे समझा जा सकता है। मान लो कि एक भारी झूलेको हम चलाना चाहते हैं। या उसे पूरे विस्तार तक हिलानेमें काफी बल लगाना होगा। अगर हम थोड़े बलसे उसे हिलाना चाहें तो उसमें एक रस्सी बाँधकर उसे एक बार खींचेंगे। झूला थोड़ा हिल जायगा। जिस समय वह एक दोलन पूरा कर लेगा ठीक उसी समय हम एक बार और उसे खींच लेंगे। अब उसका विस्तार बढ़ जायेगा। इसी प्रकार जब जब वह दोलन पूरा करता है तब-तब हम उसे खींचते जाते हैं। हम देखेंगे कि हर दोलनमें उसका विस्तार बढ़ता जाता है। इस तरह हम जितना चाहें उतना विस्तार बढ़ा सकते हैं। यहाँ हम देखते हैं कि जितना समय झूलाको एक दोलन या कम्पन पूरा करनेमें लगता है ठीक उतना ही समय एक खिंचाव और दूसरे खिंचावके बीचमें होना चाहिए। मतलब यह कि प्रेरक बल और कम्पमान वस्तुकी मुक्त काल या मुक्त आवृत्ति एक होनेसे विस्तार बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है।

ऊपरके इन सारी विवेचनाओंका सार यह है कि जब वस्तुकी मुक्त आवृत्ति और प्रेरक बलकी आवृत्तिमें अन्तर रहता है तो वस्तुमें उत्पन्न कम्पनको प्रेरित कम्पन कहते हैं और जब वस्तुकी मुक्त आवृत्ति और प्रेरक बलकी आवृत्ति एक हो जाती है तो वस्तुके कम्पनको 'अनुनाद' या गूंज कहते हैं। पर जहाँ ध्वनिसे ही प्रेरणा होती है वहाँ 'अनुनाद' शब्दका व्यवहार प्रायः दोनों ही अर्थोंमें होता है।

प्रेरक बल कई प्रकारके होते हैं। ऊपर बिजलीकी प्रेरणाका प्रयोग बताया गया है। शारीरिक या यान्त्रिक बलका प्रेरणाका भी दृष्टान्त दिया गया है। पर मुख्य बात यह है कि ध्वनि स्वयं दूसरी वस्तुओंमें कम्पनकी प्रेरणा कर सकती है। इसके भी कई तरीके हैं। एक तो नाड़ीस्पन्द

वस्तुका कम्पन अगर संयोगसे दूसरी वस्तुमें कम्पन पैदा कर सकता है, दूसरे, अगर ध्वनि काफी जोरदार हो जो वायुको पूरी तरह विचलित कर सके, तो यह स्वयं वायु द्वारा चलकर दूसरी वस्तुओंमें कम्पन प्रेरित कर सकती है। अगर तमूरे या सितारके दो तारोंकी आवृत्ति एक कर दें या सुर मिला दें तो एकको छेड़ते ही दूसरेमें आपसे आप कम्पन होने लगेगा। यह, दूसरे तारपर कागजका हल्का टुकड़ा रखकर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, जो पहले तारको छेड़ते ही कांपने लगेगा या गिर जायेगा। इसकी प्रक्रिया बड़ी सीधी है। जब हम पहला तार छेड़ते हैं तो वह तमूरे या सितारकी घोड़ी और लकड़ीमें अपनी आवृत्तिका ही कम्पन पैदा करता है, यह प्रेरित कम्पन है। क्योंकि लकड़ीका मुक्त कम्पन साधारणतः तारके कम्पनसे भिन्न होता है। अब यह घोड़ी अपने कम्पनके द्वारा दूसरे तारमें गूंज पैदा करती है। क्या कि इस बार दूसरे तारका मुक्त कम्पन घोड़ीके कम्पन जैसा ही है।

अगर तारका बाजा पास रखा हो जिसके तार खूब चढ़े हुए हों और कोई तीव्र स्वरसे गाता हो तो कभी कभी जब स्वर ऊंचा और तीव्र होता है तो बाजेमें गूंज उठती है। यहां ध्वनिका साथ वायुके द्वारा असर होता है। गलेके स्वरसे बाजेके किसी तारका स्वर मिलनेसे उसमें अनुनाद पैदा होता है और बाजा गूंजने लगता है। ऐसी सीधी प्रेरणाके लिए स्वर काफी तीव्र होना चाहिए।

इसराज या सरंगीमें बहुत से ऐसे तार होते हैं जो कभी छेड़े नहीं जाते। वे अलग अलग स्वरोंमें मिले हुए होते हैं। जब कोई स्वर बजता है तो उसके मेलके तारमें गूंज पैदा होती है। इन तारोंका यही उपयोग है।

३६ अनुनादके सिद्धान्तपर ही हेल्महोल्जने मिश्र स्वरके आंशिकोंकी पहचानके लिए अनुनादक बनाया। यह धातुका बना कलशके आकारका होता (आ० २०) है। इसमें एक ओर चौड़ा सूराख क होता जिसके द्वारा स्वर कलशके भीतर जाता है। दूसरा टोंटीकी तरह बाहर निकला हुआ पतला सूराख ख होता है। क के द्वारा भीतर जानेवाले स्वरकी

आवृत्ति जब बरतनके भीतरका वायुकी मुक्त आवृत्तिके बराबर हो जाती है तो बरतनके भीतर गूँज पैदा होती है। टोंटी ख को कानमें लगाकर इस गूँजको साफ सुन सकते हैं। हेल्महोल्ज़ने ऐसे अनेक अनुनादक बनाये जिनकी मुक्त आवृत्तियोंका अनुपात १ २ ३ ४ आदि था। यह बताया जा चुका है कि मिश्र स्वरके आंशिकोंकी आवृत्तियोंका अनुपात प्राय १ २ ३ ४ होता है। अगर मिश्र स्वरके मौलिकसे पहले अनुनादकमें



आकृति २०

गूँज उठती है तो इसके दूसरे आंशिकसे दूसरे अनुनादकमें गूँज उठेगी जिसकी सहज आवृत्ति पहले अनुनादककी आवृत्तिकी दूनी है। इसी तरह तीसरा आंशिक तीसरे अनुनादकमें गूँज पैदा करेगा। मान लो कि दूसरा, चौथा छठाँ आंशिक स्वरमें नहीं है। ऐसा होनेसे दूसरे चौथे, छठें अनुनादकमें गूँज न होगी। इस प्रकार अनुनादककी क्रमबद्ध श्रेणीसे मिश्र स्वरका विश्लेषण हो सकता है। इससे आंशिकोंकी तीव्रताका भी अनुमान लगाया जा सकता है। हेल्महोल्ज़ने इस प्रयोगसे इस बातको भी सिद्ध कर दिया कि किसी मिश्र स्वरके उपस्वर अपना स्वतन्त्र अनुनाद पैदा करते हैं।

ऐसे अनुनादकका एक तो आयतन बँधा होता है जिसे छोटा-बड़ा नहीं किया जा सकता। इससे सभी स्वरोंके साथ इसका उपयोग नहीं हो सकता। जिस स्वरको हम इसके साथ मिला सकें उसीका विश्लेषण हो सकता है। दूसरे आंशिकोंकी तीव्रताका अन्दाज अनुमानसे ही लगाया जा सकता है। इन त्रुटियोंको दूर करनेके लिए हाट गरम तारका माइक्रोफोन बनाया गया है। यह अनुनादक हेल्महोल्ज़के अनुनादक-सरीखा ही होता है। इसमें विशेषता यह होती है कि इसकी आवृत्ति जितना चाहें बदल सकते हैं। ध्वनि सुननेके लिए टोंटी ख इसमें नहीं होती। इसके बदले अनुनादकके गलेके भीतर तार बढाये होते हैं जो बिजलीकी धारासे गरम

किये जाते है। इस तारके साथ एक यन्त्र लगा होता है जिसका काँटा
धाराके परिवर्तनको सूचित करता है। अनुनादकके भीतर जब गूँज होती
है तब कम्पनके कारण गलेके भीतरको वायुमे चाल आ जाती है। इसमे
तार कुछ ठण्डा हो जाता और ठण्डकके कारण धाराके बदलते ही यन्त्र
(गल्वेनोमीटर) का काटा घूमता है। अब अगर किसी आंशिकके कारण
अनुनाद पैदा हुआ तो काटेके घुमावसे ही उस आंशिककी तीव्रताका अनु
मान हो जायेगा।

अनुनादके सिद्धान्तपर हो स्वर विश्लेषणके लिए वेगेल और मूरने
बिजलीके उपकरण तयार किये है। बिजलीके इस आंशिक विश्लेषक यन्त्र
में ध्वनि माइक्रोफोनपर पडती है। माइक्रोफोनके तारमें ध्वनिसे उत्पन्न
बिजलीकी धारा, ध्वनि तरगके अनुरूप ही घटती बढती है। अर्थात बिज
लीकी धाराका तरग ठीक वैसा ही होता है जैसा ध्वनिका। माइक्रोफोनकी
सर्किटके साथ गुथी हुई वाल्व सर्किटके द्वारा माइक्रोफोनकी धाराको बढाया
जाता है। इस बढी हुई बिजलीकी धाराके तरगका अनुनादक-सर्किटमे
विश्लेषण करते है। अनुनादक सर्किटकी आवृत्ति ८० से ६००० तक छोटे
छोटे अंशोमें बढायी जा सकती है। भिन्न भिन्न आवर्तकोंके साथ जब इस
सर्किटमें अनुनाद होता है तो धारा बढती है और एकके बाद एक सारे
आवर्तकोंके चिह्न फोटोग्राफके प्लेटपर अंकित हो जाते है। इस विधिसे सारे
विश्लेषणमें पाँच मिनिटसे भी कम समय लगता है। यह विधि मिलरके
फोनोडाइकसे कही अधिक सुविधाकी है। इसलिए ध्वनि विश्लेषणमे अब
यही प्रचलित है।

इसी प्रकारका एक दूसरा उपकरण भी है जिसमें सिलीनियम-सेलका
उपयोग होता है।

हालमें ब्राउनने ध्वनि विश्लेषणके लिए प्रकाशकी एक विधि निकाली
है। इसमें ध्वनिके फिल्मपर प्रकाश डालकर डिफ्रेक्शन चित्र बनाया
जाता है जिसमें सभी आवर्तकोंकी रेखाएँ अंकित हो जाती है। पर

सुविधाकी दृष्टिसे यह विधि उतनी सफल नहीं है जितनी ऊपर बतायी हुई विधि।

३६ अनुनाद सभी द्रव्योंमें एक सा नहीं होता। एक ही बाजेके तार या पत्ती वायु और लकड़ीके पटलके अनुनादमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। इसलिए बाजोंकी बनावट समझनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि भिन्न भिन्न द्रव्योंके अनुनादमें क्यों अन्तर पड़ता है और क्योंकर इस प्रकृति भेदका क्या उपयोग किया जाता है।

प्रत्येक द्रव्यमें एक आन्तरिक अवरोध होता है जिसके कारण वह अपने भीतर किसी बाहरी वस्तुकी या अपने ही अंग और अणुओंकी गतिमें बाधा पहुंचाता है। दोलक जब हवामें डोलता है तो हवा उसकी गतिमें रुकावट डालती है और इसीसे दोलक कुछ समय बाद रुक जाता है। अगर दोलक जलमें डालें तो उसकी गति और जल्दी रुक जायगी क्योंकि जलका आन्तरिक अवरोध वायुसे अधिक है। गाढ़े तेल, गाढ़े दूध या ग्लिसरिनमें यह अवरोध और भी अधिक है। यह अवरोध द्रव्योंमें अपने ही अंग प्रत्यंगकी आपेक्षिक गतिमें भी प्रकट होता है। हम देखते हैं कि कोई द्रव्य जमीनपर गिरते ही बह जाता है जैसे जल और कोई बहनेमें बहुत समय लेता है जैसे अलकतरा। इसका कारण यह है कि अलकतरेके भीतर हर नीचेका तल अपने ऊपरके तलकी गतिमें रुकावट डालता है। यह बात जलमें अलकतरेकी अपेक्षा बहुत कम है।

अब यह समझना आसान है कि यही अवरोध जब द्रव्यके भीतर दोलकके कम्पनमें रुकावट डालता है तब तो यह द्रव्यके अपने अणुओंके कम्पनमें भी रुकावट डालेगा। इसलिए किसी वस्तुका अनुनाद उसके अवरोधपर निर्भर है क्योंकि अनुनाद उसके अणुओंके कम्पनसे ही प्रकट होता है।

इस प्रसंगमें दो-तीन मुख्य बातें याद रखनेकी हैं। पहले देखा है कि जब प्रेरक और प्रेरितकी आवृत्ति एक हो जाती है तो अनुनाद होता है। जिस वस्तुमें अवरोध कम है उसमें इस अनुनादकी तीव्रता अधिक होती है।

यहांतक कि अगर वस्तुका अवरोध शून्य हो तो अनुनादकी तीव्रता अनन्त हो जायेगी। यह आदर्श दशा है।

प्रेरित या प्रेरक में-से किसी एककी तारता घटा या बढ़ा देनेसे अनुनाद की तीव्रता बहुत कम हो जाती है। दोनोंकी तारताम जितना ही अधिक अन्तर होगा यह कमी भी उतनी ही अधिक होगी। पर बराबर अन्तर-के लिए जिस वस्तुका अवरोध अधिक होगा उसमें अनुनादकी तीव्रता का गिरना उतना ही कम होगा। अवरोध बहुत कम हो तो प्रेरक और प्रेरितकी आवृत्ति एक होनेपर अनुनादकी तीव्रता तो बहुत अधिक होगी पर दोनोंकी आवृत्तिमें थोड़ा अन्तर पड़ते ही तीव्रता बहुत अधिक गिर जायगी। ऐसे वस्तुके सम्बन्धमें कहेंगे कि इसका अनुनाद बहुत ही तीक्ष्ण है। अर्थात अवरोध जितना कम होगा अनुनादकी तीक्ष्णता उतनी ही अधिक होगी।

ऊपरके सारे नियम एक काल्पनिक उदाहरणमें साफ हो जायेंगे। हम काठका एक तख्ता लेते हैं जिसके मुक्त कम्पनोंकी आवृत्तियां ५०० हैं और एक चढ़ा हुआ तार लेते हैं जिसकी आवृत्तियां भी ५०० हैं। काठमें अवरोध अधिक है और तारमें बहुत ही कम। अब अगर ५०० आवृत्तियोंवाले द्विभुज से बलात् कम्पन पैदा करें तो उसमें तीव्र अनुनाद होगा। वैसे ही इस द्विभुजसे तारमें भी अनुनाद होगा। पर हम देखेंगे कि काठके अनुनादसे तारका अनुनाद बहुत ही अधिक तीव्र है क्योंकि तारका अवरोध कम है। अगर किसी तरह द्विभुजकी आवृत्ति ५ घटा या बढ़ा दें तो देखेंगे कि तारका अनुनाद अब बहुत ही कम हो गया है। पर काठका अनुनाद क़रीब-क़रीब पहले-जैसा ही है।

सारांश यह कि जिस वस्तुमें अवरोध अधिक है उसमें अनुनाद तो कम होता है पर सभी आवृत्तियोंपर कुछ-न-कुछ ज़रूर होता है। पर जिसमें अवरोध कम है उसमें बराबर आवृत्तिपर बहुत अधिक अनुनाद होता है पर आवृत्तिमें थोड़ा अन्तर होते ही यह बन्द हो जाता है। इसीलिए इसराज जैसे बाजोंमें बगलके सभी तार अलग अलग स्वरमें मिले होते हैं जो अपने

स्वरके ही साथ गूँजते है। पर काठका परदा तो सभी स्वरोंके साथ गूजता है। हाँ इतना जरूर है कि सयोगवश जब काठकी आवर्त्ति और स्वरकी आवर्त्ति एक हो जायगी तो यह गूज अधिक बढ जायगी। यह अवस्था बलामें आती है जब वह एकाएक गूज उठता है। इसे अग्रजोमें 'उल्फ नाद' कहते हैं जिसका अर्थ है भेडियेका स्वर'।

४० आवर्त्ति एक होनेपर जब प्रेरकके कम्पनसे प्रेरितमें अनुनाद होता है तब प्रेरित अपने कम्पनके लिए प्रेरकसे ही शक्ति खींचता है। इससे प्रेरक बहुत ही शीघ्र शान्त हो जाता है और प्रेरितमें कम्पन होने लगता है। अब अगर ये दोनो परस्पर सम्बद्ध हो, तो प्रेरितके कम्पनका असर प्रेरकपर होने लगेगा और अगर दोनोका भार बराबर हो तो प्रेरकमे भी अब उसी तरह अनुनाद होगा जैसा पहले प्रेरितमें हुआ था। अर्थात् जो पहले प्रेरित था वह अब प्रेरक हो गया। इस प्रकार बार-बार एक दूसरेमें शक्तिका आदान प्रदान होता रहेगा। काठकी एक चौकीपर दो बराबर भार और आवर्त्तिवाले द्विभुजको जड दें और उनमें से एकको रजन लगी हुई कमानीसे बजा दें, तो दूसरेमें अनुनाद पैदा होगा। हम देखेंगे कि पहला द्विभुज धीरे धीरे शान्त होता जाता है और दूसरा जोरसे बजने लगता है। फिर इसकी आवाज घटने लगती है और इसकी प्रेरणासे पहला द्विभुज बजने लगता है। इस प्रकार एकके बाद दूसरा द्विभुज बार-बार बजता रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जहाँ दो कम्पमान वस्तुएँ परस्पर जुटी हुई होती हैं वहाँ एकके कम्पनका प्रभाव दूसरेके कम्पनपर पडता है। इसमें प्रेरित और प्रेरकका भेद नहीं किया जा सकता। इन दो वस्तुओंको अनुयोग कहते हैं।

जहाँ अलग अलग आवर्त्तिवाली दो वस्तुएं परस्पर बँधी हो, वहाँ अगर अनुयोग ढीला है तो दोनो अपनी-अपनी स्वतन्त्र आवर्त्तिसे कम्पित होंगी और अगर अनुयोग दृढ हो तो दोनोकी आवर्त्ति एक हो जायगी, जो दोनोके बीचकी आवृत्ति होगी। दृढ अनुयोगके साथ अगर

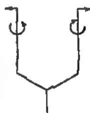
एक वस्तु बहुत ही भारी और अधिक शक्तिवाली हो तो थोड़ी देरके बाद दूसरी हल्की वस्तु भी इसीकी आवृत्ति ग्रहण कर लेगी। अगर दूसरीमें भी कुछ शक्ति हो तो वह भारी वस्तुकी आवृत्तिपर भी कुछ न कुछ असर जरूर डालेगा और उसे थोड़ा विचलित कर देगा। यह बात बांसुरी जैसे सुषिर वाद्यमें देखनेमें आती है। फूंककी हवा जब बांसुरीके मुखकी जिह्वामें लगती है तो उसमें कम्पन होता है जिसकी आवृत्ति वायुके वेगपर निर्भर है। इस कम्पनसे बांसुरीके भीतरकी वायुमें प्रेरित कम्पन पैदा होता है जिसकी आवृत्ति बांसुरीके भीतर बन्द वायुकी मुखसे लेकर खुले सूराख तककी लम्बाईपर निर्भर है। इस वायुके स्तम्भकी शक्ति अधिक होनेसे यह फूंककी वायुकी आवृत्तिको दबा देता है और इसीकी आवृत्तिसे बांसुरी बजती है। इसीलिए इस स्तम्भकी लम्बाई घटाने-बढ़ानेसे ही स्वर बदलता है। पर जोरसे फूंककर बांसुरीकी वायुके कम्पनपर प्रभाव डाला जा सकता है और इस प्रकार स्तम्भकी लम्बाई बिना घटाये ही स्वरको थोड़ा ऊंचा किया जा सकता है।

४१ ऊपर जो कम्पमान वस्तुओंके अनुयोगकी चर्चा की गयी है जो दो प्रकारका होता है—एक 'शिथिल अनुयोग' दूसरा 'दृढ़ अनुयोग'। वाद्य-यन्त्रोंके सम्बन्धमें इस अनुयोगका बड़ा महत्त्व है। बाजोंमें कई अनुनादक होते हैं —जैसे, तूंबा, तूंबेके भीतरकी वायु, काठका परदा, खोखली डांडी, लोहेका चद्दरा, काठ या हड्डीकी घोड़िया आदि। इन सभीकी मुक्त आवृत्ति अलग अलग होती है, अवरोध भी अलग अलग होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि किसी स्वरका इन सारे समुदायपर क्या असर होता है इसकी कुछ धारणा हो। इसके लिए यह देखना जरूरी है कि अनुयुक्त अनुनादकोंकी मुक्त आवृत्ति क्या होती है। जब भिन्न भिन्न आवृत्तिवाले दो अनुनादकोंका शिथिल अनुयोग होता है तो अनुयुक्त अनुनादककी दो मुक्त आवृत्तियां होती हैं जो अलग-अलग दोनों अनुनादकोंकी आवृत्तियोंके बराबर होती हैं। दृढ़ अनुयोग होनेसे भी इसकी दो आवृत्तियां होती हैं, पर

उनमें-से एक छोटी आवृत्तिवाले अनुनादककी आवृत्ति भी छोटी और दूसरी बड़ी आवृत्तिवाले अनुनादककी आवृत्ति भी बड़ी होती है। दोनों अनुनादकोंकी आवृत्ति बराबर होनेपर भी इस अनुयुक्त अनुनादककी दो आवृत्तियाँ होती हैं जिनमें-से एक बराबर आवृत्तिसे बड़ी और दूसरी छोटी होती है।

दोसे अधिक अनुनादकोंके अनुयोगकी भी इसी प्रकारकी व्यवस्था होगी।

४२ बाजोंमें काठका परदा, तूंबा आदि अनुनादकोंका रहना आवश्यक है क्योंकि इनके बिना आवाज ही सुनायी न पड़ेगी। जब हम किसी कांपते हुए द्विभुजको अँगुलियोंसे पकड़कर ऊपर हवामें रखते हैं तो आवाज कुछ भी सुनायी नहीं पड़ती। पर जब उसको मेज़पर खड़ा करते हैं तो तेज आवाज़ निकलने लगती है। इसी तरह अगर तार किसी काठके परदेपर न चढ़ाया हो तो उसकी आवाज भी सुनायी न पड़ेगी। इसका कारण यह है कि द्विभुज या तार स्वयं वायुके बहुत थोड़े कणोंको चालित करता है जो द्विभुजकी भुजाओंके (आ० २१) या पतले तारके चारों ओर घूमते रहते हैं। जब द्विभुजकी भुजा बायीं ओरके कणोंको दबाती है तो दाहिनी ओर खाली पड़ जाता है इससे बायीं ओरके कण बड़ी तेज़ीसे दाहिनी ओरकी खाली जगहको घेर लेते हैं। इस तरह भुजाके कम्पनसे उसके चारों ओरकी वायुके कण बायेंसे दाहिने और दाहिनेसे बायें घूमते रहते हैं। इसलिए भुजाके पासके कणोंका आन्दोलन तरंगके रूपमें आगे नहीं बढ़ पाता। तरंग तो तभी आगे बढ़ सकता है जब वायुके कण चक्कर न काटकर अपने आगेके कणोंको सीधे ठोकर मारें। जब द्विभुजको मेज़पर रखते हैं तो मेजके तख्तेमें प्रेरित कम्पन पैदा होता है और वह तख्ता वायुके काफी लम्बे चौड़े तलको आन्दोलित कर देता है। इस आन्दोलित तलके वायु-कण अपने आगेके कणोंको ही ठोकर मारते हैं क्योंकि चक्कर काटनेकी गुंजाइश अब न रही। इस प्रकार जो



आकृति २१

ध्वनि हम सुनते हैं वह असलमें अनुनादककी ही होती है। इससे यह सिद्ध है कि बाजाकी बनावटमें अनुनादक बड़े आवश्यक अंग हैं।

बाजाके लिए यह भी आवश्यक है कि उनसे निकलनेवाले सभी स्वरों को या कुछ चुने हुए स्वरों और उपस्वरोंका उनका अनुनादक बराबर ही पुष्ट करे। पर यदि अनुनादककी मुक्त आवृत्ति नादकसे निकले हुए बीचके किसी एक स्वरपर पड़े तो वह स्वर बहुत ही तीव्र हो उठेगा। इससे बचनेके लिए यह आवश्यक है कि अनुनादककी मुक्त आवृत्ति बाजे या नादकके स्वरके विस्तारके बाहर पड़े। हमने देखा है कि दो अनुनादकोंके अनुयोगसे मुक्त आवृत्ति एक ओर तो नीचे उतर आती हैं और दूसरी ओर ऊँचे चढ़ जाती है। इससे दोनोंके बीचका अन्तर बढ़ जाता है जिसके बीच बाजेके स्वरोंका सारा क्षेत्र समा सकता है। ऐसा होनेसे बाजेके किसी भी स्वरके साथ अनुयुक्त अनुनादककी मुक्त आवृत्तिका मेल न होगा और सभी स्वरोंको अनुनादकसे लगभग बराबर पुष्टि मिलेगी।

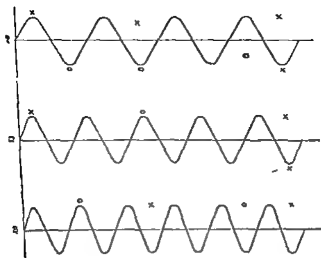


८ ढोल और परिणामी स्वर

४३ जब दो स्वरोंकी आवृत्तियोंमें बहुत अधिक अन्तर होता है तो ऐसे स्वरोंको साथ साथ सुननेपर भी कानोंको इनके अलग अलग अस्तित्व का बोध होता है। जब इनकी आवृत्तियाँ एक हो जाती हैं तो दोनों स्वर एक-दूसरेसे ऐसे मिल जाते हैं कि इनके अलग-अलग अस्तित्वकी धारणा नहीं होती। पर जब दोनोंकी आवृत्तियोंमें बहुत थोड़ा अन्तर रहता है तो दोनों स्वर मिले हुए-से तो मालूम होते हैं पर यह संयुक्त स्वर कभी जोर का जान पड़ता है और कभी धीमा हो जाता है अर्थात् स्वर उठ-उठकर गिरता हुआ-सा जान पड़ता है। इस प्रकार तीव्रताके घटने-बढ़नेसे ऐसा आभास होता है जैसे स्वर हिल रहा हो। इस हिलनेको ही 'ढोल' कहते हैं। यदि एक स्वर किसी दूसरे स्वरसे धीरे धीरे मिलाया जाये तो पहले इस ढोलकी गति तीव्र होगी फिर क्रमशः धीमी होती जायेगी और अन्तमें ढोल बिल्कुल गायब हो जायेंगे। इस दशामें दोनों स्वर पूरी तरह मिला हुआ समझा जायेगा।

दो स्वरोंके मेलसे ढोल कैसे पैदा होता है यह आगे बताया जाता है।

अनुच्छेद २० में तरंग-संयोगकी विधि बतायी गयी है और अनुच्छेद ३१ में यह बताया गया है कि अगर दो तरंगें बराबर मान और विस्तारकी हों तो उनके संयोगसे एक ऐसी तरंग बनती है जिसका विस्तार दूना और तीव्रता चौगुनी होती है। अब यह विचार करना है कि अगर दो तरंगोंकी आवृत्तियोंमें बहुत ही थोड़ा अन्तर हो और विस्तार लगभग बराबर हो तो क्या परिणाम होगा। आवृत्तिमें थोड़ा अन्तर होनेका मतलब है कि तरंगमानमें भी थोड़ा ही अन्तर है।



आकृति २२

मान लो कि तीन द्विभुज हैं जिनमेंसे एककी आवृत्ति ४, दूसरेकी ५ और तीसरेकी ६ प्रतिसेकेण्ड है। यह ठीक है कि इतनी थोड़ी आवृत्तिसे स्वर पैदा नहीं होता। पर यहाँ मोटे तौरसे समस्याको समझनेके लिए ऐसा मान लिया गया है। पहला द्विभुज एक सेकेण्डमें ४ तरंगें पैदा करेगा जो आ० २२ (१) में दिखाया गया है। उतनी ही दूरीमें दूसरे द्विभुजकी ५ तरंगें (२) और तीसरे द्विभुजकी ६ तरंगें (३) आ जायेंगी क्योंकि तीनों ही द्विभुजके स्वर वायुमें बराबर ही वेगसे चलते हैं। अब जब पहला और दूसरा द्विभुज साथ साथ बजते हैं तो दोनोंकी ध्वनि तरंगें वायुमें एक दूसरपर पड़ती हैं। इन दोनों तरंगोंके संयोगका परिणाम तरंग (२) को तरंग (१) पर डालनेसे जाना जा सकता है। तरंग (२) को तरंग (१) पर डालनेसे (२) का पहला उभार (१) के पहले उभारपर और (२) की आखिरी खाल (१) की आखिरी खालपर पड़ती है। ये

स्थान चोरों (x) से चिह्नित किये गये हैं। पर बीचमें ० चिह्नित स्थान पर (२) की उभार (१) की खालपर पड़ती है। इसलिए शुरू और आखिरमें तो ध्वनिकी तीव्रता बहुत बढ़ जायेगी और बीचमें प्रायः शून्य हो जायेगी। इसलिए स्वर एक सेकेण्डमें एक बार धीमा होकर तेज हो जायेगा। अर्थात् कानोंको एक सेकेण्डमें एक डाल का अनुभव होगा। इसी प्रकार अगर तरंग (३) को तरंग (१) पर डालें तो शुरू और आखिरमें तो क्रमशः उभार उभारपर और खाल खालपर पड़ेगी ही पर बीचमें भी खाल खालपर पड़ेगी। इसके अतिरिक्त बीचके दोनों ओर ० चिह्नित दो स्थानोंपर क्रमशः उभार खालपर और खाल उभारपर पड़ेगी। इसलिए ध्वनिकी तीव्रता एक सेकेण्डमें दो बार गिरेगी और दो बार उठेगी अर्थात् १ सेकेण्डमें दो डाल सुनायी देंगे।

इस दृष्टान्तसे डालकी उत्पत्तिकी प्रक्रिया समझमें आ जाती है। साथ ही-साथ यह भी मालूम होता है कि दो स्वरोंकी आवृत्तियोंमें जितना अन्तर होगा एक सेकेण्डमें उतने ही डाल सुन पड़ेंगे।

डाल स्पष्ट सुनायी दें इसके लिए यह आवश्यक है कि दोनों स्वरोंकी तीव्रता लगभग बराबर हो क्योंकि तभी तीव्रता पूरी तरह गिर और उठ सकती है।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि डाल कानोंका अनुभव मात्र या विकार नहीं है। यह क्रिया निश्चित रूपसे माध्यममें होती है इसलिए वास्तविक है। इसकी वास्तविकता यहाँतक सिद्ध है कि अगर दो द्विभुजाओंको जिनकी आवृत्तियोंमें दो-चारका अन्तर हो एक चौकीपर बैठाकर बजावें और चौकीपर अंगुली रखें तो वह भी डोलका अनुभव करेगी।

गवैये इस डोलको अच्छी तरह जानते हैं क्योंकि इसे ही पकड़कर वे स्वरोंको पूरी तरह मिलान कर सकते हैं। दो तारोंके स्वरोंको मिलानेमें जब डोल सुनायी पड़ने लगता है तो समझा जाता है कि दोनों स्वर एक दूसरके बहुत निकट आ गये हैं। अब यह ढोल धीमा होते-होते गायब

हो जाता है तो दोनों स्वर बिलकुल मिल जाते हैं। इस मिलानकी जगहसे किसी एक तारके स्वरको चाहे नीचे खिसकायें या ऊपर दोनों ही हालतमें डोल पैदा हो जायेंगे। इसलिए डोलको पकड़कर स्वरोंका बड़ा ही सच्चा मिलान होता है।

पर स्वरोंके मिलानका साधन होनेमें ही डोलका मूल्य नहीं है। हेल्महोजने डोलके आधारपर ही स्वरोंके संवाद और विवादको समझाया है इसीलिए यह संगीतकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी बात हो गयी है।

४८ जब दो स्वरोंकी आवत्तियोंमें अधिक अन्तर होता है तो प्रति सेकेण्ड डोलोंकी गिनती इतनी बढ़ जाती है कि कान इन्हें नहीं पकड़ पाते। पर अगर दोनों स्वर काफ़ी तीव्र हों तो एक तीसरा स्वर सुनाया पड़ता है जिसकी आवृत्ति दोनों स्वरोंके अन्तरके बराबर होती है। जैसे अगर एक स्वरकी आवत्ति ३०० हो और दूसरेकी २०० तो एक तीसरा स्वर सुनायी पड़ेगा जिसकी आवत्ति १०० होगी इन्हें 'शेषिक स्वर' कहते हैं। ऐसे स्वरोंका पता पहले डोसोर्जीन और पीछे टार्टिनीने लगाया था। डोलकी तरह ही शेषिक स्वर भी दो स्वरोंके अन्तरपर निर्भर हैं। इसलिए पहले बनानिकोंकी यह धारणा थी कि जब डोलकी गिनती बहुत बढ़ जाती है तो वही स्वरका रूप ले लेता है। पर बादको हेल्महोजने ऐसे स्वरका भी पता लगाया जिसकी आवृत्ति दोनों स्वरोंके जोड़के बराबर होती है। इसे 'यौगिक स्वर' कहते हैं। जैसे ऊपरके उदाहरणमें यौगिक स्वर ५०० आवृत्तियोंका होगा। ऐसा स्वर कठिनाईसे सुन पड़ता है। शेषिक और यौगिक इन दोनों ही प्रकारके स्वरोंके लिए 'परिणामी स्वर' का व्यवहार होता है। जब परिणामी स्वर दोनों ही प्रकारका होता है तो डोल इसका कारण नहीं हो सकता। इसीलिए हेल्महोजने एक नये सिद्धान्तसे इन स्वरोंके अस्तित्वको सिद्ध किया। उसने यह बताया कि जब दो तीव्र स्वर एक साथ माध्यमके अणुओंपर पड़ते हैं तो उनके कम्पनके ढंगमें विषमता आ जाती है। इस विषमताको गणितकी कसौटीपर कसकर उसने यह परि-

णाम निकाला कि इन दोनों स्वरोंके अलावा अधिक और यौगिक स्वर माध्यममें आपस आप पैदा हो जाते हैं। अनुनादकके द्वारा उसने यह भी सिद्ध कर दिया कि ये दोनों ही स्वर ढोलकी तरह ही वास्तविक हैं, कानोंके विकार नहीं।

हेल्महोल्ट्जके सिद्धान्तके अनुसार अधिक और यौगिक स्वरोंकी उत्पत्तिके लिए स्वरोंका तीव्र होना आवश्यक है। पर बादको यह पता चला कि सामान्य तीव्रतापर भी परिणामी स्वर सुनायी पड़ते हैं। पूरी जाँचपर यह पाया गया कि सामान्य तीव्रतासे उत्पन्न परिणामी स्वर कानोंमें ही पैदा होते हैं, बाहर माध्यममें इनका अस्तित्व नहीं होता। ऐसे परिणामी स्वर स्वसंवेद्य हैं।

वास्तविक और स्वसंवेद्य, इन दोनों ही प्रकारके परिणामी स्वरोंकी व्याख्या शाइजमानने एक व्यापक कल्पनासे की। उसने यह बताया कि अगर किसी वस्तुका कम्पन आगे और पीछे, दोनों ही दिशाओंमें, एक-सा न हो, जैसे मान लो कि एक ओर विस्तार अधिक हो और दूसरी ओर कम, तो दोनों ही प्रकारके परिणामी स्वर आपसे आप पैदा हो जायेंगे। उसने चमड़ेके परदेके साथ प्रयोग करके भी इस बातको सिद्ध किया। कानके परदेकी बनावट इसी तरहकी है क्योंकि इसके एक ओर तो हवा रहती है और दूसरी ओर हड्डियाँ। हालमें वैज्ञानिकोंने यह बताया है कि कानकी भीतरी झिल्लियोंमें भी इसी प्रकारकी विषम गति होती है। इस विषमताके कारण ही थोड़ी तीव्रतापर भी कान परिणामी स्वरोंको पैदा कर देते हैं पर वायुके अणुओंके कम्पनमें यह विषमता अधिक तीव्रतापर ही आती है। इसलिए मामूली तीव्रतापर वायुमें परिणामी स्वर नहीं पैदा होते जैसा कि हेल्महोल्ट्जने बताया है।

ये परिणामी स्वर केवल मौलिक स्वरोंसे ही नहीं बल्कि उनके आनिषंगोंसे भी पैदा होते हैं। जैसे ऊपरके उदाहरणमें दूसरे स्वरका दूसरा आनिषंग ४०० और पहले स्वरका दूसरा आनिषंग ६००, २०० आवृत्तियोंका अधिक

और १००० आवर्त्तियाका यौगिक स्वर पदा करेंगे। ये दोना क्रमश मौलिकाके शपिक और यौगिकके दूसर आंशिक ह। इसम स देह नही कि आंशिकासे उत्पन्न परिणामी स्वर सदा कानामें ही पदा होंगे।

शपिक स्वराका उपयोग टेलीफोन लाउडस्पीकर, सीटी आदि अनेक उपकरणाके तयार करनम किया जाता ह। पर सगीतम इनका विशेष महत्त्व ह क्योंकि स्वराके सवाद विवादपर इनका बहुत बडा असर पडता ह।



६ स्वर और ग्राम

४५ हम देखते हैं कि संगीतमें नाद एक ही स्थानपर स्थिर नहीं रहता; वह कभी ऊपर चढ़ता है, कभी नीचे उतरता है। यहाँतक कि मामूली बोल चालमें भी शब्दकी तारतामें कुछ-न-कुछ अंतर होता ही है। पर मुख्य बात यह है कि नादका इस प्रकार ऊपर चढ़ना या नीचे उतरना लगातार नहीं होता। वह एक एक सीढ़ी ऊपर चढ़ता और एक एक सीढ़ी नीचे उतरता है। अगर नादका पहला स्थान २४० आवृत्तियोंका है तो दूसरा स्थान २७० आवृत्तियोंका होगा। इन दोनोंके बीच नादके अनंत विराम हो सकते हैं। पर संगीत या मामूली बोल चालमें भी इन अनगिनत विरामोंका उपयोग नहीं होता। नादके इस चढ़ाव उतारमें वह जिन जिन सीढ़ियों या तारताओंपर ठहरता है उन्हें ही संगीतके स्वर कहते हैं।

संगीतकी पुरानी और नयी सभी पद्धतियोंमें नादके दो सीमान्त विराम माने गये हैं। यह सभी जगह एक से हैं। निचली सीमाका जो स्वर माना जाता है, ऊपरली सीमाका स्वर उससे दूना आवृत्तिका होता है। अगर निचली सीमाका स्वर २०० आवृत्तियोंका हो तो ऊपरली सीमाका स्वर ४०० आवृत्तियोंका होगा और अगर निचली सीमा ३०० की हो तो ऊपरली सीमा ६०० की होगी अर्थात् ऊपरली सीमाका स्वर नीचली सीमाके स्वर का आवर्तक होता है (अनुच्छेद २५)। इसीलिए सभी पद्धतियोंमें इन दोनों सीमान्त स्वरोंको एक ही नाम देते हैं। हिंदुस्तानी पद्धतिमें पहले स्वरको 'षड्ज' या संक्षेप रूपमें 'स' और दूसरे स्वरको तार षड्ज या सं कहते हैं। पहले स्वरको साधारण बोल चालकी भाषामें 'सुर' कहते हैं। चाहे जिस किसी आवृत्तिकी ध्वनिपर सुर बाँधें, उसे षड्ज कहेंगे। फिर इसी 'सुर'से और और स्वरोंकी ऊँचाई-नीचाई नापी जायगी, जिस तरह समतल जमीनसे

ऊँचाई नीचाई नापकर कहते हैं कि यह मकान इतना ऊँचा है या यह कूआ इतना गहरा है। शास्त्रीय परिमाणमें 'सुर'को स्वरित कहा जायेगा। दूसरे सभी स्वरोंका मान इस स्वरितपर ही निर्भर है। अन्य स्वरोंकी तारता चाहे न बदले पर 'स्वरित' बदलनेसे उनकी प्रकृति ही बदल जाती है।

स और सन्के बीच प्रायः सभी जगह स्वरोंकी छह सीढ़ियाँ कायम की गयी हैं। बीचके इन छह स्वरोंके साथ पहला स्वर मिला देनेसे सात स्वरोंका एक सप्तक होता है। पश्चिमी पद्धतिमें इन सातोंके साथ आखिरका स्वर मिलाकर एक अष्टक मानते हैं। सप्तक या अष्टकके सात स्वरोंके भिन्न भिन्न नाम दिये गये हैं। हिन्दुस्तानी पद्धतिमें इन्हें क्रमशः षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद और तार षड्ज या संक्षेपमें स, र, ग, म, प, ध, न, सं कहते हैं। विलायती पद्धतिमें इन्हें C D E F, G, A B C कहते हैं या सॉल्फा पद्धतिमें do re mi fa sol, la, si, do (डो, री, मी, फा, सॉल्, ला, सी, डो) कहते हैं।

ऊपर कहे हुए सीमाबन्धनसे यह न समझना चाहिए कि मनुष्यके स्वरका विस्तार इसी एक सप्तक तक सीमित है या संगीतका समस्त व्यापार इस सीमाके भीतर ही होता है। मनुष्यका स्वर और संगीत इन दोनों सीमाओंको लाँघकर एक ओर बहुत ऊँचे तक और दूसरी ओर बहुत नीचे तक जाता है। इसीलिए हिन्दुस्तानी पद्धतिमें मन्द्र, मध्य और तार नामके तीन सप्तक माने गये हैं। भिन्न भिन्न सप्तकोंमें एक ही स्वर दोहराये जाते हैं। संकेतमें तीनों सप्तकोंका विस्तार नीचे दिया जाता है।

मन्द्र			मध्य							तार		
स	र	न	स	र	ग	म	प	ध	न	स	र	ग

तार सप्तकके स, र, ग आदिकी आवृत्ति क्रमशः मध्य सप्तकके स, र, ग आदिकी आवृत्तिसे दूनी होती है। इसी प्रकार मन्द्र सप्तकके स़, ऱ,

गुणान्तिका आवृत्ति क्रमशः मध्य सप्तकके स, रे, ग आदिकी आवृत्तिसे आधी होती है। मनुष्यके गलेका खयाल करके ही ये तीन सप्तक माने गये हैं, नहीं तो तारसे भी ऊपर अतितार और मन्द्रसे भी नीचे अतिमन्द्र सप्तक हो सकते हैं। विलायती बाजा प्यानोमें सात सात सप्तकके स्वर बनाये होते हैं।

४६. स्वरोंके समूहको ग्राम कहते हैं। ग्राममें सातसे अधिक स्वर भी रह सकते हैं। ग्रामका भेद, असलमें स्वरोंकी स्थितिपर निर्भर है। अगर एक ग्रामका रे किसी दूसरे ग्रामके रे से कुछ नीचे उतरा हुआ हो तो दोनों दो ग्राम समझे जायँगे। उत्तर भारतमें प्रचलित हिन्दुस्तानी ग्राम और पश्चिमके आधुनिक ग्रामका मिलान करनेसे यह भेद समझमें आ जायगा। नीचे प्रत्येक स्वरकी आवृत्तिके साथ दोनों ग्राम दिये गये हैं।

	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
हिन्दुस्तानी ग्राम—	२४०	२७०,	३००,	३२०,	३६०	४०५	४५०,	४८०
विलायती ग्राम—	२४०	२७०,	३००	३२०,	३६०	४००	४५०	४८०

इन दो ग्रामोंमें ध को छोड़ बाकी स्वर एक से ही हैं। ध हिन्दुस्तानी ग्राममें कुछ चढ़ा हुआ है। इसीसे ये दोनों ग्राम दो समझे जाते हैं।

भारतवर्षमें, बहुत ही प्राचीन कालमें शायद तीन ग्रामोंका प्रचार था। ये 'षड्ज ग्राम' 'मध्यम ग्राम' और 'गान्धार ग्राम' के नामसे पुकारे जाते थे। भरत कालमें ग-ग्रामका लोप हो गया और दो ग्राम रह गये। बादको म-ग्राम भी गायब हो गया और केवल षड्ज ग्रामका प्रचार रहा। इन तीनों ग्रामोंका भेद भी स्वरोंकी आपेक्षिक तारताके कारण ही था। ऊपर जो हिन्दुस्तानी ग्राम दिया गया है, वह भातखण्डे आदि संगीत शास्त्रियों द्वारा स्वीकृत ग्राम है।

४७. यह देखा जाता है कि एक ही गाना चाहे कोई नीचे स्वरसे शुरू करे या ऊँचे स्वरसे, उसके रूपमें कोई भेद नहीं पड़ता। यहाँतक कि जब एक लड़का और युवक साथ-साथ गाते हैं तो दोनोंके स्वरोंकी तारतामें

अंतर रहता है पर दोनोंके ग्रामसे निकले हुए गानके स्वरोंका पारस्परिक सम्बन्ध एक सा ही रहता है। इससे यह जान पड़ता है कि ग्रामके स्वरोंका सम्बन्ध सीधे आवृत्तिपर निर्भर नहीं है। मध्य सप्तकमें स के बाद र कहें तो वह ठीक वैसा ही मालूम होगा जैसा तार सप्तकमें स के बाद र कहने पर। इसलिए स और र के बीचका अवकाश चाहे जैसे भी नापा जाय दोनों ही सप्तकोंमें बराबर आना चाहिए। अब अगर मध्य सप्तकमें स की आवृत्तियाँ २४० हैं और र की २७० तो तार सप्तकमें स की आवृत्तियाँ ४८० होंगी और र की ५४० क्योंकि तार सप्तकके सभी स्वरोंकी आवृत्तियाँ मध्य सप्तकके स्वरोंकी आवृत्तियोंसे दूनी हो जाती हैं। यहाँ अगर आवृत्तिके अन्तरसे इन दोनों स्वरोंके अवकाशको नापें तो मध्य सप्तकका अवकाश ३० और तार सप्तकका ६० हो जाता है। इसलिए इस तरीकेसे अवकाशका कोई निश्चित माप नहीं हो सकता। पर अगर स और र की आवृत्तियोंका अनुपात लें तो एक निश्चित माप निकल आता है। मध्य सप्तकमें यह अनुपात २७०/२४० = ९/८ है। तार सप्तकमें भी यह अनुपात ५४०/४८० = ९/८ ही होगा। इसलिए दो स्वरोंके बीचका अवकाश उनकी आवृत्तियोंके अनुपातसे अर्थात् उच्च स्वरकी आवृत्तिको नीच स्वरकी आवृत्तिसे भाग देकर निकाला जाता है। स्वरोंके बीचके अवकाशको 'अन्तराल' कहते हैं। ऊपरके हिसाबसे अगर स की आवृत्तियाँ २०० हों तो र की आवृत्ति २२५ होगी। क्योंकि दोनोंका अन्तराल ९/८ ही होना चाहिए। कोई गवैया चाहे किसी भी आवृत्तिपर स बाँधे उसके र की आवृत्ति स की आवृत्तिकी ९/८ गुनी होनी चाहिए। क्योंकि स और र का यह अन्तराल सदा बराबर होना चाहिए। इसमें थोड़ा भी अन्तर होनेसे गवैया बेसुरा समझा जायेगा।

ऊपरके हिसाबसे मध्य स और तार स का अन्तराल २ होता है। यह एक सप्तकका अन्तराल है जो सभी जगह, सभी ग्रामोंमें इतना ही होता है। ऊपर स्वरोंकी आवृत्तियाँ दी गयी हैं। इनसे हिसाब लगाकर सप्तकके सभी स्वरोंका स से अन्तराल निकाला जा सकता है। नीचे तीनों ग्रामोंके

लिए स से भिन्न भिन्न स्वराके अतराल दिय गये ह—

	स	र	ग	म	प	ध	[illegible]	स
हिदुस्तानी ग्राम—	१	९/८	५/४	४/३	३/२	२७/१६	१५/८	२
विलायती ग्राम—	१	९/८	५/४	४/३	३/२	५/३	१५/८	२

य सारे अतराल स स निकाल गय ह जिस स्वरित कहत ह और इस ही ग्रामका आधार मानते ह । जस, स और ग का अतराल ग की आवत्ति ३०० म स की आवत्ति २४० का भाग दकर ३००/२४० = ५/४ निकलता ह । इसी रीतिम र और ग का अतराल भी निकाला जा सकता ह जस, ग की आवत्ति ३०० मॅ र की आवत्ति २७० का भाग दनेस ३००/२७० = १०/९ निकलता ह जा र और ग क बीचका अतराल ह । इस प्रकार सभी स्वराक पारस्परिक अतराल निकाल जा सकत ह । नीच पास पासके हर दो स्वराक अन्तराल दिये जाते ह—

	स–र	र–ग	ग–म	म–प	प–ध	ध–न	न–स
हिदुस्तानी ग्राम—	९/८	१०/९	१६/१५	९/८	९/८	१०/९	१६/१५
विलायती ग्राम—	९/८	१०/९	१६/१५	९/८	१०/९	९/८	१६/१५

इस सारिणाको दखनेसे पता चलता ह कि दोना ही पद्धतियाके ग्राम तीन प्रकारके अतरालास बन है—पहला ९/८, दूसरा १०/९ और तीसरा १६/१५ । इनमें पहला सबस बडा और तीसरा सबस छाटा ह । इसीलिए पहलेको 'गुरु स्वर' दूसरको लघु स्वर और तीसरको अध स्वर कहत ह । यहा 'अध स्वर का यह अथ नही कि वह गुरु या लघुका ठीक आधा ह । अध विशेषण सिफ उसकी छोटाईको बताना ह । प्राचीन पद्धतिमें भी भरतके मतानुसार तीन प्रकारक स्वर मान गये ह —एक चतुश्रुतिक दूसरा त्रिश्रुतिक और तीसरा द्विश्रुतिक । ये क्रमश गुरु लघु और अध स्वराके पयाय ह ।

उपरका सारिणीपर ध्यान दनस यह भी पता चलगा कि हिदुस्तानी

और विलायती ग्रामोंका भेद केवल स्वरके क्रममें है। जहां हिंदुस्तानी पद्धतिमें ध गुरु स्वर और न लघु स्वर है वहां विलायती पद्धतिमें ध लघु स्वर और न गुरु स्वर है।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि 'स्वर' शब्दका व्यवहार दो अर्थोंमें होता है। एक तो विशेष आवृत्ति या तारताके नादको स्वर कहते हैं, दूसरे, ऐसे दो नादोंके अन्तरालको भी स्वर कहते हैं। जब हम गुरु या लघु स्वर कहते हैं तो हमारा मतलब गुरु और लघु अन्तरालसे ही होता है। प्राचीन भारतीय पद्धतिमें तो स्वरका व्यवहार अन्तरालके ही अर्थमें होता था।

४८ जैसे अन्तरालके मापमें विशेषता है वैसे ही अन्तरालोंके जोड़ घटाव में भी विशेषता है। जब दो अन्तरालोंको जोड़ना होता है तो उन्हें एक दूसरेसे गुणा करते हैं और जब किसी बड़े अन्तरालसे किसी छोटे अन्तरालको घटाना होता है तो बड़ेमें छोटेका भाग देते हैं। यह बात उदाहरणसे स्पष्ट हो जायेगी। यह बताया जा चुका है र ग अन्तराल $\frac{९}{८}$ है और ग म अन्तराल $\frac{१६}{१५}$ है। अब र ग में ग म जोड़नेसे र म अन्तराल निकल आना चाहिए। पर यह $\frac{९}{८}$ और $\frac{१६}{१५}$ को जोड़कर नहीं बल्कि दोनोंका गुणा करके निकलेगा। इस हिसाबसे र म अन्तराल $\frac{९}{८} \times \frac{१६}{१५} = \frac{३२}{२७}$ हुआ। अब पहली सारिणीसे र और म की आवृत्ति लेकर अन्तराल निकालो। र की आवृत्ति २७० और म की ३२० है। इस हिसाबसे र म का अन्तराल $\frac{३२०}{२७०} = \frac{३२}{२७}$ हुआ जो र ग और ग म अन्तरालका गुणा करनेपर निकला था। इस र-म अन्तरालमें म प अन्तराल और जोड़ो। म प अन्तराल $\frac{९}{८}$ है इसलिए र प अन्तराल $\frac{३२}{२७} \times \frac{९}{८} = \frac{४}{३}$ हुआ। प की आवृत्ति ३६० और र की २७० है। इसलिए इस हिसाबसे भी र-प अन्तराल $\frac{३६०}{२७०} = \frac{४}{३}$ ही होगा। एक सप्तकके सभी अन्तरालोंको जोड़नेसे स और सं का अन्तराल निकल आना चाहिए जो २ है। तीसरी सारिणीके सभी अन्तरालोंको गुणा करनेसे भी २ ही निकलता है। इन उदाहरणोंसे यह सिद्ध होता है कि अन्तरालोंको जोड़ना हो तो उन्हें गुणा करना चाहिए। वैसे ही, स ग अन्तरालसे स र अन्तराल

घटानेसे रे ग अन्तराल निकलना चाहिए जो $\frac{१०}{९}$ है। सा ग अन्तराल $\frac{५}{४}$ है और सा रे $\frac{९}{८}$। यहाँ $\frac{५}{४}$ में $\frac{९}{८}$ का भाग देनेसे इष्ट अन्तराल $\frac{१०}{९}$ निकल आता है।

४६. पर अन्तराल नापनेकी दो विधियाँ और बतायी जाती हैं। ऊपरकी विधिमें दो गड़बड़ बातें हैं। एक तो यह कि अन्तरालोंको जोड़ने घटानेमें उन्हें गुणा भाग करना होता है। दूसरी यह कि भिन्नवाली संख्यासे अन्तरालकी छोटाई-बड़ाईका पता संख्याको देखते ही नहीं लगता। उदाहरणतः कि $\frac{९}{८}$ बड़ा है या $\frac{१०}{९}$ यह भी तत्काल बताना कठिन है। पर गणितमें एक विधि बतायी गयी है जिसमें गुणा करना होता है तो घातोंको जोड़कर गुणनफल निकालते हैं। इसे लॉगरिद्म कहते हैं। इस विधिमें गुणाकी क्रियाके बदले जोड़की क्रिया करनी पड़ती है। यह अन्तरालके जोड़ने घटानेके लिए बड़ी उपयुक्त विधि है।

लॉगरिद्म यहाँ समझाया नहीं जा सकता। पर इसके प्रयोगकी विधि बतायी जाती है जो उसके सिद्धान्तको बिना समझे भी बरती जा सकती है। बाजारमें लॉगकी एक सारिणी मिलती है जिसमें प्रत्येक अंकका लॉग दिया होता है। अब अगर सा-ग अन्तराल निकालना है जो ऊपरके हिसाबसे $\frac{५}{४}$ है तो सारिणीसे $\frac{५}{४}$ का लॉग ले लो। यह ५ के लॉगमें ४ का लॉग घटानेसे निकलेगा। जहाँ भी भिन्नका लॉग निकालना होता है वहाँ अंशके लॉगमें से हरका लॉग घटाया जाता है। इस प्रकार भिन्न अन्तरालका लॉग निकाल कर उसमें १००० का गुणा कर देनेसे अन्तरालका नया माप निकल आता है। इस नये प्रमापको बनानेवालेके नामपर 'सेवर्ट' कहते हैं। अगर सब अन्तराल सेवर्टमें ही नापे गये हों तो दो अन्तरालोंको जोड़नेके लिए इन्हें अब गुणा नहीं करना पड़ता सीधे जोड़ना होता है।

मिसालके तौरपर एक अष्टकका अन्तराल $\frac{२}{१}$ अर्थात् २ है। लॉगकी सारिणीमें २ का लॉग ३०१० मिलेगा। इसे १००० से गुना करनेपर सेवर्टके प्रमानमें एक सप्तकका अन्तराल ३०१ सेवर्ट निकलता है। दूसरे अन्तराल भी लॉगकी सारिणीकी सहायतासे बड़ी आसानीसे निकाले जा सकते हैं।

नीचे मुख्य अंतरालके माप दिये जाते हैं।

पूरे सप्तकका अंतराल (२)	३०१	सेवट
गुरु स्वर ($\frac{9}{8}$)	५१ १	,
लघु स्वर ($\frac{10}{9}$)	४५ ८	,
अर्ध स्वर ($\frac{16}{15}$)	२८	,

इस मापमें स्वरोंकी बड़ाई छोटाई साफ मालूम होती है। यह भी प्रकट होता है कि अर्ध स्वर गुरु और लघु दोनों स्वरोंके आधेसे कम है। इस विधिसे अगर स ग अंतराल निकालना हो तो वह स रे गुरु स्वर और रे ग लघु स्वर, इन दोनोंको जोड़नेसे निकलेगा अर्थात् स-ग अंतराल ५१ १ + ४५ ८ = ९६ ९ सेवट होगा।

एलिसका सेण्टका माप सेवटके मापसे कुछ भिन्न है। यह खास तौरसे १२ सम स्वरोंवाले साधारण ग्रामके लिए उपयुक्त है (अनुच्छेद ६८)। जहां भिन्न अंतरालका लाग लेकर उसे १००० से गुणा करनेपर सवट निकलता है, वहां भिन्न अंतरालके लागमें २ के लॉगमें भाग देकर उसे १२०० से गुणा करनेपर एलिसका सेण्ट निकलता है। पूरे सप्तकका भिन्न अन्तराल २ है। इसका लाग ३०१० हुआ। इसमें २ का लॉग ३०१० से भाग देनेपर १ हुआ। इसमें १२०० का गुणा करनेसे १२०० सेण्ट निकला अर्थात् एलिसकी विधिसे पूरे सप्तकका अंतराल १२०० सेण्ट होता है। इसी तरह गुरु स्वरका भी अंतराल निकाला जा सकता है। लागकी सारिणीसे पता चलेगा $\frac{9}{8}$ का लाग ०५११ है। इसमें लाग २ अर्थात् ३०१० का भाग देकर १२०० से गुणा करनेपर २०३ ७ सेण्ट निकलता है। इस मापमें नीचे मुख्य अंतराल दिये जाते हैं।

सप्तक	१२००	सेण्ट
गुरु स्वर	२०३ ७	,
लघु स्वर	१८२ ६	,,
अर्ध स्वर	१११ ६	,,

इसका जोड़ घटाव भी सेवटकी तरह ही सीधा होता है।

सेवटके मापमें $3\frac{13}{14}$ या ३ ९८७का गुणा करनेसे सेण्टका माप निकल

आता है अर्थात् सेण्टका माप सेवटसे लगभग चौगुना होता है।

साधारण ग्रामके १२ बराबर स्वर होते हैं, जिसका व्यवहार हार्मोनियम, प्यानो आदिमें होता है। सेवटके हिसाबसे इस ग्रामके प्रत्येक स्वरका मान ३०१/१२ अर्थात् लगभग २५ सेवट होगा। एलिसके हिसाबसे प्रत्येक स्वरका मान पूरा १०० सेण्ट होगा।

५० नीचे हिन्दुस्तानी और विलायती शुद्ध ग्रामकी सारिणियाँ दी जाती हैं जिनमें अन्तरालके तीनों माप मुकाबलेके लिए अगल बगल दर्ज किये गये हैं।

हिन्दुस्तानी शुद्ध ग्राम— **सारिणी ३**

स्वर	अन्तराल (भिन्न)		अन्तराल (सेवट)		अन्तराल (सेण्ट)	
	स से	पारस्परिक	स से	पारस्परिक	स से	पारस्परिक
स	१	९/८	०	५१.१	०	२०४
र	९/८	१०/९	५१.१	४५.८	२०४	१८२
ग	५/४	१६/१५	९६.९	२८.१	३८६	११२
म	४/३	९/८	१२५.०	५१.१	४९८	२०४
प	३/२	९/८	१७६.१	५१.१	७०२	२०४
ध	२७/१६	१०/९	२२७.२	४५.८	९०६	१८२
न	१५/८	१६/१५	२७३.२	२८.०	१०८८	११२
सं	२		३०१.०		१२००	

२० विकृत स्वर और साधारण ग्राम

२१ ऊपर दिये हुए हिंदुस्तानी और विलायती ग्रामके स्वरोंको शुद्ध स्वर कहते हैं। इन स्वरोंकी तारताको थोड़ा घटा या बढ़ाकर इन्हें विकृत किया जा सकता है। जब तारता घटायी जाती है तो ऐसे विकृत स्वरको 'कोमल' कहते हैं और जब तारता बढ़ायी जाती है तो इन्हें तीव्र कहते हैं। भातखण्डेकी हिंदुस्तानी पद्धतिमें स्वरके नीचे एक पड़ी रेखा खींचकर कोमल का और स्वरके सिरपर एक खड़ी रेखा खींचकर तीव्रका प्रकट करते हैं। जैसे कोमल गान्धारका संकेत ग और तीव्र मध्यमका संकेत म है। पर इस पुस्तकमें कोमलको हलन्त और तीव्रको स्वर मस्तक ऊपर दाहिनी ओर झुकती हुई रेखा खींचकर चिह्नित करेंगे जैसे ग और म।

विलायती पद्धतिमें ऊपर दिये शुद्ध स्वरोंवाले ग्रामके अलावा एक और ग्रामका प्रचार है जिसमें कोमल गान्धार (ग) का प्रयोग होता है। इस ग्रामका अन्तराल नीचे दिया जाता है—

स	र	ग	म	प	ध	न	स
१	९/८	६/५	४/३	३/२	८/५	१५/८	२

अन्तराल: ९/८, १६/१५, १०/९, ९/८, १०/९, ९, १६/१५

इन दोनों ग्रामोंमें गुरु स्वरों और लघु स्वरोंकी गिनती बराबर ही है। सिर्फ उनके क्रममें अन्तर है। इन दोनोंका भेद असलमें शुद्ध गान्धार और कोमल गान्धारके कारण है जिन्हें विलायती पद्धतिमें गुरु गान्धार और लघु गान्धार कहते हैं। इसलिए पहले ग्रामको 'गुरु ग्राम' और दूसरेको लघु ग्राम कहा जाता है।

लघु ग्रामका एक और भेद है जिसमें कोमल गान्धारके अतिरिक्त

कोमल धैवत और कोमल निषादका भी व्यवहार होता है। इसका अंतराल इस प्रकार है—

स	र	ग्	म	प	ध्	न	स
१	९/८	६/५	४/३	३/२	८/५	९/५	२

अंतराल: ९/८ १६/१५ १०/९ ९/८ १६/१५ ९/८ १०/९

कभी कभी न ९/५ के बदले न १६/९ का भी प्रयोग होता है जो पहलेसे कुछ उतरा हुआ है। इसके पारस्परिक अंतराल ये हैं—

ध्	न	स
८/५	१६/९	२

अंतराल: १०/९ ९/८

इस दूसरे प्रकारके लघु ग्रामका उपयोग स्वरोंके उतारके समय ही अर्थात् अवरोहीमें ही होता है। आरोही (चढ़ाव) में केवल ग वाले लघु ग्रामका व्यवहार होता है। जैसे—स र ग् म प ध न स। स न ध् प म ग र स।

कभी-कभी अवरोहीमें र ९/८ के बदले कोमल ऋषभ र १६/१५ भी काममें लाया जाता है।

इस तरह विलायती पद्धतिमें गुरु ग्रामके सात स्वरोंके अलावा चार कोमल स्वरोंका प्रयोग होता है जो लघु ग्रामके लिए आवश्यक हैं। दोनों ग्रामोंके स्वर मिलकर ११ हुए।

पर हिंदुस्तानी पद्धतिमें एक ही ग्राम माना जाता है जिसमें १२ स्वर होते हैं—७ शुद्ध और ५ विकृत। विकृत स्वरोंमें ४ कोमल होते हैं

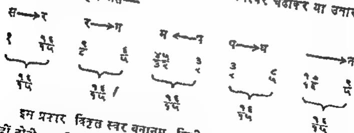
और १ तीव्र होता है। जैसे, रे ग, ध नि कोमल हैं और म' तीव्र है। मध्य युगके श्रीनिवास आदि शास्त्रकारोंने इन बारहों स्वरोंकी तारता तारकी लम्बाईसे निर्धारित की है।

उस हिसाबसे इस पद्धतिके रे ग म प, नि तो इन्हीं नामोंके विलायती स्वरोंसे मिलते हैं पर रे ग म, ध, ध नि नहीं मिलते। आधुनिक शास्त्रकारोंने मध्ययुगीय और विलायती दोनों पद्धतियोंमें मिलनेवाले पाँच स्वरोंके अलावा ये प्राचीन पद्धतिसे और रे ग म, ध नि विलायती पद्धतिसे ले लिये हैं। ग, नि और ध के अंतराल शुद्ध हिन्दुस्तानी ग्राममें बताये जा चुके हैं। यहाँ ५ विकृत स्वरोंके अंतराल अलग करके दिये जाते हैं—

स	रे	ग	म'	ध	नि
१	$\frac{16}{15}$	$\frac{6}{5}$	$\frac{45}{32}$	$\frac{8}{5}$	—

इनमें से म' विलायती पद्धतिमें कभी कभी काममें आता है। इस पद्धतिके रागोंमें इसका स्थान नहीं है। पर हिन्दुस्तानी पद्धतिमें म' का महत्त्वका स्थान दिया गया है।

५२ ये विकृत स्वर शुद्ध स्वरोंको एक अधस्वर चढ़ाकर या उतारकर बनाये गये हैं। जैसे—



इस प्रकार विकृत स्वर बनानेमें किसी नये अन्तरालकी आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि शुद्ध ग्रामके ग म के अंतरालमें जो अध स्वर है, सभी परिचित है। पर हरेक शुद्ध स्वरको भिन्न भिन्न अंतरालोंमें घटा-बढ़ाकर

एक स्वरके अनेक विकृत रूप बनाये जा सकते हैं। ऐसे तीन अंतरालोंका विवरण नीचे दिया जाता है—

१ पूरक अर्ध स्वर—

गुरु स्वर—अर्ध स्वर $= \frac{९}{८} \times \frac{१५}{१६} = \frac{१३५}{१२८} =$ ९२ २ सेंवट।

२ लघु-अर्ध स्वर—

लघु स्वर—अर्ध स्वर $= \frac{१०}{९} \times \frac{१५}{१६} = \frac{२५}{२४} =$ ७० ७ सेंवट।

३ कोमा—

गुरु स्वर—लघु स्वर $= \frac{९}{८} \times \frac{९}{१०} = \frac{८१}{८०} =$ २१ ५ सेंवट।

उदाहरण—

मं शुद्ध म से एक पूरक अर्ध स्वर ऊँचा है

क्योंकि, मं—म $= \frac{४५}{३२} \times \frac{३}{४} = \frac{१३५}{१२८}$।

शुद्ध ग कोमल ग् से एक लघु अर्ध स्वर ऊँचा है

क्योंकि ग—ग् $= \frac{५}{४} \times \frac{५}{६} = \frac{२५}{२४}$।

हिंदुस्तानी शुद्ध ध विलायती शुद्ध ध से एक कोमा ऊँचा है, क्योंकि

$$ध_ह - ध_व = \frac{२७}{१६} \times \frac{३}{५} = \frac{८१}{८०}।$$

इन अंतरालोंके प्रयोगसे नये विकृत स्वर भी बन सकते हैं। जैसे, नि को एक कोमा उतार देनेसे एक नया अतिकोमल नि बनता है। इसका अन्तराल $\frac{१६}{९} \times \frac{८०}{८१} = \frac{१२८०}{७२९}$ है, जिसकी चर्चा ऊपर आ चुकी है।

आगेकी सारिणीमें हिंदुस्तानी पद्धतिके १२ स्वरोंका अंतराल दिया जाता है, जिनमें पहले दी हुई सारिणीके सात शुद्ध-स्वर भी ले लिये गये हैं।

सारिणी ५

स्वर	अंतराल (भिन्न)		अंतराल (सेवट)		अंतराल (सण्ट)	
	सं स	पारस्परिक	स स	पारस्परिक	स स	पारस्परिक
स	१		०		०	
र	१६/१५	१६/१५	२८ ०	२८ ०	११२	११२
र	९/८	१३५/१२८	५१ १	२३ १	२०४	९२
ग	६/५	१६/१५	७९ १	२८ ०	३१६	११२
ग	५/४	२५/२४	९६ ९	१७ ८	३८६	७०
म	४/३	१६/१५	१२५ ०	२८ १	४९८	११२
म	४५/३२	१३५/१२८	१४८ १	२३ १	५९०	९२
प	३/२	१६/१५	१७६ १	२८ ०	७०२	११२
ध	८/५	१६/१५	२०४ १	२८ ०	८१४	११२
ध	२७/१६	१३५/१२८	२२७ २	२३ १	९०६	९२
न	९/५	१६/१५	२५५ २	२८ ०	१०१८	११२
न	१५/८	२५/२४	२७३ ०	१७ ८	१०८८	७०
स	२	१६/१५	३०१ ०	२८ ०	१२००	११२

दाक्षिणात्य या कर्णाटकी पद्धतिमें भी यही बारह अंतराल होते हैं पर उसमें स्वराके नाममें कुछ भेद होता है और शुद्ध स्वर भी दूसरे ही माने जाते हैं। जैसे—

सारिणी ६

हि प के स्वर	कर्णाटकी प के स्वर
स	स
र	र शुद्ध
र	ग शुद्ध या चतु श्रुतिकर
ग्	ग साधारण या षट्श्रुतिकर
ग	ग अंतर
म	म शुद्ध
म	म प्रति
प	प शुद्ध
ध	ध शुद्ध
ध	न शुद्ध या चतु श्रुतिक ध
नृ	न कैशिक या षट्श्रुतिक ध
न	न काकली

५३　इन बारह स्वरोंकी सारिणीसे यह न समझना चाहिए कि बारह के-बारह स्वर रागके लिए आवश्यक हैं। इनमें से सिर्फ सात स्वरोंको चुन कर ग्राम बनाया जाता है, जिसे 'ठाठ' कहते हैं। इस चुनावके लिए यह नियम है कि किसी भी ठाठमें 'स' और 'प' नहीं छोड़ा जा सकता और एक स्वरके, शुद्ध या विकृत आदि अनेक रूपोंमें से एक ही लिया जा सकता है। जैसे किसी भी ठाठमें ऱ र या ग ग, दोनों साथ साथ नहीं रह सकते। इस नियमके अनुसार, १२ स्वरोंमें-से सात स्वरोंके अनेक मेल हो सकते हैं, पर हिन्दुस्तानी पद्धतिमें दस ही ठाठ माने गये हैं। इस प्रकार जहाँ विलायती पद्धतिमें रागोंकी उत्पत्ति दो ही ग्रामों या ठाठोंसे होती है वहाँ हिन्दुस्तानी पद्धतिमें दस ग्रामों या ठाठोंसे राग निकले हैं। इसलिए हिन्दुस्तानी पद्धतिमें रागोंके जितने भेद हो सकते हैं, विलायती पद्धतिमें उतने नहीं हो सकते।

नीचे दसों ठाठके सप्तक, स्वरोंके पारस्परिक अन्तरालके साथ दिये जाते हैं। इनके स्वरोंका षड्जसे अन्तराल ऊपरकी सारिणीसे जाना जा सकता है।

१—बिलावल—

स		र		ग		म		प		ध		न		सं
	$\frac{9}{8}$		$\frac{10}{9}$		$\frac{16}{15}$		$\frac{9}{8}$		$\frac{9}{8}$		$\frac{10}{9}$		$\frac{16}{15}$	

यही शुद्ध ग्राम है जो ऊपर दिया जा चुका है।

२—खम्माज—

स		र		ग		म		प		ध		ऩ		सं
	$\frac{9}{8}$		$\frac{10}{9}$		$\frac{16}{15}$		$\frac{9}{8}$		$\frac{9}{8}$		$\frac{16}{15}$		$\frac{10}{9}$	

३—काफी—

स र ग म प ध न स

९/८ १६/१५ १०/९ ९/८ ९/८ १६/१५ १०/९

प्राचीन पद्धतिका यह शुद्ध ग्राम है।

४—आसावरी—

स र ग् म प ध् न स

९/८ १६/१५ १०/९ ९/८ १६/१५ ९/८ १०/९

यह विलायती पद्धतिके लघु ग्रामका अवरोही है।

५—भैरवी—

स र् ग् म प ध न् स

१६/१५ ९/८ १०/९ ९/८ १६/१५ ९/८ १०/९

६—भैरव—

स र् ग म प ध न स

१६/१५ ७५/६४ १६/१५ ९/८ १६/१५ ७५/६४ १६/१५

७—कल्याण—

स र ग म′ प ध न स

९/८ १०/९ ९/८ १६/१५ ९/८ १०/९ १६/१५

८—मारवा—

स र् ग म′ प ध न स

१६/१५ ७५/६४ ९/८ १६/१५ ९/८ १०/९ [illegible]

९—पूर्वी—

स		र		ग		म		प		ध		न		स
	$\frac{१६}{१५}$		$\frac{७५}{६४}$		$\frac{९}{८}$		$\frac{१६}{१५}$		$\frac{१६}{१५}$		$\frac{७५}{६४}$		$\frac{१६}{१५}$	

१०—टोडी—

स		र		ग		म		प		ध		न		स
	$\frac{१६}{१५}$		$\frac{९}{८}$		$\frac{७५}{६४}$		$\frac{१६}{१५}$		$\frac{१६}{१५}$		$\frac{७५}{६४}$		$\frac{१६}{१५}$	

इन दस ठाटोंके स्वर प्रबन्धपर ध्यान देनेसे पता चलता है कि बिलावल खमाज काफी आसावरी भैरवी और कल्याण इन ६ ठाटोंमें से प्रत्येकमें ३ गुरु स्वर २ लघु स्वर और २ अर्ध स्वरका प्रयोग हुआ है। सिर्फ इनके क्रममें अन्तर है। बाकी चार ठाटोंमें एक नया स्वर $\frac{७५}{६४}$ अन्तरालका दीख पड़ता है जो गुरु स्वरसे एक लघु अर्ध स्वर बड़ा है। क्योंकि $\frac{९}{८} \times \frac{२५}{२४} = \frac{७५}{६४}$। फिर इन चारोंमें भी भैरव पूर्वी और टोडीमें भिन्न भिन्न क्रमसे २ अति गुरु स्वर, १ गुरु स्वर और ४ अर्ध स्वर आये हैं। सिर्फ मारवामें १ अति गुरु स्वर २ गुरु स्वर, १ लघु स्वर और ३ अर्ध स्वरका प्रयोग हुआ है। इन प्रबन्धोंका विचार आगे किया जायेगा।

५४ अब एक ऐसे ग्रामकी चर्चा की जाती है जो पूरी तरह बेसुरा (अनुच्छेद ६८) होनेपर भी, सबसे अधिक प्रचलित है। इसे 'समसाधित ग्राम' कहते हैं।

मान लिया जाय कि कोई गवैया बिलावल ठाटका राग गा रहा है। उसे किसी बाजेकी संगति चाहिए। अगर सारंगी या बेला जैसा बिना सुन्दरीवाला साज हो तो साजिन्देको संगतिमें कोई कठिनाई न होगी। वह षड्जके तारको गवैयेके सुरमें मिला देगा और अँगुलियोंके अन्दाजसे बिलावल ठाटके स्वर निकालेगा। सितार इसराज जैसे सुन्दरीवाले बाजेमें भी ज्यादा झंझट नहीं है। क्योंकि इनमें भी तारको चढ़ा-उतारकर गवैयेके

सुरमें मिलाया जा सकता है। जरूरत पडने पर, सुंदरी खिसकाकर भी बिलावल ठाठके स्वर बांधे जा सकते है। पर हार्मोनियम या प्याना जैसे पटरीवाले बाजामें कठिनाई आ जाती है, जिनकी पटरियाके स्वरको घटाया बढाया नहीं जा सकता। मान लो कि एक हार्मोनियमके एक सप्तकमें सारिणी ५ के १२ स्वर बैठाये हुए है। अगर गवयेका सुर पहली पडजको पटरीमें मिल जाता है तो कोई कठिनाई नहीं है। फिर तो गवया चाहे किसी भी ठाठका गाना गावे, हार्मोनियम उसकी संगति करेगा। पञ्चममें सुर मिले तो भी आसानी है। पर यदि गवया मध्यमके स्वरसे गाना चाहे तो हार्मोनियमकी मध्यमकी पटरीको षडज मानकर आगे चलना होगा। ऐसा होनेसे, प की पटरीसे र और ध की पटरीसे ग का काम लेना होगा। सारिणी ५ के हिसाबसे ध प से $\frac{10}{9}$ के अन्तरालपर है, पर ग र से $\frac{9}{8}$ पर होना चाहिए। इसलिए इस नये ध के लिए एक नयी पटरी होनी चाहिए। नहीं तो ध की पटरीमें निकलनेवाला ग एक कोमा चढा हुआ बोलेगा। इसी तरह न को भी उतारना होगा। अगर ग को षडज मानकर चलें तो न तो ध् गधारका काम देगा और न 'घ' मध्यमका। इस प्रकार और और स्वराको षडज बांधकर चलनेसे भी यही कठिनाई पैदा हो जाती है। मतलब यह कि हार्मोनियमके स्वर अगर सारिणी ५ के हिसाबसे बंधे हों तो वह भिन्न भिन्न स्वरवाले गवयेकी संगति नहीं कर सकता। हार्मोनियमके स्वर ऐसे होने चाहिए कि इसमें किसी भी पटरीको स मानकर चलें, सप्तक सदा एक सा ही तैयार हो। यह तभी सम्भव है जब बारहो स्वराके पारस्परिक अंतराल बराबर हों। सम अंतराल होनेसे ही यह एक नया ग्राम तैयार हो गया, जिसके सभी स्वर विचलित हैं। इसीलिए इन्हें समसाधित ग्राम कहते है। इस ग्राममें बारहमें से हरेक स्वरके अंतरालको अर्ध स्वर कहते हैं जो शुद्ध ग्रामके अर्ध स्वरसे भिन्न है। यह बताया जा चुका है (अनुच्छेद ४९) कि इस ग्राममें अर्धस्वर १०० सेण्ट या २५ सेवटका होता है। इस ग्रामका विवरण नीचेकी सारिणीमें दिया जाता है।

सारिणी ७

स्वर	साधत ग्राम सण्ट	हि ग्राम सेण्ट	वि ग्राम सेण्ट	साधत ग्राम सवट	हि शुद्ध ग्राम सेवट	वि शुद्ध ग्राम सेवट
[illegible]	०	०		०	०	०
र॒	१००			२५ १		
र	२००	२०४	२०४	५० २	५१ १	५१ १
ग॒	३००			७५ २		
ग	४००	३८६	३८६	१०० ३	९६ ९	९६ ९
म	५००	४९८	४९८	१२५ ४	१२५ ०	१२५ ०
म॑	६००			१५० ५		
प	७००	७०२	७०२	१७५ ६	१७६ १	१७६ १
ध॒	८००			२०० ६		
ध	९००	९०६	८८४	२२५ ७	२२७ २	२२१ ९
न॒	१०००			२५० ८		
[illegible]	११००	१०८८	१०८८	२७५ ९	२७३ ०	२७३ ०
स	१२००	१२००	१२००	३०१ ०	३०१ ०	३०१ ०

इस सारिणीसे पता चलता है कि इस ग्राममें स और प को छोड़, बाकी सभी स्वर विकृत हैं। फिर भी यह ग्राम विलायत और हिन्दुस्तानमें एक-सा प्रचलित है। इस ग्रामका पूरा विचार आगे किया जायेगा। यहाँपर इतना ही बता देना काफी है कि संगतिके सुभीतेके लिए और वह भी पटरीवाले या बंधे हुए स्वरके साजोंके लिए ही इस ग्रामका प्रचार है। विलायत और हिन्दुस्तानमें संगीतमें सर्वसाधारणके लिए उपयोगी होनेपर भी, संगीतकी दृष्टिसे इस ग्रामको हीन कोटिका समझते हैं।

२२ स्वर-सवाद और स्वर-सघात

५५ • यदि तमूरके दो तार एक ही स्वरमें मिले हो तो दोनोको साथ-साथ छेडनेसे उनका मिला हुआ स्वर बहुत ही प्रिय मालूम होता है। ऐसा ही प्रिय मेल षडज (स) और तार षडज (स) का भी होता है। इससे कुछ ही कम स प और स म का सामञ्जस्य है। पर यदि एक तारको स में और दूसरेको र या न में बाँधकर छेडें तो इनकी सगति बडी ही कर्णकटु मालूम होगी। जिन दो स्वरोकी सगति प्रिय होती है उन्हे 'सवादी' और जिनकी सगति कटु होती है उन्हें 'विवादी' कहते है। इस सवाद या विवादका अनुभव सिर्फ दो स्वरोके साथ-साथ उच्चारणमें ही नहीं होता, बल्कि एक स्वरके बाद तुरत दूसरे स्वरके उच्चारणमें भी होता है। इसीलिए सवाद और विवादका अनुभव जितना व्यापक है उतना ही प्राचीन है। पाइथागोरसने इसका विचार किया है। भारतीय सगीतके आदि आचार्य भरतने स-प, स म सवादकी चर्चा की है। प्राय सभी देशो और सभी जातियोंके स्वाभाविक ग्राममें सच्चे प और सच्चे म का अस्तित्व मिलता है।

अब देखना यह है कि सर्वमान्य स-प और स-म सवादके अलावा और भी स्वर-सवाद हो सकते है या नही। इसकी जाँच एक सामान्य प्रयोगसे हो सकती है। तमूरे या और किसी साजके दो तारोको एक सुरमें मिला लो। फिर इन मिले हुए तारोमेसे एकको लगातार चढाते जाओ और दोनोको साथ-साथ छेडते जाओ। एक तारको जरा चढाते ही मालूम होगा कि दोनोकी सगति बेसुरी हो गया। जब दोनो स्वरोका अन्तराल एक अर्धस्वर होता है तो बेसुरापन सबसे अधिक हो जाता है। आगे बढते जानेपर बेसुरापन धीरे धीरे घटता जाता है और ग ($\frac{6}{5}$) पर

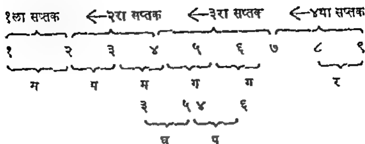
प्राय लुप्त हो जाता ह। ग ($\frac{5}{4}$) पर पहुँचकर सगति सुरीली हो जाती ह। आगे फिर बेसुरापन बढता ह और म ($\frac{4}{3}$) पर फिर संगति सुरीली हो जाती ह। इस प्रकार दोना ताराक स्वराकी सगति बसुरी होकर प ($\frac{3}{2}$) ध ($\frac{5}{3}$) पर सुरीली हो जाती ह। अ तमे न पर बसुरी होकर स पर पूरी तरह सुरीला हो जाती ह। इससे यह स्पष्ट ह कि स प, स म क अलावा और सवाद भी ग्राममें मौजूद ह। जिन स्वराका स स सवाद ह उनको हम इष्ट' स्वर कहेंग और जिनका विवाद ह उनको 'अनिष्ट स्वर।

विलायती शुद्ध ग्रामकी सारिणी देखनसे पता चलता ह कि जिन स्वराका स स अन्तराल सरल ह अर्थात छोटी सख्याआस प्रकट किया गया ह वे तो इष्ट स्वर ह और जिनका अन्तराल बडी सख्याआसे प्रकट किया गया ह वे अनिष्ट हैं। इष्ट और अनिष्ट स्वरोंके बीचकी सीमाश्श अंक ८ ह। अकके छोटेपनपर ही इष्टताकी मात्रा भी निभर ह। इसका उदाहरण नीचे दिया जाता ह —

अति इष्ट — प ($\frac{3}{2}$) म ($\frac{4}{3}$)
इष्ट — ध ($\frac{5}{3}$), ग ($\frac{5}{4}$)
अल्प इष्ट — ग॒ ($\frac{6}{5}$) ध ($\frac{8}{5}$)
अनिष्ट — र ($\frac{9}{8}$) लघु स्वर ($\frac{10}{9}$)
अति अनिष्ट — र ($\frac{16}{15}$)

ऊपरक विचारसे यह मानना पडता ह कि हिन्दुस्तानी शुद्ध ग्रामका ध ($\frac{27}{16}$) अति अनिष्ट स्वरामें है।

विचार करनेमे जान पडगा कि इन इष्ट और अनिष्ट स्वराका सीधा सम्बन्ध आवत्तकासे ह। किसी स्वरक आवत्तकामें ये स्वर स्वभावत मौजूद ह। यह बात नीच दिखायो गयी ह, जहाँ मौलिक स्वरको आवृत्ति १ मान ली गयी ह।



इस सांकेतिक विवरणको देखनेमे पता चलता ह कि जो स्वर निकटके आवत्तकोके मेलसे बने है वे तो इष्ट ह और जो दूरके या अधिक ऊँचे आवत्तकोंके मेलसे बने है वे अनिष्ट ह । इस तरह स्वरके बनानेवाले आवत्तक जितने ऊँचे होते जायँगे अनिष्टता उतनी ही बढती जायेगी । इसीलिए पन्द्रहवें और सोलहवें आवत्तकोसे बना हुआ अर्धस्वरका अन्तराल या र बहुत ही अधिक अनिष्ट होता है ।

ऊपरके सकेतसे यह बात भी प्रकट होती है कि ग्रामकि बनानेमें सातवें आवत्तकसे काम नहीं लिया गया ह । इटलीके वैज्ञानिक, ल्सेर्नीके मतम हँ स्वरमें, जो ७ में ह, इष्टताका काफी अश ह और इसका कभी कभी सफलताके साथ उपयोग किया जा सकता ह । ऍलिसने अपने बनाये हुए साज हार्मोनियममें हुँ स्वर अर्थात ७ न की भी पटरी दी ह । क्लेमेण्टने इस बातकी बडी प्रशसा की ह कि हिन्दुस्तानी गायक प्राय इस सप्तम आवत्तकके अन्तरालका प्रयोग करते ह । फिर भी यह मानना पडता ह कि सप्तम आवत्तक स्वराको किसी भी ग्राममें स्थान नही मिला ह । इसका कारण स्पष्ट ह । एक तो सप्तम आवत्तक इतना ऊँचा ह कि वह स्वतन्त्र रूपसे इष्ट स्वर नही पदा कर सकता जसा कि तीसरे या पाचवें आवत्तक करते ह । दूसरे, ७ ऐसा शुद्ध अक ह कि इसे पूरे पूरे अकामें नहीं बाँटा जा सकता । इससे इसका नाचेक अन्य आवत्तकास भी कोई सम्बन्ध नहीं ह । आठवें और नवें आवत्तक यद्यपि सातवेंसे भी ऊँचे ह पर

आठवाँ दूसरेका चौगुना और नवाँ तीसरेका तिगुना है। इसलिए $\frac{९}{८}$ स्वर का स के साथ तो विवाद है पर $\frac{३}{२}$ के साथ संवाद है। मतलब यह कि उन्हीं आवर्तकोंसे बने स्वर ग्राममें आ सकते हैं जो या तो स्वयं नीचे हों या जिन्हें पूरा पूरा बाटनेसे नीचेके आवर्तक निकल सकें। सप्तम आवर्तकमें ये दोनों ही बातें नहीं हैं। इसलिए सप्तम आवर्तक सिर्फ इष्ट और अनिष्ट स्वरोंके बीचकी सीमा माना जा सकता है।

जिस ग्रामके मुख्य स्वर एकसे छह तकके इष्ट आवर्तकोंसे बन जाते हैं उसे 'आवर्तक ग्राम' या 'प्राकृतिक ग्राम' कहते हैं। इस हिसाबसे बिलावलका शुद्ध या गुरु ग्राम ही पूरी तरह आवर्तक ग्राम है।

५६ जिन स्वरोंका सम्बन्ध छोटे अंकोंके अनुपातसे प्रकट किया जाता है वे संवादी होते हैं। ऐसा क्यों होता है, इस समस्याको हल करनेमें पाइथागोरससे लेकर कितने ही प्राचीन और नवीन शास्त्रज्ञोंके विचार लड़ते रहे। पर इसका सच्चा निर्णय हेल्महोल्ट्ज़ने किया जिसे आज तक सभी मानते चले आ रहे हैं।

हेल्महोल्ट्ज़के मतानुसार जब दो स्वरोंके बीच ढोल (अनुच्छेद ४३) पैदा होता है तो कानोंको उससे कष्ट पहुँचता है और ऐसे स्वरोंकी संगति अनिष्ट मालूम होती है वैसे ही, जैसे हिलती हुई रोशनी देखनेसे या जिस रोशनीकी तेज़ी बार-बार घटती बढ़ती हो उसे देखनेसे आँखोंको कष्ट पहुँचता है।

यह बताया जा चुका है कि दो स्वरोंकी आवृत्तियोंमें जितना अन्तर होता है प्रति सेकेण्ड उतने ही ढोल सुन पड़ते हैं (अनुच्छेद ४३)। आवृत्तियोंका अन्तर जब बहुत अधिक बढ़ जाता है तो ढोल तेज़ हो जाते हैं और तब इसका कानोंपर उतना अप्रिय प्रभाव नहीं पड़ता। वैसे ही, जब अन्तर बहुत ही थोड़ा होता है तो ढोल धीमा हो जाता है और यह भी उतना अप्रिय नहीं जँचता। इनके बीच ढोलोंकी एक खास संख्या है जिसपर यह सबसे अधिक कटु मालूम होता है। हेल्महोल्ट्ज़ने यह

निर्णय किया है कि जब साधारण आवृत्तिके दो स्वरोंकी संगतिमें ३३ ढोल प्रति सेकेण्ड होते हैं तो वह संगति सबसे अधिक अनिष्टहोती है। अब सबसे अधिक अनिष्ट संगतिके ढोलकी संख्या २३ मानी जाती है। यदि एक स्वरकी आवृत्ति २४० मानें तो २३ ढोलोंके लिए दूसरे स्वरकी आवृत्तिको २६३ या २१७ मानना पड़ेगा। इन दोनों स्वरोंका अन्तराल लगभग एक अर्ध स्वरके निकलता है। इसीसे अर्ध स्वरका अन्तराल सबसे अधिक विवादी होता है। भरतादि प्राचीन शास्त्रकारोंने भी दो श्रुतिके अन्तर-वाले स्वरोंको विवादी माना है जैसे रे ग, म प, ध नि आदि परस्पर-विवादी हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन दो श्रुतियोंका अन्तराल आधुनिक अर्ध स्वरका द्योतक है।

यदि दो स्वरोंके अन्तरालको अर्ध स्वरसे आगे बढ़ावें तो स्पष्ट है कि ढोलोंकी गिनती बढ़ती जायेगी और संगतिकी अनिष्टता कम होती जायेगी। यह सामान्य अनुभवकी बात है कि पूरे १ स्वरके अन्तरालपर अनिष्टता अर्ध स्वरकी अपेक्षा बहुत कुछ कम हो जाती है। ग पर ढोल सुनायी नहीं पड़ता और अनिष्टता प्रायः लुप्त हो जाती है। इससे यह कहा जा सकता है कि जब दो स्वरोंका अन्तराल ग ($\frac{5}{4}$) से छोटा होता है तो वे स्वर परस्पर विवादी होते हैं। यह विवाद अर्ध स्वरके अन्तरालपर सबसे अधिक होता है।

पर यह साधारण आवृत्तिके लिए ही ठीक है। दोनोंकी आवृत्ति बहुत अधिक होनेपर सम्भव है कि एक शुद्ध स्वरके अन्तरालपर ही ढोल सुनायी न दें। इसलिए ऐसा न समझना चाहिए कि हर आवृत्तिपर एक अर्ध स्वरका अन्तराल सबसे अधिक अनिष्ट होता है या ग के अन्तरालपर अनिष्टता लुप्त हो जाती है। यह बताया गया है कि २४० और २६३के बीच सबमें अधिक विवाद है जिनका अन्तराल लगभग अर्ध स्वर है। अगर दोनों स्वरोंका दूना करके तार सप्तकमें ले जायें तो दोनोंका अन्तराल तो वही अर्ध स्वर रहेगा, पर ढोलोंकी संख्या अब ४६ प्रति सेकेण्ड हो जायेगी। गिनती वह

जानेके कारण ढोल्स तभी आ जानेसे यह अधस्वरका अन्तराल अब उतना अनिष्ट नहीं लगेगा। पर इसका यह मतलब भी नहीं कि तार सप्तकमें भी, मध्य सप्तककी तरह ही २३ ढोलपर ही सबसे अधिक विवादी प्रकट होगा। सबसे अधिक विवादीके लिए ढोलकी संख्या २३ और ४१ के बीच पड़ेगी। सारांश यह कि जैसे जैसे दोनों स्वरोंकी आवृत्ति बढ़ती है वैसे सबसे अधिक विवादी पैदा करनेवाला अन्तराल तो अब स्वरसे छोटा होता है पर ढोलोंकी संख्या बड़ी होती जाती है। ठीक इससे उल्टा परिणाम स्वरोंकी आवृत्ति घटनेमें होता है।

कितनी आवृत्तिपर कितना ढोल सबसे अधिक अनिष्ट होता है इसकी जाँचमें अनेक वैज्ञानिकोंने बहुतेरे प्रयोग किये हैं। उनमें से मेयर और स्टम्फके प्रयोगका परिणाम नीचेकी सारिणीमें दिया जाता है जिससे ऊपरकी सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी।

सारिणी ८

स्वरोंकी आवृत्ति	सबसे अधिक अनिष्ट ढोलकी संख्या	जिस अन्तरालपर ढोल सुनायी नहीं पड़ते
१६	१६ प्रति सेकेण्ड	६ अधस्वर
२५६	२३	४
५७५	४३ ,,	३ ,,
१७०७	८४	२ ,,
२८००	१००	१.५

५७ हेल्महोल्ट्ज़के इस निर्णयको मान लेनेपर भी कि दो स्वरोंके विवादका कारण उन स्वरोंके संयोगसे उत्पन्न ढोल हैं स्वर-संवादकी समस्या हल नहीं होती। क्योंकि कानोंको सुनायी देनेवाले ढोल तो तभी पैदा होते हैं जब दोनों स्वरोंकी आवृत्तियाँ पास-पास होती हैं। इसलिए

सिर्फ डोलक आधारपर यह नही बताया जा सकता कि स और न मे विवाद क्यो ह, जो एक-दूसरेसे बहुत दूर हैं फिर लगातार आवृत्तियाका अतर बढाते जानपर भी सवादके बाद विवाद और विवादके बाद सवाद क्या होता है।

इस समस्याको हेल्महोल्जने एक और धारणासे हल किया हैं। उन्होने बतलाया हैं कि डोल जिस तरह स्वरके मौलिकाके सयोगसे पैदा होता ह उसी तरह उनके उपस्वराके सयोगसे भी पैदा होता ह। इतना ही नही! दो स्वरोके परिणामी (न्यिक और यौगिक) स्वर (अनुच्छेद ४४) भी डालके कारण होते ह। मतलब यह कि स्वरकी इष्टता या अनिष्टताम मौलिक, उपस्वर और परिणामी स्वर तीनाका ही सहयोग रहता है।

इस सिद्धातकी दृष्टिसे नीचे स्वरोके सवाद और विवादका विवरण दिया जाता ह जिसस यह मालम होगा कि साधारण अनुभवकी बाताको यह सिद्धात पूरा तरह पुष्ट करता ह।

नीचेके विवरणमें स की आवत्तिको १ मान लिया गया ह। आशिका का क्रमाक गिननासे जाना जा सकता ह। सभी सवादमें स्वरके छह आशिकाका ही विचार किया गया ह, क्याकि स्वरमें प्राय छठ आशिक तक ही प्रबल होते ह—ऊँचे आशिक दुबल होते चल जाते हैं।

१—स—स।

स—१	२	३	४	५	६
सं—	२		४		६

सं का पहला दूसरा, तीसरा आशिक स के दूसरे चौथे, छठे आदि आशिकास पूरी तरह मिल जाता ह इसलिए डोलकी कही सम्भावना नही ह। इन दोनाका अधिक १ होना ह जो स के मौलिकसे पूरी तरह मिल जाता हैं।

इसलिए स-सका सवाद आदश ह। स, स में स किसी एकको थोडा भी चढ़ान उतारनेस डोल पदा हो जायेंगे। इसलिए स सका मिलान बडा

ही सच्चा होना चाहिए, और यह ढोलको दूर करके आसानीसे किया जा सकता है।

२—स—प।

स—१	२	३	४	५	६
प— ३/२		३	९/२		६
		मेल	ढोल		मेल

इष्टता—प का दूसरा, चौथा आंशिक स के तीसरे, छठेमें मिलता है।

अनिष्टता—प ३ और स ४ में ढोल होता है।

नायक—१/२, स के एक सप्तक नीचे (स॒) है।

इसमें अनिष्टता बहुत ही अल्प है क्योंकि एक तो चौथा आंशिक दुर्बल होता है। दूसरे इससे पहलेका तीसरा प्रबल आंशिक प २ से मिलकर चौथे आंशिकका प्रभाव कम कर देता है। तीसरे, स ४ प ३ का अन्तराल १ गुरु स्वर है जो खास तौरसे ऊंचा आवलिपर उतना अनिष्ट नहीं होता। फिर नायक मौलिकको पुष्ट करता है।

इसीलिए स-स संवादके बाद स-प संवादका ही स्थान है।

३—स—म।

स—१	२	३	४	५	६
म— ४/३	८/३		४	१६/३	२०/३
	ढोल		मेल	ढोल	ढोल

इष्टता— स ४ और म ३ का मेल।

अनिष्टता—(१) स ३–म २ (अन्तराल ९/८)

(२) स ५–म ४ (अन्तराल १६/१५)

(३) स ६–म ५ (अन्तराल १०/९)

नायक — १/३।

इसमें मेल तो ४ ३ आंशिकोंमें है जो ऊँचे और दुर्बल हैं पर ढोल

३ २ में हैं जो नीचे और प्रबल हैं। इसका दीपिक भी स को पुष्ट नहीं करता, वह म का अतिमन्द्र है।

इसलिए स म संवाद स-प की अपेक्षा बहुत ही दुर्बल है। इसमें अनिष्टताका अंश बहुत अधिक होनेसे ही इस बातकी बहुत दिनों तक बहस रही कि म का इष्ट स्वर मानना चाहिए या अनिष्ट। अन्तमें यह इष्ट ही माना जाने लगा, खास तौरसे इसलिए कि यह प का उलटा है। जैसे,



अर्थात स से ३/२ ऊपर प और ३/२ नीचे म होता है।

४—म—ध।



इष्टता—स ५ और ध ३ का मेल।

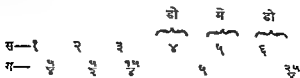
अनिष्टता—(१) स ३—ध २ (अन्तराल १०/९)

(२) स ६—ध ४ (अन्तराल १०/९)

दीपिक—३/३

इसमें भी मेल तो ऊँचे आंशिकोंमें है और ढोल नीचेमें। फिर इसका दीपिक दोमेंसे किसी भी स्वरका पुष्ट नहीं करता। वह एक नया स्वर मु है।

५—स—ग।



इष्टता—स ५ और ग ४ का मेल ।

अनिष्टता—(१) स ४—ग ३ (१६/१५) (२) म ६—ग ५ (३२/२५)

शापिक—१/६ ।

स ग संवाद प्राय स म संवाद जैसा ही है। इसमें अनिष्ट झालके आधिक्य स म के अनिष्ट झालके आधिक्यसे ऊँच है पर स म के झालका अन्तराल एक लघु स्वर और स-ग के झोल्का अन्तराल एक अर्ध स्वर है। इसलिए एक कारणसे अनिष्टता घटती है तो दूसरे कारणसे बढ़ती है। इसका शापिक म का पुष्ट करता है पर अतिमन्द (१/६) होनेसे दुर्बल है।

६—स—ग ।

स—१ २ ३ ४ ५ ६

ग— ५/४ १०/४ १५/४ २०/४ ६

झो झो म

इष्टता—स ६—ग ५ का मेल

अनिष्टता—(१) स ४—ग ३ (अन्तराल १६/१५)

(२) स ५—ग ४ (अन्तराल २५/२४)

शापिक—१/२ ।

७—स—ध ।

म—१ २ ३ ४ ५ ६

ध— ५/३ १५/३ २०/३ ३०/३

झा झा झा

इष्टता—स ८—ध ५ ।

अनिष्टता—(१) स २—ध २ (२) स ५—ध ३

(३) स ६—ध ४ ।

शापिक—१/३ ।

इन दोनों ही संवादोंमें अनिष्टताका अंश बड़ गया और इष्टता ऊँच

आंशिकापर चला गया है। यहाँतक कि म ध् संवाद ८वें आंशिकपर निर्भर है जो प्राय स्वरमें नहीं पाया जाता। इनके अधिक भी किसी स्वरको पुष्ट नहीं करते।

(८) स—नी।

स—१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

नी— ११ ११ १३ १३ ०

डो डो टा डा डा डा

इष्टता—स ९—नी ५

अनिष्टता—(१) स २—नी १ (२) स ४—नी २ (३) स ५, ६—नी ३ (४) स ७, ८—नी ५।

दाधिक—१६

इसकी इष्टता नवें आंशिकपर निर्भर है जो बहुत ऊँचा है और अनिष्टता तो मौलिकके डोल तकसे पैदा होती है। इसका आधिक्य भी किसी स्वरको पुष्ट नहीं करता। इसलिए स—नी अंतराल विवादी है। पर विवादियोंमें इसकी अनिष्टता बहुत ही अल्प है क्योंकि नीचेके प्रबल आंशिकोंमें कहीं भी अर्ध स्वर या इससे छोटे अन्तरालका डोल नहीं पैदा होता। म–ध में म ३ और ध् २ के बीच अर्ध स्वरका डोल होता है और ३, २ आंशिकोंमें प्रबलता भी पूरी होती है। इसलिए स—नी विवादी होनेपर भी स–ध से अधिक प्रिय होता है।

(९) म–रे।

म–१ २ ३ ४ ५ ६ ०

रे— १ ११ २० १३ २५ ९

डा डो डो डो डा डो डो मे

इष्टता—म ९–रे ८।

अनिष्टता—९ से नीचके सभी आंशिकाम।

अधिक—६

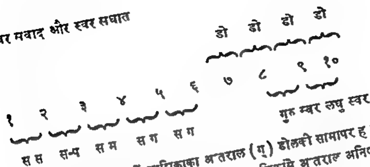
यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि यह स–र अन्तराल पूरी तरह विवादी है। इसका अधिक भी स से नीचे चौथे सप्तकमें पड़ता है जिससे इसमें स को पुष्ट करनेकी क्षमता नहीं रहती।

अब यह दिखानेकी जरूरत नहीं कि स–र या स–न, स–र से भी अधिक विवादी होगा क्योंकि इसमें सभी आंशिकाम अब स्वरका डोल पैदा होगा, जो स–र के डोलसे अधिक अनिष्ट है।

ऊपरके विवरणमें यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन स्वरोंका अन्तराल छोटी संख्याओंके भिन्नसे प्रकट किया जाता है वे क्यों संवादी होते हैं। छोटी संख्याओंके अनुपातका मतलब यह है कि उन स्वरोंके नीचके आंशिक आपसमें मिलकर एक हो जाते हैं और एक दूसरेको पुष्ट करते हैं। जैसे स : प = ३/२ का मतलब है कि स का तीसरा और प का दूसरा आंशिक एक ही आवृत्तिका है इसलिए ये दोनों आंशिक एक दूसरेको पुष्ट करते हैं।

सारांश यह कि दो आंशिकोंका मेल तो इष्ट होता है और दो आंशिकोंका डोल अनिष्ट होता है। किन्हीं दो स्वरोंकी संगतिमें मेलकी मात्रा अधिक है या डोलकी, या कौन कितना प्रबल है इसी तौलपर उस संगति का संवाद और विवाद निर्भर है।

५८ संवाद और विवादका विचार दो स्वरोंके आंशिकोंसे उत्पन्न डोलके आधारपर किया गया है। इससे यह न समझना चाहिए कि दो भिन्न भिन्न स्वरोंके आंशिकोंमें ही डोल हो सकता है। किसी एक स्वरके अपने ही आंशिकोंमें भी परस्पर वैसा ही डोल होता है जैसा दो स्वरोंके आंशिकोंमें। किसी स्वरके आंशिकोंकी श्रेणीमें आंशिक जितना ऊँचा चढ़ता जाता है, पासके आंशिकसे उसका अन्तराल उतना ही छोटा होता जाता है। जैसे,



यहाँ पाँचवें और छठें आंशिकोंका अंतराल (गु) ढोलकी सीमापर है। इससे आगेके आंशिकोंका, अपने अगल बगलके आंशिकोंसे अंतराल अनिष्ट ढोलकी सीमाके भीतर आता-जाता है। जैसे, आठवें और नवें आंशिकोंका अंतराल एक गुरु स्वर और नवें और दसवेंका अंतराल एक लघु स्वर हो जाता है। इस प्रकार आगे अन्तराल घटता जाता है और अनिष्ट ढोल बढ़ता जाता है। इसलिए जिस मिश्र नादमें छठें आंशिक तक ही प्रबल हों वह, ढोलके अभावके कारण, कोमल और इष्ट होता है, और जिसमें छठें से आगेके आंशिक भी प्रबल हों वह, ढोलके कारण, कटु और अनिष्ट होता है।

ऊँचे आंशिकोंमें अगर ७, ९, ११ आदि विषम आंशिक न हों, तो सम आंशिक ८, १०, १२ आदि सिर्फ नीचेके आंशिकोंको पुष्ट करेंगे। इससे नादमें अनिष्टता न रहेगी। पर यदि विषम आंशिक प्रबल हों तो बहुत ही अनिष्ट मालूम होगा।

जिन बाजोंके नादमें धातुकी तरह खनक मालूम होती है, या जिन मनुष्योंका स्वर कर्णकटु मालूम होता है उनके नाद या स्वरमें ऊँचे आंशिक, खास तौर से छठेंसे ऊपर विषम आंशिक, काफी प्रबल होते हैं। यदि के नियम (अनुच्छेद ३२) का उपयोग करके, अगर किसी तरह बाजेके नादसे विषम आंशिकोंको दूर कर सकें तो वह मधुर हो जायगा। वैसे ही अगर मनुष्य बराबर अभ्याससे गलेपर काबू करके विषम आंशिकोंको दबा सके तो उसका स्वर भी मधुर हो सकता है। प्यानो, बेला आदि तारके बाजोंमें

छडनकी जगह तारकी लम्बाईके लगभग सातवें हिस्सेपर रखते हैं। यहाँ सातवें आंशिककी ग्रंथि है, इसलिए यह आंशिक नादसे गायब हो जाता है। पर और विषम आंशिकोंके खयालसे, प्राय छेडनेकी ऐसी जगह चुनी जाती है जिसमें ८ ९ ११ आदि सभी दुर्बल हो जायें।

५९. जब दो स्वरोंका संवाद और विवाद उनके आंशिकोंके डोलपर निर्भर है तो स्वभावत यह प्रश्न उठता है कि सरल स्वरोंकी सरगमें, जिनमें मौलिकको छोड और कोई भी आंशिक नहीं होता इष्टता और अनिष्टताका भेद न होना चाहिए। अर्थात र के सिवा, जिनकी अनिष्टता मौलिकके ही डोलके कारण है, और सभी स्वर बराबर ही स्पष्ट होने चाहिए। पर तीव्र सरल स्वरोंके साथ प्रयोग करनेपर यह पाया जाता है कि स-स संवाद स्पष्ट होता है और स-प संवादकी स्पष्टता इससे कुछ ही कम होती है। वैसे ही स न विवाद भी स्पष्ट होता है। बाकी स्वरोंका संवाद स्पष्ट नहीं होता।

तीव्र सरल स्वरोंके संवाद विवादका कारण परिणामी स्वर होता है। परिणामोंमें भी दायिक होता है क्योंकि यौगिककी तीव्रता बहुत ही कम होती है। दायिक भी कई श्रेणियोंके होते हैं। मौलिक मौलिकसे उत्पन्न दायिक पहली श्रेणीका है। फिर इस दायिक और दोनों अलग-अलग मौलिकोंसे उत्पन्न दो दायिक दूसरी श्रेणीके हैं। इसी तरह दूसरी श्रेणीके दायिकों और पहली श्रेणीके दायिक और दोनों मौलिकोंसे उत्पन्न दायिक तीसरी श्रेणीके हैं। इस रीतिसे इनकी शृंखला आगे भी बढ़ायी जा सकती है। पर एक तो पहली श्रेणीका ही दायिक दुर्बल होता है जो काफी तीव्र मौलिकोंके साथ ही सुना जा सकता है, उसपर ऊँची श्रेणियोंके दायिकोंकी तीव्रता तो और भी कम होती चली जाती है।

ऊपरकी सारी बातें उदाहरणसे स्पष्ट हो जायँगी।

नीचे स की आवृत्ति २४० मान कर सरल स्वरोंका संवाद विवाद दिखाया जाता है—

(१) स–सं।

	स	सं
मौलिक—	२४०	४८०
पहली श्रेणीका शाबिक—	२४०	

यह नाषिक स को पुष्ट करता है। सं को ५ आवृत्ति चढ़ा देनेपर—

	स	सं
मौलिक—	२४०	४८५
पहली श्रेणीका नाषिक—	२४५	

अब नाषिक और मौलिकके बीच ५ डोल प्रति सेकेण्ड होंगे। य परिणाम दोनोंमें-से किसी एक स्वरको उतारनेसे भी होगा।

अथात स, सं में से किसी भी स्वरको विचलित करनेसे अनिष्ट डो होने लगता है, इसलिए स–स का सच्चा संवाद है।

(२) स–प।

	स	प
मौलिक—	२४०	३६०
पहली श्रेणीका नाषिक	१२०	

यह मन्द्र स है इसलिए स को पुष्ट करता है।

प का ५ आवृत्ति चढ़ा देनेपर —

	स	प
मौलिक—	२४०	३६५
प्रथम नाषिक—	१२५	
द्वितीय नाषिक—	११५	२४०

अब प्रथम नादिक और द्वितीय नादिकमें १० डोल प्रति सकण्ड होता है। अर्थात स या प को थोडा विचलित करनेसे अनिष्ट डाल होने लगता है। इसलिए स–प सवाद भी सच्चा है।

(३) म–३२० का ५ आवर्ति चग्न देनपर—

मौलिक—	स म २४० ३२५
प्रथम नादिक—	८५
द्वितीय ,, —	१५५ २४०
ततीय ,, —	८५ ७० १७०

द्वितीय और ततीय श्रेणियोंके नादिकामें १५ डोल होगा। ततीय नादिकके बहुत ही दुबल होनेसे म को विचलित करनेपर भी अनिष्टताका अनुभव न होगा। इसलिए सरल स्वरोका स–म सवाद नहींके बराबर है।

यही बात दूसरे स्वरोंकी सगतिमें भी निकलगी जो न तो सवादी और न विवादी जान पडेगी। पर स–न का विचार करनेपर यह साफ विवादी सिद्ध होगा। जसे—

(४) स–न

	स न
मौलिक—	२४० ४५०
प्रथम नादिक—	२१०

यहाँ मौलिक और प्रथम नादिकके बीच ३० डोल सुन पडेगा। यह स २४० और र २७० के अनिष्ट डोलके बराबर ही है, इसलिए स–न सगति स–र सगतिके जैसा ही विवादी है।

इन विवेचनाओंमे यह सिद्ध होता है कि बिना आविकाओंके सरल नादोंमें सिर्फ स–स और स–प सवाद होता है और स–स और प के

नीचे ऊपर, दोनों ओर, थोड़ी दूर तक अनिष्टता प्रकट होती है। यह बात मिश्र नादोंसे भिन्न है जहां स–ग, स–म आदि कितने ही संवाद होते हैं।

६० ऊपरके विचारोंसे यह परिणाम भी निकलता है कि संवाद विवाद बहुत कुछ नादकी गुण जातिपर निर्भर है। मिश्र नाद और सरल नादका इस सम्बन्धमें भेद तो ऊपरके विचारसे स्पष्ट ही है। यदि मिश्र नादोंको ही लें तो भी गुण भेदसे संवाद विवादमें भेद पड़ जाता है। जैसे, मान लो कि दो स्वरोंमें-से एकमें सम आंशिक न हों—१,३,५ आदि विषम आंशिक ही हों। अब यदि यह विषम आंशिकोंवाला स्वर मध्यम हो तो स–म संवादकी इष्टता बहुत बढ़ जायेगी, क्योंकि स के तीसरे आंशिकके साथ बहुत ही अनिष्ट डोल पैदा करनेवाला म का दूसरा आंशिक इस स्वरमें नहीं है (अनुच्छेद ५७)। पर यदि इस स्वरको प बना दें तो स–प संवाद दुर्बल हो जायेगा, क्योंकि स के तीसरे आंशिकके साथ मिलनेवाला प का दूसरा आंशिक स्वरमें गायब है। इसलिए ऐसे स्वरोंके साथ स–म संवाद स–प संवादसे अधिक इष्ट होगा। अगर इन्हीं दो स्वरोंमें से विषम आंशिक वालेको म और सम आंशिकवालेको म बना दें तो स–म संवाद फिर दुर्बल हो जायेगा क्योंकि म डोलवाला आंशिक २ तो मौजूद होगा और मेल वाला ४ गायब होगा। इसी तरह सम आंशिकोंवाले स्वरको प बाधनेसे स—प संवाद बहुत ही प्रबल हो जायेगा। इस बातको माननेमें संगीतज्ञ प्रायः हिचकते हैं क्योंकि यह सामान्य अनुभवकी बात नहीं है। पर वैज्ञानिकोंने इसे अनेक प्रयोगोंसे सिद्ध कर दिया है।

६१ इस संवाद विवादके प्रसंगमें ही संगीतकी दो भिन्न भिन्न पद्धतियोंपर कुछ प्रकाश डालना उचित जान पड़ता है। संगीतके लिए दो बातोंकी आवश्यकता सभी पद्धतियोंमें मानी जाती है—एक तो, एकके बाद एक स्वरोंका ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जो रसों और भावोंको उद्दीप्त करके चित्तको प्रसन्न करे। दूसरे, एक अच्छे गुणवाले स्वरके साथ भी भिन्न-

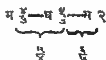
भिन्न नादका मेल होना चाहिए जिसमें स्वरका प्रभाव बढ़े। जैसे, अगर गवैया अकेला गाये तो उसका गाना हल्का जमता है और अगर गानेके साथ साथ हार्मोनियम, तमूरा सारंगी आदि उसके सुरमें मिला हुआ बजता तो उस गानेका असर बहुत बढ़ जाता है। एकके बाद एक स्वरोंके उच्चारणको बोलचालकी भाषामें 'धुन' कहते हैं जिसका उन्नत और नियमित रूप 'राग' है। व्यापक अर्थमें स्वरोंके क्रमबद्ध उतार चढ़ावके लिए पारिभाषिक *सरगम* का प्रयोग किया जायगा जो अंग्रेजी 'मलोडी'का पर्याय है। कई स्वरोंके एक ही साथ उच्चारणको 'संगति' कहते हैं। इसके लिए दूसरा शब्द 'सहति' है जो अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। पर 'संगति', प्रायः इसी अर्थमें, अधिक प्रचलित है। इसीलिए आगे सामान्य अर्थमें संगति और पारिभाषिक अर्थमें 'सहति'का प्रयोग किया जायगा जो अंग्रेजी 'हार्मोनी'का पर्याय है।

भारतीय संगीत-कलाका विकास मुख्यतः रागकी दिशामें हुआ है। समयकी गतिके साथ-साथ रागको अनेक नये नये नियमोंमें बाँधा गया। अनेक नये रागों और धुनोंका निर्माण हुआ। रागकी अभिव्यक्तिके लिए क्रमशः ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी आदि अनेक शैलियोंका विकास हुआ। इन्हें चमकी तरह खिलानेके लिए विस्तृत ही गमकोंका उपयोग किया गया। पर 'सहति'का भार भारतीय कला अधिक न वह सका। गवैयाके साथ कुछ बाजे बजते हैं पर इस संगति भी नहीं, 'अनुगति' कहना चाहिए। क्योंकि इस संगतिमें चाहे तो साज गवैयेके पीछे-पीछे चलता है या गवैया साजके पीछे-पीछे चलता है। जहाँ दो चार व्यक्ति साथ साथ गाते हैं वहाँ, वस्तुतः ही पुरानी रीतिसे, सुरमें सुर मिला कर स–स की या म–म की संगति म—जमी एक युवक और एक महीन स्वरवाले लड़केके स्वरोंकी संगति होती है। यदि सच्चे अर्थमें 'सहति'का कुछ आभास मिलता है तो तमूरेके नादमें जहाँ स स प या स स म स्वर प्राय साथ साथ बजते हैं।

पाश्चात्य संगीत-कलाका विकास 'सहति'की दिशामें हुआ है। इस

सहतिम एकसे अधिक स्वरोका मेल होता है। य स्वर भिन्न भिन्न होते हैं। जैसे स, म और प की सहति। एकसे अधिक स्वरोके गुच्छेको 'सघात' कहते है। तमूरम चार तारोके रहते हुए भी केवल दो स्वरोका सघात है। पाश्चात्य पद्धतिमे तीन स्वरोका सघात होता है जिसे त्रिसघात या केवल सघात कहते है। एक सघातके सारे स्वर एक साथ ही अलग अलग बाजो से निकलते है और एकमे मिलकर विलक्षण नादकी सृष्टि करते है। यह मिश्रनाद इष्ट है, या अनिष्ट, मधुर है या कटु कोमल है या कठोर—ये सारी बातें सघातके स्वरोपर निर्भर है। इस प्रकार जैसे भिन्न भिन्न स्वरोके क्रमसे और भिन्न भिन्न चमकोमे अनेक भावो और रसोके राग तैयार होते हैं वैसे ही भिन्न भिन्न स्वरोके सघातोमे भी भिन्न भिन्न भावो और रसोको उद्दीप्त करनेकी क्षमता होती है। 'सक्रम' और सहति दोनो, सगीतके उद्देश्यकी पूर्ति अपने अपने ढगसे करते हैं।

६२ मुख्य सघात स ग प का होता है जिसमें स भी मिला देते है इसे गुरु सघात कहते है। दूसरा सघात स ग प का होता है जिसे लघु सघात कहते है। सघातका आधार अन्तराल है निरपेक्ष स्वर नही। जैसे गुरु सघातके तीन स्वर चाहे किसी भी नामके हो, चाहे किसी भी तारताके हो, इनमें पारस्परिक अतराल स—ग—प के जैसा होना चाहिए, अ (स ∽ ग) $\frac{5}{4}$ और (ग ∽ प) $\frac{6}{5}$ है। अगर म को सघातका पहला स्वर मान जाये तो गुरु सघातके लिए दूसरा स्वर ध ($\frac{5}{4}$) और तीसरा स (२ होगा। क्योकि—



गुरु और लघु दोनो सघातोसे, उलट पलटकर दो-दो सघात और बन है जिनके अतराल भिन्न होते है। उलटनेका नियम सीधा है—नीचे स्वरको एक सप्तक ऊपर चढ़ा दिया जाता है। जैसे—

(१) गुरु सघात—

(क) स ग प

$\frac{5}{4}$ $\frac{6}{5}$

(ख) ग प स

$\frac{6}{5}$ $\frac{4}{3}$

(ग) प स ग

$\frac{4}{3}$ $\frac{5}{4}$

(ख) और (ग) में पहले स्वरको स माननेपर (ख) स ग ध और (ग) स म ध हो जायगा।

(२) लघु सघात—

(क) स ग॒ प

$\frac{6}{5}$ $\frac{5}{4}$

(ख) ग॒ प स

$\frac{5}{4}$ $\frac{4}{3}$

(ग) प स ग॒

$\frac{4}{3}$ $\frac{6}{5}$

(ख), (ग) मे पहले स्वरको 'स' माननेसे—(ख) स ग ध (ग) स म ध होता है।

ऊपर दिये हुए नियमसे अब और सघात नही बन सकते। क्योकि गुरु सघात (१) और लघु सघात (२) के (ग) में अगर प को एक सप्तक ऊपर उठावें तो फिर (क) सघात बन जाता है।

इस तरह कुल ६ सघात हुए, जसे—

(१) गुरु-सघात—[क] स ग प स
[ख] स ग ध स
[ग] स म ध म

(२) लघु सघात—[क] स ग प स
[ख] स ग ध स
[ग] स म ध स।

इन दोनो प्रकारके सघातोके उपयोगका नियम यह है कि गुरु ग्रामके रागोमे गुरु-सघातोका व्यवहार होता है और लघु ग्रामके रागोमें लघु सघातोका।

ऊपरके सभी सघात इष्ट सघात माने जाते है, क्योकि इनके सभी स्वरोका स से सवाद है और वे आपसमें भी सवादी है। इनमे कोई अन्तराल ऐसा नही है जिसमें अनिष्ट दोष हो। अगर स म प स सघात बनाया जाये तो सभी स्वरोंका स से तो सवाद होगा पर म और प परस्पर विवादी हो जायगे। इसलिए ऐसा सघात इष्ट नहीं माना जाता।

६३ गुरु-सघात और लघु सघात दोनो ही इष्ट माने जाते है।

(१) क और (२) क को देखनेसे पता चलता है कि दोनो अन्तराल भी एक ही है—सिर्फ क्रममें अन्तर है। फिर भी दोनो के रूप गुणमें बहुत अन्तर पड जाता है। गुरु-सघात खुला हुआ, प्रसन्न और दृढ माना जाता है। लघु सघातका प्रभाव करुण, खिन्न और विचलित होता है। सिर्फ अन्तरालके क्रममें अन्तर होनेसे दोनोके गुणमे इतना अन्तर क्यों हो, यह पहले लोगोकी समझमें नही आता था। हेल्महाज़ने इस गुत्थीको परिणामी स्वरोकी धारणासे सुलझाया। इन दोनो सघातोके अन्तराल एक होते हुए भी दोनोके अधिक स्वरोमें बहुत अन्तर है। यह नीचेके विवरणसे स्पष्ट होगा।

१—गुरु-संघात—

(क) स ग प स

१ ५/४ ३/२ २

नायिक—१/४, १/२ १, १/४, ३/४, १/२

या १, १/४, १/२, ३/४

इनमें १ १/२, १/४ क्रमशः स, म॒ स॰ हैं जो स को पुष्ट करते हैं और ३/४ प॒ है जो प को पुष्ट करता है, कोई नया स्वर पैदा नहीं होता।

(ख) स ग ध स

१ ६/५ ८/५ २

नायिक—१/५, ३/५ १ २/५ ४/५ २/५

या १/५, २/५, ४/५ १, ३/५

इनमें १ स को पुष्ट करता है २/५ ग॒ है जो ग॒ को पुष्ट करता है, ४/५ ३/५, १/५ क्रमशः ध ध॰॰ ध॰॰॰ हैं जो ध को पुष्ट करते हैं इनमें कोई नया स्वर नहीं है।

(ग) स म ध स

१ ४/३ ५/३ २

नायिक—१/३, २/३, १, १/३, २/३, १/३

या १/३, २/३ १

इनमें १ स को पुष्ट करता है २/३, १/३ क्रमशः म॒ म॰॰ हैं जो म को पुष्ट करते हैं। इनमें भी कोई नया स्वर नहीं है। अर्थात गुरु संघातके तीनों ही भेदोंमें नायिकाके कारण कोई भी नया स्वर नहीं पैदा होता।

२—लघु संघात—

(क) स ग॒ प स

१ ६/५ ३/२ २

नायिक—१/५ १/२ १, ३/१०, ४/५ १/२

या १/५ ४/५ ३/१०, १, १/२

इनमे १ स और ३/१ — ग॒ है जो स और ग को पुष्ट करते है। पर ४/५, १/५ क्रमश ध ध॒॰ है जो नये स्वर है।

(ख)	स	ग	ध	स		
	१	५/४	५/३	२		
गुणक—	१/४,	२/३,	१,	५/१२,	३/४,	१/३
या	१/४,	१,	५/१२,	१/३,	२/३,	३/४

इनमे एक और १/४ क्रमश स, स॒ है और ५/१२ ध॒ है, जो स और ध को पुष्ट करते है। २/३, १/३ क्रमश म म है और ३/४ प॒ है। ये दोनो ही नये स्वर है।

(ग)	स	म	ध	स		
	१	४/३	८/५	२		
गुणक—	१/३,	३/५	१	४/१५,	२/३,	२/५
या	१,	२/३,	१/३,	२/५,	३/५	४/१५

इसमे १ स है २/३, १/३ क्रमश म॒, म॒॰ है और २/५ ध॒॰ है। ये स म ध को पुष्ट करते है। पर ३/५ ग॒, और ४/१५ रे॒॰ है जो नये स्वर है।

अर्थात लघु संघातके तीनो ही भेदोमे गुणकके कारण नये स्वर पैदा हो जाते है।

इन नये स्वरोके कारण ही लघु संघात गुरु संघातसे भिन्न हो जाता है और दोनो संघातोसे भिन्न भिन्न भावोका उदय होता है।

पर बराबर इष्ट संघातोका ही उपयोग होनेसे संगीत अरुचिकर हो जाता है। फिर भावो और रसोके भेद अनेक है जो सिर्फ इष्ट संघातोसे ही नही व्यक्त किये जा सकते। इसलिए अनेक अनिष्ट संघातोका भी व्यवहार होता है जो संघातोमे अनिष्ट स्वरोके समावेशसे बनाये जाते है। पर इनका व्यवहार क्षणिक होता है, जो तुरंत इष्ट संघातमे बदल दिये जाते है। यह ठीक वैसा ही है जैसा भारतीय संगीत कलाके रागोमे विवादी

स्वरोंका या रागके आलापमें तिरोभाव और आविर्भावका प्रयोग[1]। पर 'संहति' में अनिष्ट संघात और रागमें विवादी या तिरोभाव-आविर्भावका प्रयोग कहाँ कब और कितना दूर तक होना चाहिए, यह सिद्ध कलाकार ही जानते हैं। क्योंकि इनका समुचित प्रयोग न होनेसे संहति नष्ट हो जाती है, राग भ्रष्ट हो जाता है और रसके बदले रसाभास पैदा होता है।

संहति के मार्गसे पाश्चात्य देशोंमें सामूहिक संगीतका विकास हुआ। राग के मार्गसे हिन्दुस्तानमें वैयक्तिक संगीत आगे बढ़ा। पर पाश्चात्य संगीतमें जिस प्रगति और विकासका उत्साह दीख पड़ता है वह भारतीय संगीतमें नहीं। इसका मुख्य कारण यह है कि पाश्चात्य पद्धतिकी संहति' का विज्ञानका आधार है पर हिन्दुस्तानी पद्धति अभी भी सिर्फ कलापर निर्भर है। यदि भारतीय संगीतज्ञ अपनी पद्धतिके वैज्ञानिक आधार और संभावनाओंको समझें और पाश्चात्य पद्धतिके सिद्धान्तोंको भी निष्पक्ष भावसे जाननेकी चेष्टा करें तो भारतीय संगीतमें नयी भावना नयी प्रगति आ सकती है।

---

१ यमन-कल्याणमें 'म', गौड़ सारंग, छायानट आदिमें 'नि', भैरवीमें 'म' आदिका प्रयोग विवादी रूपमें कभी-कभी होता है। ऐसे ही भैरवके आलापमें इससे मिलते जुलते राग रामकलीका मुँह दिखाकर भैरवका 'तिरोभाव' करते हैं पर तुरन्त ही भैरवका मुँह दिखाकर इसका आविर्भाव करते हैं।

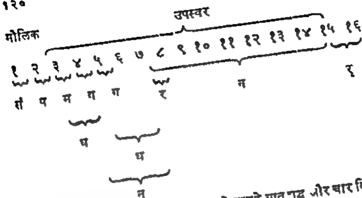
१२ ग्राम-रचना-विधि

६४ पिछले परिच्छेदोंमें ग्रामका विवरण दिया गया है और उनके स्वराकी इयत्ता अनिष्टताका विचार भी किया गया है। पर जिन ग्रामोंका प्रसंग पीछे आया है उनके अतिरिक्त अनेक ऐसे ग्राम होते हैं जिनका स्वर प्रबन्ध एक दूसरेसे भिन्न होता है। देश देशमें आज भी ऐसे अनेक ग्रामोंका प्रचार है जिनके रूप एक-दूसरेसे भिन्न हैं। यह रूप भेद उनकी रचना विधिपर निर्भर है।

मुख्यत ग्राम रचनाकी प्रक्रियाएँ तीन प्रकारकी हैं, जैसे—(१) प्राकृतिक (२) चक्रिक और (३) सक्रमिक। शायद ऐतिहासिक दृष्टिसे यह क्रम उल्टा होना चाहिए। पर वर्णनकी सुविधाके लिए इसी क्रमका अनुसरण किया जायेगा।

६५ **(१) प्राकृतिक प्रक्रिया**—इस प्रक्रियाका सिद्धान्त स्वर संवादके प्रसंग में बताया जा चुका है। यहाँ उसे और भी स्पष्ट किया जाता है। इस प्रक्रियाका आधार यह वैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक ध्वनिमें मौलिकके साथ अनेक उपस्वर होते हैं जो संगीतोपयोगी ध्वनियोंमें मौलिकके आवर्तक हैं (अनुच्छेद २९)। संगीतका ग्राम किसी एक ध्वनिके इन आवर्तक उपस्वरोंसे ही निकलता है।

सामान्यत किसी ध्वनिमें पन्द्रहवें सोलहवें आंशिक तक बली होते हैं। आगेके आंशिक उत्तरोत्तर दुर्बल ही होते चले जाते हैं। इसलिए यदि सोलहवें आंशिक तक ही विचार किया जाये तो किसी भी नादके मौलिक और उपस्वरोंका क्रमबद्ध रूप उद्भूत स्वरोंके साथ इस प्रकार होगा—



इन्हीं उपस्वरोंके पारस्परिक अनुपातसे ग्रामके सात शुद्ध और चार विकृत स्वर निकल आते हैं। ऊपर बताये हुए स्वरोंको क्रमबद्ध करनेपर ग्रामका संस्थान ऐसा निकलता है—

सा	रे	रे	ग	ग	म	प	ध	ध	नि	नि	[illegible]
१	$\frac{१६}{१५}$	$\frac{९}{८}$	$\frac{६}{५}$	$\frac{५}{४}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{८}{५}$	$\frac{५}{३}$	$\frac{९}{५}$	$\frac{१५}{८}$	२

इसमें तीन तरहके अन्तराल पाये जाते हैं—एक गुरु स्वर $\frac{९}{८}$ दूसरा लघु स्वर $\frac{१०}{९}$ और तीसरा अर्ध स्वर $\frac{१६}{१५}$।

यह प्राकृतिक ग्राम है जिसका विचार पहले किया जा चुका है (अनुच्छेद ५५)। इसी ग्रामके स्वर मनुष्य और पशु-पक्षियोंके कण्ठसे अनायास निकलते हैं क्योंकि इसका आधार प्राकृतिक अभिव्यक्ति है। इसीलिए यूनानी इस ग्रामको शुद्ध प्रामाणिक और आदिम मानते हैं। इस ग्रामके प्रत्येक स्वरका षड्जसे आवर्तक सम्बन्ध होता है।

इस ग्राममें रे और नि का निर्णय अनुमानसे ही किया गया है क्योंकि यदि इनके उच्च आवर्तक किसी नादमें मौजूद हों तो वह कटु और अनिष्ट हो जायगा। इसलिए ग्रामको पूरी तरह आकर्षक रखनेके लिए यदि इन स्वरोंको निकाल दें तो ग्राममें थोड़से स्वर रह जाते हैं जिनसे संगीत पूरी

तरह सम्पन्न नहीं हो सकता। यह इस प्रक्रियाकी एक त्रुटि है। इसके अतिरिक्त बहुतेरे आवर्तकोंका ग्राम रचनामें उपयोग ही नहीं होता। सप्तम आंशिकका उपयोग सम्भवतः भारतीय संगीतमें कभी कभी होता है, पर बहुत ही अल्प।

६६ (२) **चक्रिक प्रक्रिया**—इस प्रक्रियाका आधार पञ्चम संवाद या स प संवाद है। स से जैसे प निकलता है उसी ही प को आधार मानकर इसका पञ्चम लें तो दूसरे सप्तकका र निकलेगा और उसी तरह र से ध निकलेगा। इस प्रकार यह शृंखला आगे बढ़ती जायेगी, जैसे—

स → प → र̇ → ध → ग → ग̊ →

इस शृंखलामें प्रत्येक स्वरका मान निकालनेकी विधि नीचे दी जाती है—

प्रत्येक कड़ी चढ़ानेके लिए पूर्व स्वरके मानको $\frac{३}{२}$ से गुणा किया जाता है। जब स्वर ऊपरले सप्तकमें चला जाये तो उसे एक सप्तक उतारनेके लिए दो से, ऐसे ही दो सप्तक उतारनेके लिए चारसे भाग दिया जाता है। जैसे—

स १ → प($\frac{३}{२}$) → र ($\frac{९}{४}$) → ध ($\frac{२७}{८}$) → ग ($\frac{८१}{१६}$) →

मध्य सप्तकका र = $\frac{र̇}{२}$ = $\frac{९}{४} \times \frac{१}{२} = \frac{९}{८}$

और ग = $\frac{ग̊}{४}$ = $\frac{८१}{१६} \times \frac{१}{४} = \frac{८१}{६४}$।

सेवटकी विधिमें एक पञ्चम चढ़ानेके लिए पूर्व स्वरके सवट मानमें प का १७६ में जोड़ना और एक सप्तक उतारनेके लिए ३०१ से घटाना होगा। यदि दो सप्तक उतारना हो तो ६०२ घटाना होगा। जैसे—

स० → प (१७६म) → र (३५२) → ध (५२८) → ग̊ (७०४) →

मध्य सप्तकका र = र̇ — ३०१ = ५१ से

और ग = ग̊ — ६०२ = १०२ स।

इस प्रक्रियामें स से जैसे पञ्चमके आरोही चक्रके क्रमसे स्वर निकलते हैं वैसे ही पञ्चमके अवरोही चक्रके क्रमसे भी स्वर निकलते हैं। जैसे स से एक पञ्चम उतरनेपर म, $\frac{२}{३}$ और म से एक पञ्चम उतरनेपर न $\frac{४}{९}$ मिलते हैं जिन्हें क्रमशः एक सप्तक और दो सप्तक ऊपर चढ़ानेपर म $\frac{४}{३}$ और न $\frac{१६}{९}$ की निष्पत्ति होती है।

किसी स्वरसे एक पञ्चम चढ़कर एक सप्तक उतरनेका अर्थ है उस स्वरसे एक मध्यम उतरना। उसी प्रकार एक पञ्चम उतरकर एक सप्तक चढ़नेका अर्थ है एक मध्यम चढ़ना। एक मध्यम चढ़ने या उतरनेके लिए पूर्व स्वरके भिन्नांकमें $\frac{४}{३}$ से क्रमशः गुणा या भाग करना होगा और सेवटमें उस स्वरमें १२५ से जोड़ना या घटाना होगा। इस रीतिसे ऊपर की गणना, संभिन्न करके, एक सप्तक तक सीमित रखी जा सकती है, जैसे—

१—आरोही पञ्चम चक्र—

स → प $\frac{३}{२}$ → र ($\frac{३}{२}$ − $\frac{४}{३}$ =) $\frac{९}{८}$ → ध $\frac{२७}{१६}$ → ग ($\frac{२७}{१६}$ − $\frac{४}{३}$ =) $\frac{८१}{६४}$

या सेवटमें—

स० → प १७६ → र (१७६-१२५ =) ५१ → ध २२७ → ग (२२७-१२५ ≈) १०२।

२—अवरोही पञ्चम चक्र—

स १ → म $\frac{४}{३}$ → न् $\frac{१६}{९}$ → ग ($\frac{१६}{९}$ − $\frac{३}{२}$ =) $\frac{३२}{२७}$ → ध $\frac{१२८}{८१}$

या सेवटमें—

स० → म १२५ → न् २५० → ग (२५०-१७६ =) ७४ → ध १९९

उपरकी गणनामें चक्रिक प्रक्रियामें नीचे दिया हुआ ग्राम बनता है—

स	र	ग	प	ध	न	[illegible]
१	$\frac{९}{८}$	$\frac{८१}{६४}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{२७}{१६}$	$\frac{२४३}{१२८}$	२

इस ग्राममें शुद्ध म $\frac{४}{३}$ का अभाव है। पर इस अभावकी पूर्ति इस शृंखलाको स से एक पञ्चम नीचसे शुरू करनेपर या एक स्वर स से

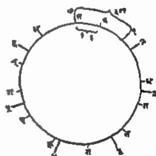
अवरोही क्रमसे लेनेपर हो जाती है। स म एक पञ्चम नीचे म $\frac{२}{३}$ होगा जिसे एक सप्तक ऊपर चढ़ानेपर म $\frac{४}{३}$ की निष्पत्ति हो जायेगी। अब पूरा ग्राम इस प्रकार होगा—

स	र	ग	म	प	ध	न	स
१	$\frac{९}{८}$	$\frac{८१}{६४}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{२७}{१६}$	$\frac{२४३}{१२८}$	२

अन्तराल: $\frac{९}{८}$, $\frac{९}{८}$, $\frac{२५६}{२४३}$, $\frac{९}{८}$, $\frac{९}{८}$, $\frac{९}{८}$, $\frac{२५६}{२४३}$

इस ग्राममें दो ही प्रकारके अन्तराल हैं—एक गुरु स्वर $\frac{९}{८}$ दूसरा पायथागोरसका 'हेमीटोन' या लीमा जो अर्ध स्वरसे एक कोमा छोटा है।

इस शृङ्खलाको और भी आगे बढ़ाया जा सकता है। जैसे न का पञ्चम तीव्र म (म') और म' का पञ्चम तीव्र स (स') होगा। इसी प्रकार आगे बढ़ाते जानेसे १२ कड़ियोंमें चक्र पूरा हो जायेगा अर्थात् ग्राममें १२ स्वर मिल जायेंगे। इसी बातको चक्रके द्वारा बताया गया है।



चित्र० २३

इस चक्रका अधिक सूक्ष्म विचार करनेपर पता चलेगा कि यथार्थमें यह चक्र वृत्तकी तरह पूरा नहीं होता बल्कि सर्पकी कुण्डलीकी तरह घूमता ही जाता है। यह चक्र पूरा तभी हो सकता है जब तेरहवाँ स्वर ठीक आरम्भिक स पर आन कर पड़े, जहाँसे चक्र आरम्भ हुआ था। पर ऐसा नहीं होता। यह गणितकी सामान्य क्रियासे ही विदित हो जायेगा। चक्रमें सप्तकोंके अंक (१, २, ३) बताये हुए हैं जिनमें पञ्चम-सवादी स्वर फैले हुए हैं। यह प्रत्यक्ष है कि इन १२ स्वरोंका विस्तार ७ सप्तकोंके बराबर है। सेवटमें स–प का मान १७६ और एक सप्तकका मान ३०१ है। इस चक्रको पूरा होनेके लिए

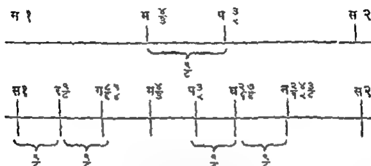
१२×५ को ७×स के बराबर होना चाहिए। पर ऐसा नहीं है। हिसाबसे दोनोंका अन्तर १ सवटके बराबर है। अर्थात् तेरहवाँ स्वर स पर न पड़कर इससे एक कोमा ऊँचा पड़ता है। इसलिए वृत्त पूरा न होकर आगे नया चक्र शुरू होता है जो सर्पिल होकर घूमता ही जाता है। ऊपर निकले हुए अन्तरको 'पायथागोरसका कोमा' कहते हैं जो अगर यह गणना अधिक शुद्धतासे की जाय तो ५.८८ सवटके बराबर होगा। 'कोमा डायसिस' इससे कुछ छोटा होता है जो गुरु स्वर ९/८ और लघु स्वर १०/९ का अन्तर ८१/८० या ५.४ सेवट है।

ग्रीस देशमें पायथागोरसने इस प्रक्रियाका उपयोग किया था। चीन देशके स्वर ग्रामकी रचना भी इसी प्रक्रियासे हुई है। वहाँ यह चक्र ६० स्वरों तक ले जाया जाता है और इसलिए वहाँ एक सप्तकमें ६० स्वर होते हैं। एक सप्तकमें इन ६० स्वरोंके प्रमाण स्वरूप प्राचीन कालसे ही धातुकी ऐसी नलियाँ बनानेकी प्रथा है जिनका माप बड़ा ही सच्चा होता है और जो निश्चित तारताकी ध्वनियाँ पैदा करती हैं जिन्हें लिउ कहते हैं। यह चीनी संगीतका अनिवार्य आधार है।"

भारतीय संगीतके इतिहासमें दाक्षिणात्य पण्डित रामामात्य और उनके अनुयायी सोमनाथने इस प्रक्रियाका उपयोग वीणाके स्वरनिधारणमें किया है। इस प्रक्रियासे प्राप्त स्वरोंको ही उन्होंने 'स्वयंभू स्वर' कहा है। उन्होंने म-प के साथ-ही-साथ स-म संवादका भी उपयोग किया है जो स-प का ही अवरोही है।

६७ (३) सक्रमिक प्रक्रिया—इस प्रक्रियामें एक सप्तकके विस्तारको कृत्रिम रूपसे छोटे-छोटे अन्तरालोंमें बाँट दिया जाता है। पर इस विभाजनका एकक या प्रमाण प्राकृतिक स्वरोंसे ही प्राप्त होता है। चक्रिक प्रक्रियामें जैसे स्वरोंकी शृंखला चक्रमें घूमती है वैसे ही सक्रमिक प्रक्रियामें सप्तकके विस्तारको एक सरल रेखा मानकर उसे टुकड़ोंमें बाँटा जाता है। आगेके उदाहरणसे यह प्रक्रिया स्पष्ट हो जायेगी।

म और प, ये दो स्वर प्रायः उतने ही प्राकृतिक हैं जितना स–स। इसलिए स्वभावतः म और प स–स के बीच सरलतासे बठाये जा सकते हैं।



इन दो स्वरोंका अन्तराल भी स से $\frac{४}{३}$ और $\frac{३}{२}$ निश्चित है। इन दो स्वरोंको म स के बीच बठानेसे इनके बीचका अन्तराल $\frac{९}{८}$ निकलता है। अब देखा जाता है कि स और म तथा प और स के बीचका अन्तराल बहुत बड़ा है जिसे छोटे अन्तरालोंमें बाटना आवश्यक है। इस क्रियाके लिए म–प अन्तराल $\frac{९}{८}$ का ही प्रमाण माना जा सकता है। अतः म म म म $\frac{९}{८}$ का टुकड़ा काट लें जो र होगा और फिर एक टुकड़ा और $\frac{९}{८}$ का काट लें जो ग होगा। इसी प्रकार प–स अन्तरालमें-से भी ध और न का टुकड़ा काट लें। इस क्रियाके बाद देखेंगे कि ७ स्वरोंका ग्राम तैयार हो जाता है। यह ग्राम वही है जो चक्रिय प्रक्रियासे प्राप्त हुआ था।

पर इस प्रक्रियाका अधिकार यहीं तक समाप्त नहीं होता। पूरा ग्राम तैयार होनेपर ग और म के बीचका एक नया अन्तराल मिल जाता है जिसका उपयोग नये स्वरोंकी उत्पत्तिमें किया जा सकता है। यह अन्तराल $\frac{२५६}{२४३}$ का है जिसे 'लीमा' कहते हैं। अब किसी स्वरमें से एक लीमा काटकर या उसमें एक लीमा जोड़कर उसे कोमल या तीव्र किया जा सकता है। यदि एक स्वर अर्थात् $\frac{९}{८}$ में-से एक लीमा काटें तो शेष अन्तरालका मान

$$\frac{९}{८} \times \frac{२४३}{२५६} = \frac{२१८७}{२०४८}$$

होता है जिसे एँपोटोम कहते हैं। यह अर्ध स्वर $\frac{१६}{१५}$ के लगभग बराबर है। अर्ध स्वरका मान सेवटमें २८ होता है और एँपोटोमका २८.६। दोनोंका अन्तर सिर्फ .६ सेवट है। पर अब यह एक नया अन्तराल मिल गया जिसका उपयोग स्वरोंके उतार चढ़ावमें किया जा सकता है। जैसे मैं से लीमाके बदले एक एँपोटोम या अर्ध स्वर नीचे उतरनेसे अब पाइथागोरस का गान्धार ($\frac{८१}{६४}$) नहीं बल्कि प्रकृत गान्धार ($\frac{५}{४}$) मिलेगा। प्रकृत गान्धार प्राप्त होनेपर लघु स्वर $\frac{१०}{९}$ और लघु स्वर और गुरु स्वरके अन्तरसे कोमा $\frac{८१}{८०}$ आपसे आप निकल आते हैं। फिर लघु स्वर $\frac{१०}{९}$ और अर्ध स्वर $\frac{१६}{१५}$ के अन्तरसे लघु अर्ध स्वर $\frac{२५}{२४}$ की निष्पत्ति होती है। संक्रमिक प्रक्रियामें इन सारे अन्तरालोंका उपयोग स्वरोंके उतार चढ़ावमें किया जाता है। इन्हें एक साथ नीचे दिया जाता है —

कोमा	$\frac{८१}{८०}$ = ५ सेवट (लगभग)।
लघु अर्ध स्वर	$\frac{२५}{२४}$ = १८ "
लीमा	$\frac{२५६}{२४३}$ = २३ "
अर्ध स्वर	$\frac{१६}{१५}$ = २८

अर्ध स्वर और लघु स्वरकी निष्पत्ति सीधे तरीकेसे भी होती है। क्योंकि यह अनुभव सिद्ध और नियमित है कि यदि संक्रमण मार्गसे षड्जसे ऋषभ लेकर गान्धारपर जायें तो बड़ा गान्धार $\frac{८१}{६४}$ मिलेगा और यदि सीधे मार्गसे ऋषभको स्पर्श करके षड्जसे एक बार ही गान्धारपर जायें तो प्रकृत गान्धार $\frac{५}{४}$ मिलेगा। एक बार प्रकृत गान्धार मिल जानेपर लघु स्वर और अर्ध स्वरकी निष्पत्ति अनायास होती है।

ऊपरके विचारोंसे यह परिणाम निकलता है कि संक्रमिक प्रक्रियाका अधिकार क्षेत्र सबसे अधिक व्यापक और सार्थक है क्योंकि इसमें प्राकृतिक और चक्रिक प्रक्रियाओंके सभी अन्तरालोंका उपयोग होता है।

६८ प्राचीन यूनानी पद्धतिमें इसी प्रक्रियासे ग्रामकी रचना होती

थी। इसमें सारे सप्तकका एक साथ विचार नहीं होता था। एक चतु-संघात (स र ग म) के आवेष्टनका अचल मान बीचके दो स्वरोंको विचलित करके भिन्न भिन्न ग्रामोंकी रचनाकी जाती थी। एक चतुःसंघातमें स और म अचल स्वर हैं जो इसके आवेष्टनको अचल बनाये रखते हैं। बीचके दो स्वर र और ग चल हैं जो कोई भी स्थान ग्रहण कर सकते हैं और चतुःसंघातमें इनकी आपेक्षिक स्थिति हो पर ग्रामका रूप निर्भर है। पूर्व चतुःसंघातमें स और म और उत्तर चतुःसंघातमें प और स अचल हैं जो दोनों चतुःसंघातोंके आवेष्टनको भी अचल रखते हैं। इसीलिए अरिस्टाटलने इन्हें 'स्वरकका शरीर' बताया है।

चतुःसंघातके विभाजनकी विधिके अनुसार प्राचीन पद्धतिमें ग्रामकी तीन जातियाँ मानी जाती थीं—(१) द्विस्वरक (डायटोनिक) (२) अर्धस्वरक (क्रोमेटिक) और (३) श्रुतिमूलक (एनहार्मोनिक)।

१—द्विस्वरकमें म म के बीचका देश दो गुरु स्वर और एक अर्ध स्वर या ग्रामोंमें बाँटा जाता था। उपर्युक्त पायथागोरसका ग्राम इसी जातिका है।

२—अर्धस्वरकमें एक टुकड़ा कोमल गान्धार $\frac{?}{?}$ के बराबर होता है, जो लगभग तीन अर्ध स्वरके बराबर है और शेष एक स्वर प्राय दो अर्ध स्वरोंके टुकड़ोंमें बँटा होता है।

३—श्रुतिमूलकमें एक टुकड़ा प्रकृत गान्धार $\frac{5}{4}$ के बराबर होता है और शेष अर्ध स्वर प्राय दो टुकड़ोंमें बँटा होता है। यह छोटा टुकड़ा एक स्वरका चतुर्थांश माना जाता है। इसीलिए इस जातिको श्रुतिमूलक कहा गया है।

किसी चतुःसंघातमें इन टुकड़ोंका क्या क्रम है, इस बातपर एक एक जातिके अनेक भेद हो सकते हैं।

इन जातियोंमें मुख्य बात यह है कि द्विस्वरकमें चढ़ा गान्धार $\frac{81}{64}$ अर्धस्वरकमें कोमल गान्धार $\frac{6}{5}$ और श्रुतिमूलकमें प्रकृत गान्धार $\frac{5}{4}$ का

प्रयोग होना ह। इमसे यह धारणा भा सिद्ध हो जाती ह कि संक्रमसे गान्धारपर जानेमें विवादी गान्धार ६/७ मिलता और लघनसे गान्धारपर जानेमें संवादी गान्धार ५/४ या कोमल गान्धार ६/५ मिलता ह। यह स्वाभाविक क्रिया [illegible] जिसका नियन्त्रण कण्ठ और कानकी रचनासे होता ह।

प्राचीन यूनानी ग्रामकी तरह ही भारतीय, अरबी और फारसी ग्राम भी संक्रमिक प्रक्रियासे ही तयार हुए ह। आधुनिक भारतीय दाक्षिणात्य शुद्ध ग्राम स्पष्ट सप्तस्वरक जातिका और उत्तरीय ग्राम द्विस्वरक जातिका ह। श्रुतिमूलक जातिके ग्रामोंका भी प्रयोग भारतीय संगीतमें पाया जाता ह।

अब यहाँ चक्रिक प्रक्रिया और संक्रमिक प्रक्रियाके स्वरोंकी तुलना की जाती ह।

यह बताया जा चुका ह कि चक्रिक प्रक्रियामें आरोही क्रमसे १२ कड़ियोंमें चक्र प्राय पूरा हो जाता ह। उसी तरह अवरोही क्रमसे भी चक्रको पूरा करनेके लिए १२ कड़ियोंकी आवश्यकता होगी। अगर बतायी हुई क्रियासे एक सप्तकमें ही गणना की जाय तो आरोही और अवरोही चक्रोंमें नीचे दिये हुए स्वर निकलेंगे—

१—आरोही चक्र (सवटम)

स० ⟶ प १७६ ⟶ र ५१ ⟶ ध २२७ ⟶ ग १०२ ⟶ न २७८ ⟶ म' १५३ ⟶ म २८ ⟶ प २०४ ⟶ र ७९ ⟶ ध २५५ ⟶ ग' १३० ⟶ न' ३०६ (सं० ३०१)।

२—अवरोही चक्र (सवट म)—

स० ⟶ म १२५ ⟶ न २५० ⟶ ग ७४ ⟶ ध १९९ ⟶ र २३ ⟶ प १४८ ⟶ म २७३ ⟶ न ९७ ⟶ म २२२ ⟶ [illegible] ४६ ⟶ ध १७१ ⟶ र् २९६ (सं० ३०१)।

संक्रमिक प्रक्रियामें ५ गुरु स्वर (५१ स) और २ लीमा (२३ स)

होते ह । अब लीमाके प्रमाणसे प्रत्येक स्वरको उतारनेपर ५ कोमल स्वर और मिलगे जसे, र (२८) ग ७९, प १५३ ध २०४ और न २५५ । म और स को एक एक लीमा उतारनेसे गुरु ग और गुरु न ही मिलेंगे, इसलिए ये नहा उतारे जा सकते । इस प्रकार ग्राममे १२ स्वर हुए । यह ग्राम सावभौम ह ।

पर यदि उतारनके बदल प्रत्यक स्वरका एक लीमा चढाया जाय तो ५ नय स्वर मिलेंगे, जसे स′ २३, र′ ७४, म′ १४८ प′ १९९ और ध′ २५० । ग और न नहो चढाये जा सकने । इस प्रकार ग्राममें १७ स्वर हुए । फारसी ग्राम इसी प्रकारका ह ।

यदि प्रकृत गा आर (३⁄२) से निकले हुए लघु स्वर (१⁄२) या ४६ से के प्रमानेस प्रत्यक स्वरका चढावें तो ५ स्वर और निकलगे जो शुद्ध गुरु स्वरासे एक एक कामा (५ से) ऊपर हुए होंगे, जैसे, स″ (४६) र″ (९७), म (१७१) प″ (२२२) और ध″ (२७३) । ग म और न–स अतरालोके एक एक लीमा होनेसे इनसे ग ′ और न के स्थान नहीं आ सकते । इसलिए अब ग्राममें २२ स्वर हुए । प्राचीन हिंदू ग्राम इसी प्रकारका ह ।

आगेकी सारिणीसे पता चलेगा कि इन दोनो ही प्रक्रियाओसे निकले हुए स्वर एक ही ह, केवल चक्रिक ग्रामम दो स्वर अधिक ह । ये दो स्वर भी सक्रमिक ग्राममें आ सकते ह पर इन प्रक्रियाओकी युक्तिसे ही यह सिद्ध ह कि चक्रिक ग्राममें २४ स्वराका और सक्रमिक ग्रामम २२ स्वराका होना स्वाभाविक ह । या तो यह मानना ही पडेगा कि इन दोनो ही प्रक्रियाओसे कितने प्रकारके ग्राम हो सकते ह, इसकी कोई निर्दिष्ट सीमा नहीं ह ।

नीचेकी सारिणीमे दोनो ही प्रक्रियाओसे निकले हुए स्वर, तारता-क्रम से, दिये जाते ह जिससे तुलनामें सरलता होगी ।

सारिणी ६

पंचिक ग्राम		सत्रमिक ग्राम	
स्वर	अंतराल (सेवर्ट)	स्वर	अंतराल (सेवर्ट)
स	०	स	०
र्	२३	स	२३
ग	२८	र्	२८
ग्	४६	स'	४६
र	५१	र	५१
ग्	७४	र'	७४
र	७९	ग	७९
म्	९७	र'	९७
ग	१०२	ग	१०२
म	१२५	म	१२५
ग'	१३०	—	—
प्	१४८	म	१४८
म'	१५३	प्	१५३
ध्	१७१	म	१७१
प	१७६	प	१७६
ध	१९९	प'	१९९
प	२०४	ध्	२ ४
न्	२२२	प''	२२२
ध	२२७	ध	२२७
र्	२५०	ध्	२५०
ध'	२५५	र्	२५५
स्	२७३	ध''	२७३
न	२७८	न	२७८
र्	२९६	—	—
न' (सं)	३०६(३०१)	सं	३०१

५६ साधृत ग्राम[1]—इस प्रकारके एक ग्रामकी चर्चा पहले की जा चुकी है जिसमें एक सप्तकमें १२ अर्ध स्वर बराबर अन्तरालके होते हैं। यह भी बताया जा चुका है कि हिन्दुस्तानी संगीत समाजमें इस प्रकारके ग्रामका उपयोगिता सिर्फ अचल स्वरवाले बाद्योंमें संगतिके लिए है। यहाँ इस प्रकारके ग्रामोंकी रचना विधिपर विचार किया जायगा।

प्राचीन कालमें पाश्चात्य देशोंमें उपयुक्त पायथागोरसके ग्रामका प्रचार बहुत दिनों तक रहा। उस समय इस ग्रामके हर एक स्वरको स्वरित या षड्ज मानकर अनेक मूर्छनाएँ बनायी जाती थीं जिन्हें 'मोड' कहा जाता था। इस प्रकार अनेक उपग्राम या 'ठाठ' पैदा हो जाते थे जिनसे संगीतमें विचित्रता आ जाती थी। आगे चलकर महति के प्रभावसे सभी मोडोंका लोप होकर केवल गुरु ग्राम और लघु ग्राम रह गये। इससे संगीतकी विचित्रता जाती रही और इसमें एकरसता आने लगी जो रसज्ञोंके लिए असह्य होती है। इस त्रुटिको यथासम्भव दूर करनेके लिए पाश्चात्य संगीतमें एक नया शलाका प्रादुर्भाव हुआ।

इस शलाके अनुसार ग्रामको बिना बदले हुए स्वरित बदलते जानेकी प्रथा चल पड़ी अर्थात् संगीतका आरम्भ यदि स्वरित म स होता है तो बादको विचित्रता लानेके लिए र ग आदि अन्य स्वरोंमें किसी एकको स्वरित मान लिया जाता है और उसी गानको उसी ग्राममें इस नये स्वरित से शुरू किया जाता है। इसमें प्रत्येक स्वर समान रूपसे ऊपर चढ़ जाता इसे स्वरित चालन या माडयुलेशन' कहते हैं। अब यह समझना आसान है कि पायथागोरसके ग्रामके साथ हार्मोनियम या प्यानो-जैसे अचल स्वर

---

१ इस ग्रामका नाम 'साधृत' इसलिए रखा गया है कि प्राचीन शास्त्रोंमें 'साधारण' शब्द दो स्वरों, दो ग्रामों या दो जातियोंका सन्धिके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इस ग्रामके भी हर एक स्वर सन्धिसे हो बने हैं।

वाले बाजोंमें यह स्वरित-चालन नहीं हो सकता। इसके लिए अनेक नये स्वरोंकी पटरियाँ बैठानी होंगी। दूसरी बाधा यह आ पड़ी कि संहतिमें इष्ट संघातोंका ही उपयोग होता है जिसमें आवश्यक या प्रकृत स्वर ही काममें आ सकते हैं। विशेष रूपसे गांधारका इष्ट होना आवश्यक है। अर्थात् संहतिमें प्रकृत म ५/४ का प्रयोग होना चाहिए, पायथागोरसके गांधार (८१/६४) का नहीं।

इन्हीं कारणोंसे पायथागोरसके ग्रामका सदियों तक पाश्चात्य देशोंमें साम्राज्य रहते हुए भी संहति-मूलक संगीतके आविर्भाव और पटरियोंवाले बाजोंके आविष्कारके बाद नये कृत्रिम ग्रामकी आवश्यकता पड़ी।

१—स्वर-साधुन ग्राम—इस दिशामें पहले प्रयासके फलस्वरूप स्वर साधन ग्राम की रचना हुई जिसका अधिकार सदियों तक बना रहा। इस रचनाका उद्देश्य था गांधारको सच्चा बनाना जिससे उपयुक्त दूसरी त्रुटिकी और कुछ अंशोंमें पहली त्रुटिकी भी पूर्ति होती थी। इसकी प्रक्रिया नीचे दी जाती है—

चक्रिक क्रममें स→प→रे→ध→ग इन चार कड़ियोंमें गांधारकी प्राप्ति होती है जहाँ एक कड़ीका मान सप्तकके बराबर या १७६ सवर्ट है। इस गांधारका मान पहले सप्तकमें १०२ सेवर्ट है। पर प्रकृत गांधारका मान ५/४ या ९६.९ सवर्ट है। इन दोनोंका अन्तर ५.१ सवर्ट हुआ। इसलिए प्रकृत गांधारकी निष्पत्तिके लिए हर कड़ीका ¼ ५/४ या लगभग १.३ सेवर्ट छोटा करना पड़ेगा। अस्तु, पायथागोरसके चक्रकी हर कड़ी १७६ के बदले १७४.७ स होनी चाहिए। इस तरह प का मान अब १७४.७ स। अतः रे का मान १७४.७+१७४.७=३४९.४ स हुआ। इस रे को उतारकर पहले सप्तकमें लानेपर इसका मान ३४९.४−३०१=४८.४ से होता है। इस प्रकारसे १२ स्वरोंका चक्र पूरा करने पर और हर स्वरको पहले सप्तकमें उतारनेपर नीचे दिया हुआ ग्राम तयार होता है—

सारिणी १०

स्वर	अन्तराल म से सवट	पारस्परिक	सात स्वर	स ग
म	०	१८९	४८४	
स'	१८९	२९५		९६८
र	४८४	२९५	४८४	
ग	७७९	१८९		
ग	९६८	२९५	२९५	
म	१२६३	१८९	४८४	
म'	१४५२	२९५		
प	१७४७	१८९	४८४	
प'	१९३६	२९५		
ध	२२३१	२९५	४८४	९६८
न	२५२६	१८९		
न	२७१५	२९५	२९५	
स	३०१			

सारिणीके निरीक्षणसे पता चलता है कि इस ग्राममें गान्धार तो प्रकृत (५/४) है पर इसके गुरु स्वर और लघु स्वर, इन दोनों अवयवोंको

मिलाकर बराबर हिस्सोंमें बाट दिया गया है इसलिए गान्धारके प्रकृत होनेपर भी द्विस्वरक ग्रामकी तरह स र और र ग बराबर हो गये हैं। इसीसे इसे स्वर साधृत ग्राम कहा जाता था। यहा यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि यह चक्र भी पहले चक्रकी तरह पूरा नही होता और इसलिए *इस ग्राममें और भी स्वर घुसाये जा सकते हैं।*

इस ग्रामम गान्धार तो सवादी मिल जाता है पर स्वरित-चालन कुछ ही स्वरामें सम्भव है। फिर पञ्चम बहुत ही विचलित हो जाता है और ध' (ध) और ऊपरके सप्तकके म का अन्तराल ३/४ स अर्थात पञ्चम सवादसे बहुत बड़ा हो जाता है। इसे 'उल्फइण्टवल' कहते हैं। किसी भी *स्वरित चालनमें इस अन्तरालका बचना भी आवश्यक है।*

२—सम-साधृत ग्राम—उपयुक्त कृत्रिम ग्रामकी त्रुटियोंके कारण ही आगे चलकर उसकी जगह सम-साधृत ग्रामका आविष्कार हुआ जो अभी तक प्रचारमें है। इस ग्रामम स्वरित चालनकी सुविधाके लिए गान्धार-सवादके मोहका त्याग किया गया। इस ग्रामका पञ्चम भी अपेक्षाकृत अधिक *सच्चा हो गया। अर्थात पहले ग्रामम गान्धारको सच्चा बनानेमें जो विकार* एक जगह इकट्ठा हो गया था वह १२ स्वरोंम बँट गया। इस ग्रामकी रचनाकी प्रक्रिया आगे दी जाती है—

जैसा कि पहले बताया गया है चक्रिक प्रक्रियामें चक्र वृत्तकी तरह पूरा नहीं होता बल्कि सर्पिल होकर घूमता है। अगर वृत्त पूरा हो जाय *अर्थात् चक्रका तेरहवाँ स्वर ठीक स पर पड़े तो यह आसानीसे समझा जा* सकता है कि बारहके-बारह स्वर आपसमें बराबर हो जायेंगे और फिर कोई भी स्वर स्वरित चालनमें काम आ सकता है। पर १२ प ७ सप्तकमें ५.८८ सवट ज्यादा है। इसलिए वृत्तको पूरा बनानेके लिए यह आवश्यक है कि चक्रका हर कदाम से $\frac{६६}{१२}$ = ४° या लगभग काट लिया *जाय। अर्थात अब चक्रकी हर एक कडी १७६१ के बदले १७१६* होनी चाहिए। इस प्रमाणसे चक्र पूरा करनेपर १२ अर्ध स्वरोंके अन्तराल

परस्पर बराबर होंगे और इनका मान लगभग २५ से के होगा। इस ग्रामकी सारिणी (७) पहले दी जा चुकी है (अनुच्छेद ५४)।

६६ **जटिल ग्राम**—सम साधित ग्राममें स्वरित चालनकी समस्या तो प्राय हल हो जाती है पर सभी स्वर फिर भी अनिष्ट रहते हैं। इसलिए ऐसे ग्रामकी फिर भी आवश्यकता रहती है जिसमें इन दोनों उद्देश्योंकी सिद्धि हो जाये। यह तो ऊपरकी विवेचनामें स्पष्ट है कि पञ्चम संवादका चक्र पूरा नहीं होता। इस चक्रको पूरा करनेके लिए ही प्रत्येक स्वरको खिसकाना पड़ता है जिसमें वह अनिष्ट हो जाता है। अब अगर चक्रकी शृंखला इतनी बढ़ायी जाये कि आदि स्वर और अन्त स्वर एक दूसरेके बहुत ही निकट आ जायें तो स्वरोंको विचलित करनेकी आवश्यकता प्राय न रहे। और तब स्वरित चालनमें भी प्रकृत पञ्चम मिल सकता है। गणनासे यह विदित है कि—

जैसे १२ पञ्चम और ७ सप्तकमें लगभग १/४ (अर्ध स्वर) का अन्तर है
वैसे ही ४१ पञ्चम और २४ ,, ,, १/५ ,, ,,
५३ ,, ३१ ,, ,, १/२८ ,, ,,
३०६ ,, १७९ ,, १/[illegible] ,, ,,

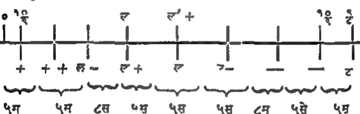
यह शृंखला इतनी आगे बढ़ायी जा सकती है कि पञ्चमका कोई आवर्त्य सप्तकके किसी आवर्त्यके और भी निकट आ जाये। इससे पञ्चम तो अधिकाधिक शुद्ध होता चला जायगा पर यह भी देखना है कि पञ्चमके अतिरिक्त गान्धार भी किस चक्रमें अधिक शुद्ध पड़ता है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर ५३ स्वरवाला ग्राम सबसे अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। इस प्रकारका प्रस्ताव पहले पहल गेराडुस मर्केटर (Gerardus Mercator) ने सोलहवीं सदीमें किया था। उन्नीसवीं सदीमें लन्दनके बोसांकेने और स्प्रिंगफील्डके वाइटने अपने लिए ऐसे हार्मोनियम बनवाये थे जिनमें एक सप्तकमें ५३ स्वर थे। पर ये व्यवहारमें नहीं आये, केवल कौतूहलकी वस्तु रह गये।

७० जैसे चक्रिय प्रक्रियासे ५३ स्वरोंका ग्राम बनाया गया है वैसे ही दैनौल्न संक्रमिक प्रक्रियासे ५३ स्वरोंका ग्राम बनाया है। उनकी प्रक्रिया नीचेके चित्रके द्वारा समझायी जाती है। इस चित्रको समझनेके लिए कुछ संकेत पहले बताया जाता है जैसे —

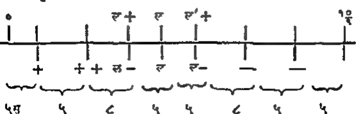
अन्तराल	संकेत	चढ़ाव	उतार
लीमा २३ स	ल	ल'	ल
गुरु अर्ध स्वर २८ स	ल +	ल' +	ल +
लघु अर्ध स्वर १८ स	ल−	ल'−	ल−
कामा		+	—

इन्हीं संकेतोंके द्वारा स्वरोंके टुकड़ोंको बताया जाता है जैसे—

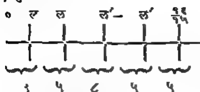
१—गुरु स्वर—



२—लघु स्वर



(३) गुरु अर्ध स्वर—



ऊपरकी क्रियासे गुरु स्वर ९ भागोंमें, लघु स्वर ८ भागोंमें और गुरु अर्ध स्वर ५ भागोंमें विभक्त होते हैं। एक सप्तकमें ३ गुरु स्वर, २ लघु स्वर और २ अर्ध स्वर होते हैं इसलिए एक सप्तक कुल ५३ भागोंमें विभक्त हुआ।

इस विभाजन प्रक्रियामें और चक्रिक विभाजन प्रक्रियामें कोई विशेष अन्तर नहीं है। जैसे इसमें एक अणु स्वर एक कोमाके बराबर होता है चक्रिक प्रक्रियामें भी प्रायः वैसा ही होता है। अगर यह ग्राम व्यावहारिक हो तो इसमें उपर्युक्त तीनों ही प्रक्रियाओंसे निष्पन्न सारे ग्राम आ जाते हैं। पर इस प्रकारके जटिल ग्राम केवल कौतूहलकी वस्तु है व्यवहार की नहीं।

२३ संगीत

७१ संगीतकी सृष्टि नादसे होती है। जिस तरह मिट्टी या पत्थरसे मूर्ति, रंगसे चित्र और ईंट-पत्थरोंसे महल तैयार होते हैं, उसी तरह नादसे संगीत प्रस्फुटित होता है। मिट्टी आदिकी तरह ही नाद संगीतका उपादान मात्र है। कोई नाद चाहे जितना भी श्रुति-मधुर हो, अकेला संगीतका रूप नहीं ले सकता। उस नादमें ही संगीतका रूप देखना वैसा ही है जैसा किसी पत्थरके ढोकेमें बुद्धकी मूर्ति या रंगोंके ढेरमें रम्भा मदालसाका चित्र देखना। किसी भी कला-कृतिके लिए अच्छे उपादानका ग्रहण करना उचित है और इस दृष्टिसे संगीतके लिए कर्ण प्रिय नाद भी आवश्यक है। पर कर्ण प्रिय नाद स्वयं न तो संगीत है और न संगीतके लिए अनिवार्य है। कलाकी सृष्टि उसके उपादानके रीतिगत उपयोग या प्रबन्धसे होती है। यह प्रबन्ध कलावानकी कृति है। एक साधारण मनुष्य मीठी आवाज सुनकर ही तृप्त हो सकता है पर संगीतका पारखी यह देखता है कि किसीने अपनी मीठी आवाजका किस रीतिसे उपयोग किया है—मीठी आवाजकी भित्तिपर कैसी कारीगरी की है। जैसे अनेक रंगोंके प्रबन्धसे चित्र कलाकी सृष्टि होती है वैसे ही भिन्न भिन्न तारतान अनेक ऊँचे-नीचे नादोंके प्रबन्धसे संगीत-कलाकी सृष्टि होती है। किसी नादकी प्रिय या अप्रिय वेदना कर्णेन्द्रिय तक ही सीमित होती है। यह कर्ण-तन्तुओंके स्पन्दनसे उत्तेजित केवल शुद्ध और परिच्छिन्न मानसिक विकार है। पर संगीतकी उत्पत्ति ऐसी अनेक मानसिक अनुभूतियोंके क्रम और पारस्परिक सम्बन्धसे होती है। एक आदिम मनुष्यको डूबते हुए सूरजका लाल चक्का देखकर हर्ष हो सकता है या खोखले बाँसकी नलीमें हवाके संचारसे निकली हुई ध्वनि सुनकर तृप्ति हो सकती है। पर न तो चित्रकला केवल लाल रंग है और न संगीत केवल बाँसकी ध्वनि।

इस दृष्टिसे संगीत केवल नाद नहीं वरन भिन्न भिन्न तारता या स्थानके ऊँचे-नीचे स्वरोंका क्रम बद्ध प्रबन्ध है अर्थात् संगीतके विकासकी पहली कड़ी 'अन्तराल' है (अनुच्छेद ४७)।

७२. डार्विनने अपने 'मानव अवतरण' में अनेक वैज्ञानिकोंके निरीक्षणोंके आधारपर यह बताया है कि पशु-पक्षियोंकी ध्वनिमें भी भिन्न भिन्न स्वरोंके अन्तराल पाये जाते हैं। और प्रायः ये अन्तराल ऐसे होते हैं जिनका उपयोग मनुष्य समाज अपनी संगीत-कलामें आज भी कर रहा है। 'कुत्ते, पालतू होनेके बाद चार या पाँच स्पष्ट स्वरोंमें भूकने लगे हैं।' 'घरेलू मुर्गे कमसे-कम एक दर्जन स्पष्ट स्वरोंमें बोलते हैं।' रेवरेण्ड लॉकवुडने अमरीकामें पाये जानेवाले एक विशेष जातिके चूहेका वर्णन किया है। उन्होंने बताया है कि यह चूहा अपने गलेसे अर्ध स्वर तकका सच्चा अन्तराल निकालता है। यह कभी-कभी अपने स्वरको ठीक ठीक एक अष्टक नीचे उतारता है। उन्होंने इस चूहेके प्राकृतिक संगीतकी स्वर लिपि भी तैयार की है। बहुतेरे पक्षियोंमें जो गायक जातिके समझे जाते हैं, गलेसे आवर्तक ग्रामके स्वर यथावत निकालनेकी क्षमता होती है।

वाटरहाउसके निरीक्षणसे पता चलता है कि वनमानुस जातिका गिब्बन आरोही और अवरोही मूर्च्छनामें अर्ध स्वरके सच्चे अन्तरालका प्रयोग करता है और इसके निम्नतम और उच्चतम स्वरमें एक अष्टकका अन्तराल होता है। इसकी ध्वनि तीव्र और संगीतमय होती है। ओवनने भी, जो एक गायक था, इस निरीक्षणकी पुष्टि की है। वनमानुस जातिमें और भी जाति विशेषके पशु हैं जो तीन-तीन स्वर शुद्ध अन्तरालके साथ गाते हैं।

वैज्ञानिक निरीक्षकोंका यह मत है कि पक्षियोंमें संगीतका उपयोग विशेष रूपसे रिझाना, भय, क्रोध, विजय या केवल आनन्दके भाव प्रकट करनेमें होता है। पशुओंमें भी नर विशेषतः मैथुनकी ऋतुमें ही गाते हुए पाये जाते हैं जब उन्हें प्रेम, द्वन्द्व, ईर्ष्या, क्रोध, विजय आदि भावोंको प्रकट करनेकी प्रेरणा होती है। मनुष्यकी कण्ठ-रज्जु स्त्रियोंके कण्ठ रज्जुकी अपेक्षा

लम्बाईमें तिगुना होता है। ऐसा समझा जाता है कि विकासके आदिम कालमें 'प्रेम, क्रोध ईर्ष्या आदिकी उत्तेजनामें कण्ठके बार-बार व्यवहारसे' नरका कण्ठ रज्जु लम्बा हो गया है। जो हो, इतना सिद्ध है कि भिन्न भिन्न भावोंको प्रकट करनेमें पशु-पक्षी भी भिन्न भिन्न स्वरोंके सक्रमका उपयोग करते हैं और वहींसे संगीतका आरम्भ होता है।

७३ इस दृष्टिसे यह आश्चर्यकी बात नहीं कि मानव जातिके विकासके आदिम कालमें भी संगीतका अस्तित्व पाया जाता है। पुरातत्त्व बताते हैं कि लोहाम पत्थरके औजारों और लुप्त जातिके पशुओंकी हड्डियोंके साथ रनडीयर [प्राचीन जातिके हिरन] की हड्डीसे और सींगसे बनी हुई बाँसुरी पायी है। यह बहुत ही पुराने प्रस्तर युगकी बात है। लिओनार्ड ऊलेने उमोनके नीचेंस एक ११ तारोंका बाजा निकाला है जो प्रायः ५००० वर्ष पुराना है। इससे स्पष्ट है कि इतने प्राचीन कालमें भी मनुष्य भिन्न भिन्न स्वरोंके सक्रमको जानता था और उससे आनन्द उठाता था। सुमरी गायकोंका ४६०० वर्ष पुराना चित्र पाया गया है जिसमें कई तरहके बाजे और ढोलक दीख पड़ते हैं। मिस्र देशमें प्रायः ४५०० वर्ष पुराना एक चित्र पाया गया है जिसमें ७ गवैये हैं। इनमें से दो सारंग बाजे और तीन बाँसुरी-सरीखे बाजे बजा रहे हैं और दो इन सबके बीच तालियाँ दे रहे हैं।

तात्पर्य यह कि संगीतका विकास पशु-पक्षियोंसे लेकर मनुष्य तक लगातार होता चला आया है, और इसीलिए मानव-संगीतका विकास भी मानव-जातिके विकासके साथ-ही साथ हुआ है। आदिम कालमें, पशु-पक्षियोंकी तरह ही मानव-जातिमें भी संगीतकी प्रेरणा प्रेम, ईर्ष्या, द्वन्द्व, विजय आदि भावोंके प्रदर्शनके लिए ही होती थी। मैक्समूलर आदि भाषातत्त्वज्ञोंकी धारणा है कि भाषाकी उत्पत्तिके पहले संगीतकी उत्पत्ति हुई है। क्योंकि विकासकी दृष्टिसे यह स्पष्ट है कि अन्य जीवोंकी भाँति मनुष्यको भी पहले केवल युद्ध और व्यापक भावोंको व्यक्त करनेकी

प्रेरणा होती होगी जो केवल स्वर-संघातोंसे किया जाता होगा। पहले मनुष्य एक विशेष स्वर-संघातसे प्रेम, दूसरे स्वर-संघातसे ईर्ष्या और किसी तीसरे स्वर-संघातसे विजयकी भावनाकी घोषणा करता होगा। आगे चल कर जब मनुष्यका मस्तिष्क विकसित हुआ तो उसके एक एक व्यापक भाव-■ विचारोंकी अनेक भिन्न भिन्न धाराएँ सूझ पड़ी। इसी प्रकार प्रेम, ईर्ष्या, द्वन्द्व, विजय आदि युद्ध, व्यापक भाव जटिल होने लगे। यहींसे भाषाकी उत्पत्ति हुई, जब भावमय स्वर संघातमें या स्वरके उतार चढ़ावमें स्वर व्यञ्जनमय शब्दों और वाक्योंको गूँथकर किसी व्यापक भावकी अनेक प्रतिक्रियाओंकी व्यञ्जना होने लगी। आज भी यह देखा जाता है कि जब किसी विचारको भावसे अनुप्राणित करना होता है या श्रोताओंके हृदयमें विचारोंके द्वारा किसी भावको उत्तेजना पैदा करनेकी आवश्यकता होती है तो वक्ता एक स्वरके बदले स्वरोंके उतार चढ़ाव या अन्तरालसे काम लेता है, अर्थात सार्थक वाक्योंमें संगीतका पुट डालता है। साधारण बोल चालमें भी वाक्योंका उच्चारण एक तारतापर या एक स्वरमें नहीं होता। विधेयात्मक वाक्य अन्तमें पदजसे निचले पञ्चमपर, मध्यमके अन्तरालमें गिरता है। प्रश्नसूचक वाक्य अन्तमें पञ्चम तक ऊपर उठता है। जहाँ किसी शब्द पर जोर देना होता है वहाँ वह एक स्वर ऊपर उठता है।

संगीतका सम्पर्क केवल प्रेम शृङ्गार या प्रसन्नताके भावोंसे ही नहीं है। यह आदिम मनुष्यके सारे भाव, सारी कामनाओंकी अभिव्यक्तिका साधन था। अब भी यह देखा जाता है कि शोक या दुःखके समय विशेष रूपसे स्त्रियोंका विलाप संगीतके रूपमें ही होता ■। 'अफ्रीकावासी हब्शी जब उत्तेजित होता है तो उसके मुँहसे वाक्य संगीतमें ही निकलते हैं, दूसरा हब्शी भी उसका जवाब संगीतमें ही देता है। धीरे धीरे सारी मण्डली एक सुरसे गाने लगती है।' आरम्भमें मानव जातिके सारे भावोंका संकेत संगीतके द्वारा ही किया जाता था। आगे चलकर जब भाषा प्रस्फुटित हुई तो

संगीतकी उपयोगिता कम हो गयी। फिर भी जहाँ सम्मिलित रूपसे आनन्द या प्रसन्नताके प्रबल भावोंको व्यक्त करना या सारे समुदायको युद्धके लिए उत्तेजित करना होता था वहाँ संगीतका उपयोग होता था। इसी प्रकार आदिम जातियोंमें सामूहिक संगीत और आगे चलकर सभ्य मानव समाजमें ग्राम्य संगीतका प्रादुर्भाव हुआ।

७४ गानका आविर्भाव पहले हुआ या वाद्यका, इस विषयमें मतभेद रहा है। पर प्रमुख तत्त्वज्ञोंका यह मत है कि गानके बाद ही वाद्यका आविष्कार हुआ है। जो वाद्यका स्थान गानके पहले रखते हैं उनकी धारणा है कि मनुष्य पहले खोखले बाँसमें हवाकी गतिसे निकले हुए ध्वनिसे और धातुकी खनकसे आकर्षित हुआ होगा फिर उसके अनुरूप स्वर निकालनेका प्रयत्न करके उसने कण्ठ-संगीत या गानका आविष्कार किया होगा। यह धारणा तभी ठीक हो सकती है जब अन्तराल या स्वर-सक्रम नहीं बल्कि शुद्ध नादको ही संगीत मान लिया जाय। जब कण्ठ-संगीतका विकास पशु पक्षियोंसे ही होता आ रहा है तो मानव-जातिमें आकर इस विकास क्रमके टूट जानेका कोई कारण नहीं। इसलिए यह धारणा अधिक विश्वस्त मालूम होती है कि मानव जातिमें गानकी प्रवृत्ति विकासके क्रमसे ही मौजूद था। पीछे जब अनुभवसे मनुष्यने बाँसकी नलीमें वायुकी गतिसे या तारके छूनेसे निकली हुई ध्वनियोंको श्रुति मधुर पाया तो इन उपकरणोंका उपयोग कण्ठ संगीतका नकल करनेमें किया। यह मानव जातिके विकासके उस कालमें हुआ जब मनुष्यका मस्तिष्क अपनी सुविधाके लिए यन्त्रोंका आविष्कार करने लगा था।

७५ जैसे सम्यक भाषाके बाद लिपि और उसके बाद व्याकरण शास्त्रका निर्माण हुआ वैसे ही गानके बाद वाद्य और वाद्यके बाद संगीत शास्त्र लिखा गया। वाद्य-यन्त्रके आविष्कारने संगीतको मूर्तिमान् कर दिया जिससे मनुष्य संगीतका विश्लेषण कर इसकी शरीर रचनापर विचार कर सका। केवल ध्वनिके बलपर विचार विमर्श सम्भव नहीं होता। स्मृति

अन्तर्दृष्टिके सामने बहुत छोटे क्षेत्रका ही चित्र रख सकती है। इसी लिए लिपिकी भाँति ही वाद्य-यन्त्र भी एक नया साधन प्राप्त हुआ जिसने मस्तिष्कके सामने संगीतका पूर्ण और स्थायी रूप खड़ा कर दिया। इसके बाद ही व्याकरणकी तरह संगीत शास्त्रका निर्माण हुआ जिसने ग्राम्य संगीतको शास्त्रीय संगीतमें बदल दिया। प्राचीनसे प्राचीन संगीत-शास्त्रका देखनेसे यही पता चलता है कि उसके प्रणेताने, चाहे पाइथागोरस हो या भरत, तारके वाद्य यन्त्रोंके आधारपर ही संगीतके नियम निर्धारित किये हैं। तात्पर्य यह कि वाद्य-यन्त्रोंके आविष्कारके बाद ही संगीत शास्त्रका निर्माण हुआ है जिससे संगीतके विकासको नयी स्फूर्ति मिली।

७६ पशु-पक्षियोंके क्रिया कलापमें भी नियम दिखायी पड़ता है और उनमें भी परिस्थितिके अनुसार निर्णयकी क्षमता पायी जाती है। पक्षियोंके घोंसलोंको देखनेसे मालूम होता है कि उन्होंने काफी समझदारीसे काम लिया है। शरीफेकी तरह बना हुआ अबाबीलका घोंसला देखकर यही धारणा होती है जैसे यह किसी शिल्पीकी कृति हो। पर पशु-पक्षियोंमें बोध होनेपर भी उन्हें सारी प्रेरणा स्वभावसे मिलती है। इसीलिए उनकी दुनियामें एक प्रकारकी समानता होती है जो एक जातिके पशु-पक्षियोंके कार्य-कलापमें अक्षुण्ण रहती है। अर्थात् उनकी कृतियोंमें व्यक्तिगत विशेषता नहीं रहती वरन् वर्गगत या जातिगत विशेषता रहती है। मानव जातिमें मस्तिष्कके विकासके कारण स्वभाव बुद्धिके प्रभावसे दुर्बल हो जाता है इसलिए मानव-कृतियोंमें व्यक्तिगत विशेषता और विभिन्नता पायी जाती है। अतः कलाका आरम्भ वहाँसे होता है जहाँ मनुष्यकी कृतियोंमें बुद्धिके उपयोगसे विभिन्नता आने लगती है। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि कला मूलतः कृत्रिम है, जिसका मुख्य उपकरण बुद्धि है। इसलिए यद्यपि संगीतकी आदिम प्रेरणा भाव है फिर भी संगीत कला भाव-ही मात्र नहीं है। संगीत बुद्धिकी कारीगरीसे ही कलाके रूपमें खड़ा होता है। बुद्धिका उपयोग विवेक और विचारके रूपमें होता है। जब संगीत शुद्ध भावमय

होता है। आदिम मानव-संगीतमें भाव प्रबल होता है, पर बौद्धिक प्रभावसे उसमें विभिन्नता और व्यक्तित्व आने लगता है। कलाका यहींसे आरम्भ होता है। पर बुद्धि गौण होनेसे यह कलाका आदिम रूप है। जब मानव संस्कृतिके विकासके साथ साथ भाव बुद्धिसे अधिकाधिक नियन्त्रित होने लगता है तब कलाका सच्चा संस्कृत रूप प्रकट होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संगीत-कलाका सच्चा विकास सभी जातियोंमें, सभी देशोंमें, संगीत शास्त्रके निर्माणके द्वारा हुआ है। अतः शास्त्रीय संगीतको ही उच्च संगीत कला मानना उचित है।

जब संगीत-कलाका विकास बुद्धिके द्वारा हुआ तो निःसन्देह, इसके गुण-तत्त्व और सौन्दर्यको बुद्धिके द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है। और इस प्रकार संगीत कलाका लक्ष्य भी क्षणिक इन्द्रिय सुख नहीं बल्कि स्थायी बौद्धिक आनन्द है। इस उद्देश्यकी पूर्ति लक्ष्य लक्षण युक्त संगीत शास्त्रके अध्ययनसे ही हो सकती है। इतना ही नहीं, किसी भी देश या जातिकी या किसी भी युगकी संस्कृति और उसकी बौद्धिक दशाका मूल्य उसके संगीत शास्त्रकी विवेचनासे आँका जा सकता है। आज यदि पाश्चात्य देशका संगीतज्ञ हिन्दुस्तानी संगीतको पसन्द नहीं करता या एक हिन्दुस्तानीको पाश्चात्य संगीतमें कोई रस नहीं मिलता तो इसका यह कारण नहीं है कि हिन्दुस्तानी संगीत या पाश्चात्य संगीत-कलाकी दृष्टिसे हीन है। इसका मुख्य कारण यह है कि न तो पाश्चात्य संगीतज्ञ हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतिसे परिचित है और न हिन्दुस्तानियोंको पाश्चात्य पद्धतिका ज्ञान है।

इसीलिए किसी भी संगीत प्रणालीका मूल्य उसकी पद्धतिके अध्ययन, उसकी परम्परापर विचार और उसकी प्रचलित परिपाटीमें क्रियात्मक रुचिके द्वारा ही समझा जा सकता है। प्रत्येक संगीत-पद्धतिका भूत, वर्तमान और भविष्य है। इसलिए उसके इतिहास उसके व्यवहार और उसकी सम्भावनाओं पर सहानुभूतिके साथ विचार करके ही उसका महत्त्व समझा जा सकता है।

२४ प्राचीन स्वर-ग्राम

[क] वैदिक पद्धति

७७ भारतीय संगीतका आरम्भ वैदिक कालसे ही होता है। वैदिक स्वर सप्तकमें ही भरत ग्रामका विकास माना जाता है (अनुच्छेद ८२)। भरतकी पद्धतिसे ही कालान्तरमें दाक्षिणात्य और उत्तरीय पद्धतियोंका जन्म हुआ।

भरतकी पद्धति और प्राचीन यूनानी पद्धतिके बीच बहुत अंशोंमें समता पायी जाती है। सम्भव है कि प्राचीन कालमें इन दोनों पद्धतियोंके बीच आदान प्रदान हुआ हो। पर यह इतिहासज्ञोंकी विवेचनाका विषय है। मध्यकालमें उत्तरीय संगीत मुसलमानोंके सम्पर्कमें आया। पर मुसलमानी दरबारों और उस्तादोंने भारतीय संस्कारको नष्ट न होने दिया। आदि मुसलमान संगीताचार्य अमीर खुसरूने यह घोषणा कर दी कि वे तुर्क होकर भी हिन्दुस्तानी हैं और इसलिए उन्हें मिस्र या अरबसे कोई प्रेरणा नहीं मिली है। उनकी कला हिन्दुस्तानी ही है।[१] अमीर खुसरूका यह आदेश आज भी काम कर रहा है। उच्च कोटिके गायक और नायक, चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, संगीतका अनुशीलन आज भी भारतीय पद्धतिके अनुसार ही करते हैं। उनका आलाप, तान, सरगम आदि प्राचीन नियमोंके अनुसार ही होता है। मुसलमान ग्रन्थकारोंने भी भरत शार्ङ्गदेव की शैलीपर ही श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना आदिका विचार किया है।

---

१ Life and works of Amir Khusru' by Dr Mohomed Vahid Mirza The University of the Punjab 1935

अस्तु बाह्य सम्पर्कके होते हुए भी भारतीय संगीतका संस्कार अबाध रूपसे भारतीय ही रहा है। भारतीय संगीतकी गति विधि समझनेके लिए वैदिक कालसे ही इस संस्कारके प्रवाहपर विचार करना आवश्यक है।

७८ प्रायः सभी जातियों और सभी देशोंमें यह पाया जाता है कि ग्राममें स्वरोंकी संख्या पहले कम थी, जो क्रमशः बढ़ते बढ़ते सात हो गयी। ग्राम्य संगीत प्रायः सभी देशोंमें पाँच स्वरवाली 'ओडव' जातिके या एक ही चतुःसप्तक तक पाये जाते हैं। पहले अर्ध स्वरके अन्तरालका उपयोग नहीं होता था—एक स्वर या इससे बड़े अन्तराल ही काममें आते थे। चीन, स्काटलैण्ड और आयरलैण्डका मुख्य ग्राम्य गीत आज भी ओडवमें ही गाया जाता है जिसकी मूर्च्छना स र म प ध सं' है। यह आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिका दुर्गा राग है।

यूनान (ग्रीस) देशके आदि गायक आर्फियसके वाद्यमें चार ही तार थे जो 'स म प सं' में बंधे होते थे। बादको पञ्चम-संवाद' (अनुच्छेद ६५) का विधिसे 'र' के लिए एक तार और जोड़ा गया। फिर टर्पेण्डरने, इसी आधारपर, ग ध का समावेश किया और अन्तमें पायथागोरसने 'न' जोड़कर ग्रामको सम्पूर्ण कर लिया। चीन देशमें भी राजा स्माय्यूने सनातनी गायकोंके घोर विरोधके बीच चीनी ग्रामको ओडवसे सम्पूर्ण किया।

हिन्दुस्तानमें तो ग्राम्य गीत अधिकतः एक ही चतुःसप्तक तक अर्थात् स स म तक सीमित पाये जाते हैं जिनका आरम्भ तार स्थानसे होता है। इसी तरह ओडव राग भी प्रचलित है। हनुमन्मतके अनुसार राग रागिनियोंके भेदपर ध्यान देनेसे यही धारणा होती है कि रागोंकी प्रवृत्ति स्पष्टतः ओडव या षाडवकी ओर है। सम्भव है कि रागोंकी रचना रागिनियोंसे पहले हुई हो।

जो हो यह तो तथ्य-सा ही प्रतीत होता है कि सभी जगह ग्राम थोड़े स्वरोंसे बढ़ता हुआ सम्पूर्ण हुआ है।

वैदिक गान पहले चार स्वरों तक ही सीमित था। पीछे सामगानके

उत्तर कालमें सात स्वरोंका प्रयोग होने लगा। 'ऋग्वेदमें आडव या पाञ्चकका प्रसंग नहीं आता है पर 'आर्चिनो गायति गाथिनो गायति' 'सामिना गायति', ये पद मिलते हैं।' आर्चिक संगीत एक स्वरका, गाथिक दो स्वरोंका और सामिक तीन स्वरोंका होता था। आर्चिकका उपयोग ऋचाके उच्चारणमें, गाथिकका गाथा गानमें और सामिकका सामगानमें होता था। सामिकके स्वर तार स्थानके ग र स होते थे। तार गांधार कभी कभी कण रूपमें मध्यम लेकर चलता था जिससे स्वरोंकी संख्या तीनके बदले चार हो गयी। इस म ग र स वाले चतुस्वरके गानका नाम 'स्वरान्तर' हुआ।

७६ यजुर्वेदने वैदिक स्वरोंकी संज्ञा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित बताया है। उदात्तका अर्थ ऊँचा और अनुदात्तका नीचा है। स्वरितका तात्पर्य उस स्वरसे है जिसपर उदात्त और अनुदात्तका मेल हो और जो बार बार उच्चारित हो। सम्भवत स्वरितसे मतलब आधार स्वरसे है जिसे बोल चालकी भाषामें सुर कहते हैं। नारदने अपनी शिक्षामें इन यजुर्वेदीय संज्ञाओंसे लौकिक स्वरोंसे समता बाँधी है। वैदिक संज्ञा सम्भवत एक ही चतु संघात तक सीमित थी, पर नारदने निम्न चतु संघात जोड़कर अष्टक पूरा कर दिया। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि वैदिक गानकी मूर्च्छना अवरोही थी जो तार गान्धार या तार मध्यमसे चलती थी।

नारदके मतानुसार वैदिक और लौकिक स्वर संज्ञाओंकी तुलना नीचे दी जाती है—

म	ग	र	स	न	ध	प	[म]
स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	[स्वरित]

इसे आधुनिक आरोही मूर्च्छनामें इस प्रकार प्रकट करेंगे—

पूर्वांग				उत्तरांग			
सा	र	ग	म	प	ध	न	सां
स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित	स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित

अस्तु बाह्य सम्पर्कके होते हुए भी भारतीय संगीतका संस्कार अबाध रूपसे भारतीय ही रहा है। भारतीय संगीतकी गति विधि समझनेके लिए वस्तुतः कालसे ही इस संस्कारके प्रवाहपर विचार करना आवश्यक है।

७८ प्रायः सभी जातियों और सभी देशोंमें यह पाया जाता है कि *ग्राममें स्वरोंकी संख्या पहले कम थी, जो क्रमशः बढ़ते बढ़ते सात हो गयी।* ग्राम्य संगीत प्रायः सभी देशोंमें पाँच स्वरवाली 'औडव' जातिके या एक ही चतुःसप्तक पाये जाते हैं। पहले अर्ध स्वरके अंतरालका उपयोग नहीं होता था—एक स्वर या इससे बड़े अंतराल ही काममें आते थे। चीन, स्काटलैण्ड और आयर्लैण्डका मुख्य ग्राम्य गीत आज भी औडवमें ही गाया जाता है जिसकी मूर्च्छना स र म प ध म है। यह आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिकी दुर्गा राग है।

यूनान (ग्रीस) देशके आदि गायक आर्फियसके वाद्यमें चार ही तार थे जो 'स म प स' में बंधे होते थे। बादको 'पञ्चम-संवाद' (अनुच्छेद ६५) की विधिसे 'र' के लिए एक तार और जोड़ा गया। फिर टर्पेण्डरने, इसी न्यायपर, ग ध का समावेश किया और अन्तमें पायथागोरसने नि जोड़कर ग्रामको सम्पूर्ण कर लिया। चीन देशमें भी राजा त्साइयून सनातनी गायकोंके घोर विरोधके बीच चीनी ग्रामको ओडवसे सम्पूर्ण किया।

हिन्दुस्तानमें तो ग्राम्य गीत अधिकतर एक ही चतुःसप्तक तक अर्थात् *स से म तक सीमित पाये जाते हैं जिनका आरम्भ तार स्थानसे होता है।* इसी तरह औडव राग भी प्रचलित हैं। हनुमन्मतके अनुसार राग रागिनियोंके भेदपर ध्यान देनेसे यही धारणा होती है कि रागोंकी प्रवृत्ति स्पष्ट औडव या षाडवकी ओर है। सम्भव है कि रागोंकी रचना रागिनियोंसे पहले हुई थी।

जो हो, यह तो तथ्य-सा ही प्रतीत होता है कि सभी जगह ग्राम षाड स्वरोंसे बढ़ता हुआ सम्पूर्ण हुआ है।

वैदिक गान पहले चार स्वरों तक ही सीमित था। पीछे सामगानके

उत्तर कालमें सात स्वराका प्रयाग होने लगा। "ऋग्वदम ओडव या पाडवका प्रसग नही आना ह पर 'आर्चिनो गायति गाथिनो गायति' सामिना गायन्ति, य पद मिलन ह।' आर्चिक सगीत एक स्वरका, गाथिक दा स्वराका और सामिक तीन स्वराका हाता था। आर्चिकका उपयाग ऋचाके उच्चारणम, गाथिकका गाथा गानम और सामिकका सामगानमें हाता था। सामिक स्वर तार स्थानके ग र स हाते थे। तार गा धार कभी कभी कण रूपमें मध्यम स्वर चलता था जिससे स्वराकी सख्या तीनके बदल चार हो गयी। इस म ग र स वाल चतु स्वरक गानका नाम 'स्वरान्तर' हुआ।

७६ यजुर्वेदने वैदिक स्वराकी सज्ञा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित बनाया ह। उदात्तका अथ ऊँचा और अनुदात्तका नीचा ह। स्वरितका तात्पर्य उस स्वरस ह जिसपर उदात्त और अनुदात्तका मेल हो और जो बार बार उच्चारित हो। सम्भवत स्वरितस मतलब आधार स्वरसे ह जिसे बाल चालकी भाषामें सुर कहते ह। नारदने अपनी शिक्षामें इन यजुर्वेदीय सज्ञाओकी लौकिक स्वरासे समता बाँधी ह। वदिक सज्ञा सम्भवत एक ही चतु सघात तक सीमित थी पर नारदने निम्न चतु सघात जोडकर अष्टक पूरा कर लिया। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक ह कि वदिक गानकी मूर्च्छना अवरोही थी जो तार गान्धार या तार मध्यमसे चलती थी।

नारदके मतानुसार वैदिक और लौकिक स्वर सज्ञाओकी तुलना नीचे दी जाती ह—

म	ग	र	स	न	ध	प	[म]
स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	[स्वरित]

इसे आधुनिक आरोही मूर्च्छनामें इस प्रकार प्रकट करेंगे—

पूर्वांग				उत्तरांग			
स	र	ग	म	प	ध	न	स
स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित	स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित

अस्तु बाह्य सम्पर्क होते हुए भी भारतीय संगीतका संस्कार अबाध रूपसे भारतीय ही रहा है। भारतीय संगीतकी गति विधि समझनेके लिए वैदिक कालसे ही इस संस्कारके प्रवाहपर विचार करना आवश्यक है।

७८ प्रायः सभी जातियों और सभी देशोंमें यह पाया जाता है कि ग्राममें स्वरोंकी संख्या पहले कम थी, जो क्रमशः बढ़ते बढ़ते सात हो गयी। ग्राम्य संगीत प्रायः सभी देशोंमें पाँच स्वरवाली 'ओडव' जातिके या एक ही चतु सप्तकके पाये जाते हैं। पहले अर्ध स्वरके अंतरालका उपयोग नहीं होता था—एक स्वर या इससे बड़े अंतराल ही काममें आते थे। चीन, स्काटलैण्ड और आयर्लैण्डके मुख्य ग्राम्य गीत आज भी ओडवमें ही गाया जाता है जिसकी मूर्च्छना स रे म प ध स' है। यह आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिका दुर्गा राग है।

यूनान (ग्रीस) देशके आदि गायक आर्फियसके वाद्यमें चार ही तार थे जो स म प स' में बंधे होते थे। बादको पञ्चम-संवाद (अनुच्छेद ६५) की विधिसे 'रे' के लिए एक तार और जोड़ा गया। फिर टर्पेण्डरस, इसी वाद्यपर ग ध का समावेश किया और अंतमें पायथागोरसने 'नि' जोड़कर ग्रामको सम्पूर्ण कर दिया। चीन देशमें भी राजा स्सायूने सानातनी गायकोंके चार विरोधके बीच चीनी ग्रामको ओडवसे सम्पूर्ण किया।

हिन्दुस्तानमें तो ग्राम्य गीत अधिकतः एक ही चतु सप्तक तक अर्थात् स से म तक सीमित पाये जाते हैं जिनका आरम्भ तार स्थानसे होता है। इसी तरह ओडव राग भी प्रचलित है। हनुमन्मतके अनुसार राग रागिनियोंके भेदपर ध्यान देनेसे यही धारणा होती है कि रागोंकी प्रवृत्ति स्पष्टतः ओडव या षाडवकी ओर है। सम्भव है कि रागोंकी रचना रागिनियोंसे पहले हुई हो।

जो हो, यह तो तथ्य-सा ही प्रतीत होता है कि सभी जगह ग्राम थोड़े स्वरोंसे बढ़ता हुआ सम्पूर्ण हुआ है।

वैदिक गान पहले चार स्वरों तक ही सीमित था। पीछे सामगानमें

उत्तर कालमें सात स्वरोंका प्रयोग होने लगा। 'ऋग्वेदमें ओडव या षाडवका प्रसंग नहीं आता है पर 'आर्चिनो गार्यति' गाथिनो गार्यति' सामिनो गार्यति', ये पद मिलते हैं। आर्चिक संगीत एक स्वरका, गाथिक दो स्वरोंका और सामिक तीन स्वरोंका होता था। आर्चिकका उपयोग ऋचाके उच्चारणमें, गाथिकका गाथा गानमें और सामिकका सामगानमें होता था। सामिकके स्वर तार स्थानके म र स होते थे। तार गा धार कभी कभी क्षण रूपमें मध्यम लेकर चलता था जिससे स्वरोंकी संख्या तानके बदले चार हो गयी। इस म ग र स वाले चतुःस्वरक गानका नाम 'स्वरान्तर' हुआ।

७६ यजुर्वेदने वैदिक स्वरोंकी संज्ञा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित बनायी है। उदात्तका अर्थ ऊंचा और अनुदात्तका नीचा है। स्वरितका तात्पर्य उस स्वरसे है जिसपर उदात्त और अनुदात्तका मेल हो और जो तात्पर्य उस स्वरसे है जिसपर उदात्त और अनुदात्तका मेल हो और जा बार बार उच्चारित हो। सम्भवतः स्वरितसे मतलब आधार स्वरसे है जिसे बार बार उच्चारित हो। सम्भवतः स्वरितसे मतलब आधार स्वरसे है जिम बोल चालकी भाषामें सुर कहते हैं। नारदने अपनी शिक्षामें इन यजुर्वेदीय संज्ञाओंकी लौकिक स्वरोंसे समता बतायी है। वैदिक संज्ञा सम्भवतः एक ही चतुःसंघात तक सीमित थी, पर नारदने निम्न चतुःसंघात जोडकर अष्टक पूरा कर दिया। यहां यह भी बता देना आवश्यक है कि वैदिक गानकी मूर्च्छना अवरोही थी जो तार गान्धार या तार मध्यमसे चलती थी। नारदके मतानुसार वैदिक और लौकिक स्वर संज्ञाओंकी तुलना नीचे दी जाती है—

म	ग	र	स	न	ध	प	[म]
स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	[स्वरित]

इसे आधुनिक आरोही मूर्च्छनामें इस प्रकार प्रकट करेंगे—

पूर्वांग				उत्तरांग			
स	र	ग	म	प	ध	न	॥
स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित	स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित

अस्तु बाह्य सम्पर्क होते हुए भी भारतीय संगीतका संस्कार अबाध रूपसे भारतीय ही रहा है। भारतीय संगीतकी गति विधि समझनेके लिए वैदिक कालसे ही इस संस्कारके प्रवाहपर विचार करना आवश्यक है।

७८ प्राय सभी जातियों और सभी देशोंमें यह पाया जाता है कि ग्राममें स्वरोंकी संख्या पहले कम थी, जो क्रमश बढ़ते बढ़ते सात हो गयी। ग्राम्य संगीत प्राय सभी देशोंमें पाँच स्वरवाली 'ओडव' जातिके या एक ही चतु सप्तकके पाये जाते हैं। पहले अर्ध स्वरके अन्तरालका उपयोग नहीं होता था—पूर्ण स्वर या इससे बड़े अन्तराल ही काममें आते थे। चीन, स्काटलैण्ड और आयर्लैण्डका मुख्य ग्राम्य गीत आज भी ओडवमें ही गाया जाता है जिसकी मूर्च्छना स रे म प ध स' है। यह आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिका दुर्गा राग है।

यूनान (ग्रीस) देशके आदि गायक आर्फियसके वाद्यमें चार ही तार थे जो स म प स' में बँधे होते थे। बादको 'पञ्चम-संवाद' (अनुच्छेद ६५) का विधिस 'रे' के लिए एक तार और जोड़ा गया। फिर टर्पेण्डरने, इसी वाद्यपर ग ध का समावेश किया और अन्तमें पायथागोरसने 'नि' जोड़कर ग्रामको सम्पूर्ण कर लिया। चीन देशमें भी राजा स्थाम्यून सानातनी गायकोंने घोर विरोधके बीच चीनी ग्रामको ओडवसे सम्पूर्ण किया।

हिन्दुस्तानमें तो ग्राम्य गीत अधिकतर एक ही चतु सप्तक तक अर्थात् स से म तक सीमित पाये जाते हैं जिनका आरम्भ तार स्थानसे होता है। इसी तरह ओडव राग भी प्रचलित हैं। हनुमतमतके अनुसार राग रागिनियों के भेदपर ध्यान देनेसे यही धारणा होती है कि रागोंकी प्रवृत्ति स्पष्टत ओडव या षाडवकी ओर है। सम्भव है कि रागोंकी रचना रागिनियोंसे पहले हुई हो।

जो हो यह तो तथ्य-सा ही प्रतीत होता है कि सभी जगह ग्राम थोड़े स्वरोंसे बढ़ता हुआ सम्पूर्ण हुआ है।

वैदिक गान पहले चार स्वरों तक ही सीमित था। पीछे सामगानमें

उत्तर कालमें सात स्वरोंका प्रयोग होने लगा। 'ऋग्वेदमें आर्चिक या गाथिकका प्रयोग नहीं आता है पर 'आर्चिना गायन्ति गाथिनो गायन्ति' 'सामिना गायन्ति' ये पद मिलते हैं। आर्चिक समान एक स्वरका, गाथिक दो स्वरोंका और सामिक तीन स्वरोंका होता था। आर्चिकका उपयोग ऋचाके उच्चारणमें, गाथिकका गाथा गानमें और सामिकका सामगानमें होता था। सामिकके स्वर तार स्थानके ग रे स माने थे। तार गान्धार कभी-कभी कण रूपमें मध्यम लेकर चलता था जिससे स्वरोंकी संख्या तीनके बदले चार हो गयी। इस म ग रे स चार चतुःस्वरके गानका नाम 'स्वरान्तर' हुआ।

७६ यजुर्वेदने वैदिक स्वरोंका नाम उदात्त, अनुदात्त और स्वरित बताया है। उदात्तका अर्थ ऊँचा और अनुदात्तका नीचा है। स्वरितका तात्पर्य उस स्वरसे है जिसपर उदात्त और अनुदात्तका मेल हो और जो बार-बार उच्चारित हो। सम्भवतः स्वरितसे मतलब आधार स्वरसे है जिसे आज चालकी भाषामें सुर कहते हैं। नारदने अपनी शिक्षामें इन यजुर्वेदीय प्रणालीकी लौकिक स्वरोंसे समता बतायी है। वैदिक गान सम्भवतः एक ही चतुःसप्तक तक सीमित थी, पर नारदने निम्न चतुःसप्तक जोड़कर अष्टक पूरा कर दिया। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि वैदिक गानकी मूर्च्छना अवरोही थी जो तार गान्धार या तार मध्यमसे चलती थी।

नारदके मतानुसार वैदिक और लौकिक स्वर-प्रणालियोंकी तुलना नीचे दी जाती है—

म	ग	रे	स	नि	ध	प	[म]
स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	[स्वरित]

इसे आधुनिक आरोही मूर्च्छनामें इस प्रकार प्रकट करेंगे—

पूर्वांग				उत्तरांग			
स	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित	स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित

अस्तु बाह्य सम्पर्कके होते हुए भी भारतीय संगीतका संस्कार अबाध रूपसे भारतीय ही रहा है। भारतीय संगीतकी गति विधि समझनेके लिए वैदिक कालसे ही इस संस्कारके प्रवाहपर विचार करना आवश्यक है।

७८ प्रायः सभी जातियों और सभी देशोंमें यह पाया जाता है कि ग्राममें स्वरोंकी संख्या पहले कम थी, जो क्रमशः बढ़ते बढ़ते सात हो गयी। ग्राम्य संगीत प्रायः सभी देशोंमें पांच स्वरवाली 'ओडव' जातिके या एक ही चतुःसंघातके पाये जाते हैं। पहले अर्ध स्वरके अन्तरालका उपयोग नहीं होता था—एक स्वर या इससे बड़े अन्तराल ही काममें आते थे। चीन, स्काटलैण्ड और आयर्लैण्डके मुख्य ग्राम्य गीत आज भी ओडवमें ही गाये जाते हैं जिसकी मूर्च्छना 'स रे म प ध स' है। यह आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिका दुर्गा राग है।

यूनान (ग्रीस) देशके आदि गायक आर्फियसके वाद्यमें चार ही तार थे जो 'स म प स' में बँधे होते थे। बादको 'पञ्चम संवाद' (अनुच्छेद ६५) की विधिसे 'रे' के लिए एक तार और जोड़ा गया। फिर टर्पेण्डरने, इसी आधारपर ग ध का समावेश किया और अन्तमें पायथागोरसने 'नि' जोड़कर ग्रामको सम्पूर्ण कर दिया। चीन देशमें भी राजा स्साप्यूने सनातनी गायकोंके घोर विरोधके बीच चीनी ग्रामको ओडवसे सम्पूर्ण किया।

हिन्दुस्तानमें तो ग्राम्य गीत अधिकतर एक ही चतुःसंघात तक अर्थात् स रे म तक सीमित पाये जाते हैं जिनका आरम्भ तार स्थानसे होता है। इसी तरह ओडव राग भी प्रचलित हैं। हनुमन्मतके अनुसार राग रागिनियोंके भेदपर ध्यान देनेसे यही धारणा होती है कि रागोंकी प्रवृत्ति स्पष्टतः ओडव या षाडवकी ओर है। सम्भव है कि रागोंकी रचना रागिनियोंसे पहले हुई हो।

जो हो, यह तो तथ्य-सा ही प्रतीत होता है कि सभी जगह ग्राम थोड़े स्वरोंसे बढ़ता हुआ सम्पूर्ण हुआ है।

वैदिक गान पहले चार स्वरों तक ही सीमित था। पीछे सामगानमें

उत्तर कालमें सात स्वरोंका प्रयोग होने लगा। 'ऋग्वेदमें ओडव या पाञ्चका प्रसंग कहा आता है पर 'आर्चिना गायन्ति गाथिना गायन्ति सामिना गायन्ति', ये पद भिन्न हैं। आर्चिक संगीत एक स्वरका, गाथिक दो स्वरोंका और सामिक तीन स्वरोंका होता था। आर्चिकका उपयोग ऋचाके उच्चारणमें, गाथिकका गाथा गानमें और सामिकका सामगानमें होता था। सामिकके स्वर तार स्थानके ग र स होते थे। तार गान्धार कभी कभी कण रूपमें मन्द्रम लगकर चलता था जिससे स्वरोंकी संख्या तीनके बदले चार हो गयी। इस म ग र स वाले चतुःस्वरक गानका नाम 'स्वरान्तर' हुआ।

७६ यजुर्वेदने वैदिक स्वरोंको संज्ञा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित बनाया है। उदात्तका अर्थ ऊँचा और अनुदात्तका नीचा है। स्वरितका तात्पर्य उस स्वरसे है जिसपर उदात्त और अनुदात्तका मेल हो और जो बार बार उच्चारित हो। सम्भवतः स्वरितसे मतलब आधार स्वरसे है जिस बोलचालकी भाषामें सुर कहते हैं। नारदने अपनी शिक्षामें इन यजुर्वेदीय संज्ञाओंकी लौकिक स्वरोंसे समता बाँधी है। वैदिक संज्ञा सम्भवतः एक ही चतु सप्तक तक सीमित थी, पर नारदने निम्न चतु संघात जोडकर अष्टक पूरा कर दिया। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि वैदिक गानकी मूर्च्छना अवरोही थी जो तार गान्धार या तार मध्यमसे चलती थी।

नारदके मतानुसार वैदिक और लौकिक स्वर संज्ञाओंकी तुलना नीचे दी जाती है—

म	ग	र	स	न	ध	प	[म]
स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	[स्वरित]

इसे आधुनिक आरोही मूर्च्छनामें इस प्रकार प्रकट करेंगे—

पूर्वांग				उत्तरांग			
स	र	ग	म	प	ध	नि	स
स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित	स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित

अपनी शिक्षामें पाणिनिने भी इसी तुलनाकी पुष्टि नीचे दिये हुए श्लोकसे की है —

> उदात्ते निषादगान्धारौ अनुदात्त ऋषभधैवतौ ।
> स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमा ॥'[1]

सामवेदके कालमें वैदिक गान पूरे सात स्वरोंमें गाया जाने लगा।[2] स्वरोंकी सामवेदीय संज्ञा, जो ऊपरकी संज्ञासे भिन्न है, आगे दी जाती है—

क्रुष्ट	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	मन्द्र	अतिस्वर
म	ग	र	स	न	ध	प

नारद शिक्षामें ध और न का स्थान उल्टा है। जैसे—

> 'यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमस्वरः ।
> यो द्वितीयः स गान्धारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः ॥
> चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पञ्चमो धैवतो भवेत् ।
> षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः ॥'

इस व्यतिक्रमका कोई कारण नहीं जान पड़ता। पर प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी ऐसा व्यतिक्रम पाया जाता है। शायद यह सभी प्राचीन पद्धतियोंकी विशेषता हो।

सायणाचार्यका मत नारदके मतसे भिन्न है। उनके हिसाबसे स्वरोंकी व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए—

---

१ मध्यमसप्तकमें षड्ज, मध्यम, पञ्चम और तार षड्जसे बँधा हुआ है। ये स्वर अचल हैं जिन्हें अरिस्टॉटलने 'संवादका शरीर' और यजुर्वेदने 'स्वरित' कहा है।

२ कहा जाता है कि तुम्बुरुने स्वरोंकी संख्या बढ़ाकर, सामगानके लिए सात स्वर निर्धारित किये हैं।

क्रुष्ट	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	मन्द्र	अतिस्वर
न	ध	प	म	ग	र	स

उनका वाक्य यह है—

"लौकिके ये निषादादयः सप्तस्वराः प्रसिद्धाः त एव साम्नि क्रुष्टादयः सप्तस्वरा भवन्ति । तद्यथा—यो निषादः स क्रुष्टः, धवत प्रथमः, पञ्चमः द्वितीयः, मध्यमस्तृतीयः, गान्धारश्चतुर्थः, ऋषभो मन्द्रः, षड्जोऽतिस्वार्य इति ॥"

८० यहां स्वरितके अर्थपर विचार करना आवश्यक है । व्याकरणमें स्वरितकी परिभाषा 'समाहारः स्वरितः' दी गयी है जिसका अर्थ है—'उदात्त और अनुदात्तका जहां एकत्र समाहार या मेल हो वही स्वरित है ।' इस परिभाषाके अनुसार स्वरितका स्थान अनुदात्त और उदात्तके बीच होना चाहिए । किन्तु नारदने उदात्त अनुदात्त और स्वरितको क्रमशः गान्धार, ऋषभ और षड्ज माना है । यहां षड्जमें समाहारका भाव नहीं आता । इसलिए उदात्त और अनुदात्तके स्थानका स्वरितकी परिभाषाके अनुकूल निर्णय करना आवश्यक है ।

यदि वैदिक स्वरलिपि एक एक स्वरके अन्तरसे 'न् स र स' मानी जाये जहां न अनुदात्त और र उदात्त हो, तो स्वरितका समाहारत्व और बहुत्व अर्थात् बार-बार उच्चरित होनेका गुण, दोनों सिद्ध हो जाते हैं । इसी प्रकार प को स्वरित माननेपर 'म प ध प' समुदाय बनता है । इस स्वर-समुदायके साथ-साथ अर्ध स्वरका गमक भी कभी कभी लिया जाता है । इस हिसाबसे वैदिक स्वर ग्राम ऐसा बनेगा—

अनु०	स्व०	उ०	ग०
न्→	स⇄	र⇄	ग
१ स्वर	१ स्वर	½ स्वर	

अनु०	स्व०	उ०	ग०
म→	प⇄	ध⇄	न
१ स्वर	१ स्वर	½ स्वर	

एक पूरा स्वर साधारणतः ½ का होता है पर 'स र स' या 'प ध प'

प्रयोगमें एक श्रुति उतरकर $\frac{१०}{९}$ रह जाता है (अनुच्छेद १४१)। अतएव उपर्युक्त ग्रामका मान सहित ऐसा रूप होगा—

नि̣		स		रे		ग		म		प		ध		नि
$\frac{८}{९}$		१		$\frac{१०}{९}$		$\frac{३२}{२७}$		$\frac{४}{३}$		$\frac{३}{२}$		$\frac{५}{३}$		$\frac{१६}{९}$
	$\frac{९}{८}$		$\frac{१०}{९}$		$\frac{१६}{१५}$		$\frac{९}{८}$		$\frac{९}{८}$		$\frac{१०}{९}$		$\frac{१६}{१५}$	

यह शुद्ध भरत ग्राम है (अनुच्छेद १०१)। वैदिक स्वर ग्रामका यह प्रबन्ध यदि ठीक माना जाय तो भरतकी वैदिक परम्परा सिद्ध होती है। सायण भी (अनुच्छेद ७९) सम्भवतः इसी विचारको मानते थे, क्योंकि उन्होंने न को क्रुष्ट (गमक) और ध को प्रथमकी संज्ञा दी है। वैदिक अवरोही क्रममें इस स्वर ग्रामका भी धैवत ही प्रथम है और न गमकमें आता है।

८९ कुछ विद्वानोंका मत है कि सामवेदके स्वरोंको ही भरत और शार्ङ्गदेवने अपने षड्ज ग्रामके शुद्ध स्वर माने हैं। इतना ही नहीं, आज भी सामवेद प्राचीन पद्धतिसे ही अर्थात भरतके स्वरोंमें ही गाया जाता है। इस प्रसंगमें श्रीनिवास आय्यंगारका मत विचारणीय है जो उन्होंने गोविन्दकृत संग्रहचूडामणिकी भूमिकामें प्रकट किया है। वे लिखते हैं—

"संगीतके पहले शास्त्रकार भरत और उनके बादके शास्त्रकार शार्ङ्गदेव, इन दोनोंने सामवेदके स्वरोंको ही शुद्ध स्वर माना है। परम्परा प्राप्त सामवेद आज भी उसी रूपमें प्रचलित है जिस रूपमें वह आरम्भमें गाया जाता था। इस वेदके उच्चारणपर ध्यानपूर्वक विचार करनेसे पता चलेगा कि इसके स्वर ग र स न ध प, जो तार मध्य व्यापी हैं और सामवेदियोंकी पद्धतिसे जिनका पर्याय प्रथम, द्वितीय तृतीय चतुर्थ मन्द्र और अतिस्वर है अवरोही क्रममें हैं। कभी-कभी जब म का उच्चारण होता है तो म, जो सामवेदियोंका क्रुष्ट है गमकके रूपमें आता है।

मध्य स्थानमें लानेपर सात स्वर ये हैं—

स र ग म प ध नि

तनीय द्वितीय प्रथम क्रुष्ट अतिस्वर मन्द्र चतुर्थ

१ १०/९ ३२/२७ ४/३ ३/२ ५/३ १६/९ ''

सगीत रत्नाकरके प्रणेता शार्ङ्गदेवने सगीतके, मार्ग और देशी ये दो भेद बनाये हैं। इनमें,से मार्गका ब्रह्मा आदि देवोंने निरूपण किया और भरत आदिने इसका प्रयोग किया। देश-देशमें जो लोगोंकी रुचिके अनुसार आनन्द देनेवाला है वह सगीत देशी है (परिशिष्ट २ ग १)। शार्ङ्गदेवने देशी सगीतके नियमोंको ही निर्धारित किया है। इन्हीं भेदोंको उन्होंने आगे चलकर 'गान्धर्व सगीत' और 'गान सगीत'के नामसे बताया है।

रामस्वामीने रामामात्य कृत स्वरमेल कलानिधिकी भूमिकामें इस मार्ग और देशी भेदपर विचार किया है। उनका मत है कि मार्गसगीत वैदिक सगीतका द्योतक है जिसकी सीमा चतु स्वरक स्वरान्तर तक है। पचस्वरक औडवसे देशी सगीतका आरम्भ होता है। सभी शास्त्रकारोंने सगीतकी औडव, षाडव, सम्पूर्ण ये तीन ही जातियां मानी हैं। रामामात्यने स्पष्टत ये भेद देशी सगीतमें ही बनाये हैं (परिशिष्ट २ घ १)। रामस्वामीके मतानुसार 'आर्चिक' 'गाथिक' 'सामिक' और 'स्वरान्तर' ये जातियां तो मार्ग या वैदिक सगीतमें प्रयुक्त होती हैं, और औडव, षाडव और सम्पूर्ण देशी सगीतमें[1] पीछे सामगानमें भी सात स्वरोंका प्रयोग होने लगा।

---

१ यह मत ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि शार्ङ्गदेवने मार्गके प्रसगमें भरतका भी नाम लिया है। शार्ङ्गदेवने मार्ग और गान्धर्वको एक ही वस्तु माना है। पर भरतने अपने सगीतको गान्धर्व बताया है। ऐसा जान पड़ता है कि मार्गसे तात्पर्य उस प्राचीन अप्रचलित सगीत पद्धतिसे है जिसका अस्तित्व केवल नियमोंमें ही पाया जाता है। ध्यान रत्नाकरकी पद्धति भी मार्गमें ही मानी जायगी।

पर यह चाहे तो संगीतके विकास क्रममें संधिको दर्शाता चाहता है या वैदिक संगीतपर देशी संगीतका प्रभाव है।

ऊपरके विवरणसे यह स्पष्ट है कि भारतीय संगीतका क्षेत्र क्रमशः एक स्वरसे लेकर सात स्वरों तक बढ़ता गया। इस विकास क्रमका उपक्रम वैदिक संगीतमें ही पाया जाता है। इन्हीं बातोंको नीचे सारिणीके द्वारा समाहार रूपमें बताया गया है।

सारिणी ११

जाति	स्वर-संख्या	प्रयोग	व्याख्या	सरगम
आर्चिक	१	वैदिक	ऋचा या मन्त्रोच्चार	
गाथिक	२		गाथा पाठ	ग र स
सामिक	३		सामगान	म ग र स
स्वरान्तर	४	लौकिक		
ओडव	५			स र ग म प ध न
षाडव	६			
सम्पूर्ण	७			

८२ वैदिक संगीतका विधान ऋग्वेद प्रातिशाख्यमें पाया जाता है। नारदी, माण्डूकी, याज्ञवल्क्य आदि शिक्षा ग्रन्थोंमें भी वैदिक संगीतके नियमोंका ही प्रतिपादन है। पर इन शिक्षा ग्रन्थोंमें लौकिक संगीतकी संज्ञाओं और

मध्य स्थानमें तारपर सात स्वर ये हैं—

स र ग म प ध नि

तृतीय द्वितीय प्रथम कृष्ट अतिस्वर मन्द्र चतुर्थ

१ १०/९ ३२/२७ ४/३ ३/२ ५/३ १६/९ "

संगीत रत्नाकरके प्रणेता शार्ङ्गदेवने संगीतके, मार्ग और देशी ये दो भेद बताये हैं। इनमेंसे मार्गका ब्रह्मा आदि देवोंने निरूपण किया और भरत आदिने इसका प्रयोग किया। देश देशमें जो लोगोंकी रुचिके अनुसार आनन्द देनेवाला है वह संगीत देशी है (परिशिष्ट २ व १)। शार्ङ्गदेवने देशी संगीतके नियमोंको ही निर्धारित किया है। इन्हीं भेदोंको उन्होंने आगे चलकर 'गान्धर्व संगीत' और 'गान संगीत'के नामसे बताया है।

रामस्वामीने रामामात्य कृत स्वरमेल कलानिधिकी भूमिकामें इस मार्ग और देशी भेदपर विचार किया है। उनका मत है कि मार्गसंगीत वैदिक संगीतका द्योतक है जिसकी सीमा चतुःस्वरके स्वरान्तर तक है। पंचस्वरके औडव दशासे संगीतका आरम्भ होता है। सभी शास्त्रकारोंने संगीतकी औडव, षाडव, सम्पूर्ण ये तीन ही जातियां मानी हैं। रामामात्यने स्पष्टतः ये भेद देशी संगीतमें ही बताये हैं (परिशिष्ट २ व १)। रामस्वामीके मतानुसार 'आर्चिक', 'गाथिक' 'सामिक' और 'स्वरान्तर' ये जातियां तो मार्ग या वैदिक संगीतमें प्रयुक्त होती हैं, और औडव, षाडव और सम्पूर्ण देशी संगीतमें पीछे सामगानमें भी सात स्वरोंका प्रयोग होने लगा।

---

१ यह मत ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि शार्ङ्गदेवने मार्गके प्रसंगमें भरतका भी नाम लिया है। शार्ङ्गदेवने मार्ग और गान्धर्वका एक ही अर्थ माना है। पर भरतने अपने संगीतको गान्धर्व बताया है। ऐसा जान पड़ता है कि मार्गसे तात्पर्य उस प्राचीन अप्रचलित संगीत पद्धतिसे है जिसका अस्तित्व केवल नियमोंमें ही पाया जाता है। आज रत्नाकरकी पद्धति भी मार्गमें ही मानी जायगी।

पर यह चाहे तो संगीतके विकास क्रममें सचिका दशाका द्योतक है या वदिक संगीतपर देशी संगीतका प्रभाव ■ ।

उपरके विवरणसे यह स्पष्ट ह कि भारतीय संगीतका क्षेत्र क्रमश एक स्वरसे लेकर सात स्वरा तक बढता गया । इस विकास क्रमका उपक्रम वदिक संगीतमें ही पाया जाता ह । इन्ही बातोको नीचे सारिणीके द्वारा समाहार रूपम बताया गया ह ।

सारिणी ११

जाति	स्वर सख्या	प्रयोग	व्याख्या	सरगम
आर्चिक	१	वदिक	ऋचा या मन्त्रोच्चार	
गाथिक	२		गाथा पाठ	
सामिक	३		सामगान	ग र स
स्वरान्तर	४	लौकिक		म ग र स
औडव	५			
षाडव	६			
सम्पूर्ण	७			स र ग म प ध न

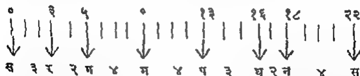
८२ : वदिक संगीतका विधान ऋग्वद प्रातिशाख्यमें पाया जाता ह । नारदी, माण्डूकी, याज्ञवल्क्य आदि शिक्षा ग्रन्थोंमें भी वदिक संगीतके नियमोंका ही प्रतिपादन ह । पर इन शिक्षा ग्रन्थोंमें लौकिक संगीतकी संज्ञाओं और

नियमाके द्वारा ही वदिक सगीतकी व्याख्या की गयी ह। इन शिक्षा-ग्रन्थोंकी विशेषता यह ह कि इनमें स्वरके स्थानाका निर्धारण जीव ज तुओके शब्दासे किया गया ह। (परिशिष्ट २ क) आगे चलकर मतङ्ग, शार्ङ्गदेव आदि शास्त्रकाराने श्रुति स्वरकी स्वतन्त्र व्याख्या करते हुए भी इन्हीकी परिपाटी पर जीव जन्तुओके स्वराका प्रसग दिया है।

[ख] भरत पद्धति

८३ या तो महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थोंमे सगीत और इसके अनेक नियमाकी चर्चा पायी जाती ह पर सगीत शास्त्रके आदि आचार्य भरत ही माने जाते ह। इनका लक्ष्य लौकिक सगीत था—शिक्षा ग्रन्थोंकी तरह वदिक सगीत नही। इन्होने संगीतपर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिखा ह। इनका सगीत शास्त्र सक्षिप्त रूपमे इनके नाटय शास्त्रका एक अङ्ग है।

भरतके मतानुसार षड्ज ऋषभ, गान्धार आदि सात स्वर ह। जिनमें २२ श्रुतियाका समावेश ह। षडज, मध्यम और पञ्चममे चार चार श्रुतिया, ऋषभ और धवतमें तीन तीन श्रुतिया और गान्धार और निषादमें दो दो श्रुतियाँ ह। स्वरकी तरह ही श्रुति भी दो ध्वनियाका अन्तराल ह जो स्वरसे बहुत छोटा ह। इसे अणुस्वर कह सकते हैं। कई श्रुतियाके मेलसे एक स्वर बनता ह। भरतकी श्रुतियाका क्या परिमाण ह इसपर अभी विचार न करके केवल श्रुतियाकी सख्याके आधारपर भरतका स्वर सस्थान नीचे दिया जाता ह—



भरतने स्वराका पारस्परिक सम्बन्ध चार प्रकारका माना ह—वादी, सवादी, अनुवादी और विवादी। किसी एक स्वरको यदि वादी मान लिया

जाये तो ९ या १३ श्रुतियोंके अंतरका स्वर इसका संवादी होगा, २ या २० श्रुतियोंके अन्तरका स्वर विवादी होगा और बाकी सारे स्वर इसके अनुवादी होंगे। जैसे, स का म और प संवादी हैं। वैसे ही र का ध संवादी है, ग विवादी है और बाकी स्वर अनुवादी हैं। यहाँ संवाद दो प्रकारका हुआ—एक पञ्चम—और दूसरा मध्यम-भाव। पञ्चम संवादका अंतराल १३ श्रुतियोंका और मध्यम भावका ९ श्रुतियोंका होता है। यह महत्वकी बात है कि भरतने वादी संवादीका व्यवहार स्वरोंके पारस्परिक सम्बन्धके ही अर्थमें किया है (परिशिष्ट २ ग १) अर्थात् ये स्वरके भेद बताये गये हैं। आधुनिक संगीतमें इसका व्यवहार रागोंमें होने लगा है और वादी अब उसी अर्थमें प्रयुक्त होता है जिस अर्थमें प्राचीन रागोंमें 'अंश' का प्रयोग होता था।

८४ भरतने दो ग्रामोंकी चर्चा की है जिनमें से एक तो षड्ज ग्राम है जो ऊपर दिया जा चुका है। दूसरा मध्यम ग्राम है जिसका स्वर-संस्थान यह है—



षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राममें भेद इतना ही है कि मध्यम ग्राममें पञ्चम एक श्रुति नीचे खिसका हुआ है। जहाँ षड्ज ग्राममें म प अन्तराल ४ श्रुतियोंका और प ध ३ श्रुतियोंका है वहाँ मध्यम ग्राममें म प ३ श्रुतियोंका और प ध ४ श्रुतियोंका है।

अर्थात्—

षड्ज ग्राम—म ४ प ३ ध।

मध्यम ग्राम—म ३ प ४ ध।

मध्यम ग्राममें पञ्चमके एक श्रुति विचलित हो जानेसे षड्ज ग्रामका स-प संवाद तो टूट जाता है पर र-प संवाद स्थापित हो जाता है जिसका अन्तर

अब ९ श्रुतियोंका है। अर्थात स और र दोनोंका मध्यम संवाद स्थापित हो जाता है। (परिशिष्ट २ ख २) मध्यम ग्रामका आरम्भ षडजसे नहीं, मध्यमसे होता है। स्वरोंका नाम बिना बदले हुए म से आरम्भ करनेपर म ग्रामका रूप ऐसा हो जाता है—

■ ३ ९ १३ १६ १८ २२

म ३ प ४ ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ म

[स ३ र ४ ग २ म ४ प ३ ध २ न ४ स]

इन दो ग्रामोंके नामकरणके विषयमें स्टेंडवेज आदि निरर्थक भ्रममें पड गये हैं। भरतने यह स्पष्ट कर दिया है कि पहले ग्रामका नाम षडज ग्राम 'संवादाधिक्य' के कारण पडा है, अर्थात सातों स्वरोंमें षडज ही ऐसा है जिसके म और प, दो संवादी हैं। मध्यम ग्राममें षडजकी यह विशेषता नष्ट हो जाती है। अब जब मध्यम ग्रामको मध्यमसे आरम्भ करते हैं तो मध्यम ही ऐसा स्वर रह जाता है जिसके दो संवादी, न और स हैं। इस लिए संवादाधिक्यके सिद्धान्तपर ही इस दूसरे ग्रामकी संज्ञा मध्यम ग्राम पडी है। तीसरे ग्रामकी संज्ञा गान्धार ग्राम भी इसी नियमके आधारपर है (अनुच्छेद ९१)।

८५ भरतकी पद्धतिमें दो ही विकृत स्वर हैं जिन्हें स्वर साधारण कहते हैं। जब गान्धार मध्यमकी दो श्रुतियाँ ले लेता है तब वह मध्यम साधारण होता है और इस गान्धारको 'अन्तर गान्धार' कहते हैं। इसी प्रकार षड्जकी दो श्रुतियाँ लेकर शुद्ध निषाद 'षड्ज साधारण होता है जिसे 'काकली निषाद' कहते हैं। पर इन अन्तर स्वरोंका प्रयोग अल्पमात्राम, केवल आरोहीमें होता है (परिशिष्ट २ ख ३)। तात्पर्य यह कि इन विकृत स्वरोंका भरतकी पद्धतिमें केवल 'प्रवेशक स्वर' के रूपमें उपयोग होता है। तान जब नीचेके स्वरोंको छोडकर किसी ठहरावके स्वरपर जाता है तो

इस स्वरसे दो श्रुति नीचेका स्वर छूकर जाता है। जैसे, सीधे 'प-स' न लेकर प न स' लिया जाता है। जहाँ बडे अन्तरालका लंघन होता है वहाँ यह क्रिया स्वाभाविक है। यहाँ 'न' का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। यह प से स में प्रवेश करनेका एक द्वार मात्र है इसीलिए ऐसे स्वरोंको 'प्रवेशक स्वर' कहते हैं। यह सदा स्थायी स्वर या स्वरितके साथ आता है।

प्रवेशक स्वरके प्रसंगमें हेमहोल्ज़का मत नीचे दिया जाता है—

' तीव्र निषादका षड्जके साथ एक विलक्षण सम्बन्ध पैदा हो गया है, जो आधुनिक संगीतमें प्रवेशक स्वर (लीडिंग् नोट) के नामसे व्यक्त किया जाता है। तीव्र निषादका तार षड्जसे अर्ध स्वरका अन्तर है जो ग्राममें सबसे छोटा अन्तराल है। तार षड्जसे इस निकटताके कारण तीव्र न का उच्चारण ग्रामके ऐसे स्वरसे जानेपर भी जिनका तीव्र न से कोई सम्बन्ध नहीं, बड़ी सरलता और स्पष्टतासे होता है। जैसे, म-न का लंघन कठिन है, क्योंकि इन स्वरोंमें कोई सम्बन्ध नहीं है पर जब गायक 'म-न स' तान लेता है तो वह 'म-स' की धारणा बाँधता है जो सुगमतासे सम्पन्न हो सके पर वह अपने स्वरको पहले इतना नहीं उठाता कि वह स पर पहुँच जाये और इस प्रकार रास्तेमें न का स्पर्श करता है। इसीलिए यह कहा जाता है कि 'न' के द्वारा स में प्रवेश होता है या न' स का प्रवेशक स्वर है।'' इसलिए सभी आधुनिक मूर्च्छनाओंमें—यहाँ भी, जहाँ न का आना उचित नहीं—टीप (स) तक पहुँचनेवाले आरोहो तानोंमें तीव्र न को प्रधानता दी गयी है।' आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीतमें भी यह देखा जाता है कि काफी, खम्माज आदि रागोंमें जहाँ कोमल न का प्रयोग होना चाहिए आरोहीमें तीव्र न आता है। ऐसे रागोंमें जिनमें दोनों गान्धार और दोनों निषाद हों नियमित रूपसे अवरोहीमें कोमल और आरोहीमें तीव्रका प्रयोग होता है। ऐसे रागोंमें तत्त्वतः आरोहमें निषाद और गान्धारका वर्ज्य मानना चाहिए। क्योंकि तीव्र न और तीव्र ग का प्रयोग तो स्वभावतः प्रवेशक रूपमें होना है।

अन्तर स्वराके प्रसगमे भरतके आदेशका यही तात्पय ह । ऊपरकी विवेचनासे भरतके इस नियमका औचित्य भी सिद्ध होता ह ।

८६ पड्जका प्रवेशक काकली न और मध्यमका प्रवशक अन्तर ग, उन दो ही विकृत स्वरोंकी कल्पनासे पडज और मध्यमका महत्त्व सिद्ध होता है। पडजका महत्त्व तो निर्विवाद ह क्योकि यह ■ य ६ स्वरोंका जनक है । पर भरतने मध्यमकी भी बडी महिमा बतायी ह । उन्होने इसे 'अविलोपी' माना ह, इसीलिए ओडव और षाडवमे और सभी स्वर लुप्त हो सकते है पर मध्यमका लोप कभी नही होता । इसका कारण यह है कि भरत सप्तकक माननेवाले थे, जो दो सयुक्त चतु सघातामे बनता ह । जसे,

स र ग म प ध न

पूर्वाङ्ग उत्तराङ्ग

इसम पूर्वाङ्ग या प्रथम चतु सघातके सभी स्वराके पञ्चम सवादी उत्तराङ्गम ह । केवल म का कोई पञ्चम सवादी नही ह जो दोना चतु सघाताका जोडता ह। यदि तार षड्जको जोडकर अष्टक बनाया जाय, जैसा कि प्रचलित प्रथा है, तो मध्यमका महत्त्व घट जाता है और पञ्चमको षड्जका महत्त्व मिल जाता ह । क्योकि अब अष्टक वियुक्त चतु सघातोस बनता ह जिसके उत्तराङ्गमें प का वही स्थान ह जो पूर्वाङ्गमें ■ का ह। जसे—

स र ग म प ध न स

पूर्वाङ्ग उत्तराङ्ग

अब ■ समेत पूर्वाङ्गके सभी स्वराका उत्तराङ्गमें पञ्चम सवादी मौजूद ह । भरत पद्धतिमें मध्यमका महत्त्व सगीतकी पूर्वावस्थाका द्योतक ह । जबतक कण्ठ सगीतकी प्रधानता रहती ह तबतक मध्यम ही प्रधान रहता ह । जब वाद्यका अधिकार बढता ह तब पञ्चम मुख्य हो जाता ह । क्योकि कण्ठसे म अधिक स्पष्ट, और सरलतासे, निकलता है, पर वाद्यमे पञ्चम सवाद अधिक स्पष्ट और पूर्ण होता ह ।

८७ विकृत स्वरोंके अभावमें संगीतका क्षेत्र दो ही ग्रामों तक सीमित हो जाता है। इसलिए इस अभावको दूर करनेके लिए भरतने 'मूर्च्छना' की व्यवस्था की है। मूर्च्छना किन्हीं सात स्वरोंके क्रमबद्ध उतार-चढ़ावको कहते हैं। एक ग्रामके किसी भी स्वरको आधार मानकर क्रमशः सात स्वर नीचे उतरनेसे एक मूर्च्छना बन जाती है। इस प्रकार एक ग्राममें ७ मूर्च्छनाएँ हो सकती हैं। इस हिसाबसे ष-ग्राम और म-ग्राम मिलाकर १४ मूर्च्छनाएँ होती हैं। इन मूर्च्छनाओंमें-से प्रत्येकके तीन-तीन भेद और हो सकते हैं। जैसे, (१) अंतर गांधार या (२) काकली निषाद या (३) अंतर गांधार और काकली निषादवाली मूर्च्छना अर्थात् प्रत्येक मूर्च्छनाके एक शुद्ध और तीन विकृत भेद मिलकर ४ भेद हुए। इस प्रकार मूर्च्छनाओंके कुल भेद ५६ हुए। इस प्रकार मूर्च्छनाओंके उपयोगसे एक ग्रामसे अनेक उपग्राम निकल पड़े और संगीतका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। ये मूर्च्छनाएँ अवरोही क्रमसे बनायी जाती थीं। भरत-कालमें वैदिक पद्धतिका अवरोही क्रम ही प्रचलित था। प्राचीन यूनानी ग्राम भी अवरोही क्रममें ही पाये जाते हैं। इसलिए ग्राम मूर्च्छनाका यह क्रम प्राचीनताका द्योतक है।

दोनों ग्रामोंकी मूर्च्छनाएँ आरोही-क्रममें श्रुति संख्या और नामके साथ नीचे दी जाती हैं—

षड्ज ग्राम—

स ३ र २ ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ स।

१—[स] स ३ र २ ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ (स)—उत्तर मन्द्रा।

२—[र] र २ ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ स ३ (र)—अभिरुद्गता।

३—[ग] ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ स ३ र २ (ग)—अश्वक्रान्ता।

४—[म] म ४ प ३ ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ (म)—मत्सरीकृता।

५—[प] प ३ ध २ न ४ सं ३ रं २ गं ४ मं ४ (प)—शुद्ध षड्जा।

६—[ध] ध २ न ४ सं ३ रं २ गं ४ मं ४ पं ३ (धं)—उत्तरायता।

७—[न] न ४ सं ३ रं २ गं ४ मं ४ पं ३ धं २ (न)—रजनी।

मध्यम ग्राम—

म ३ प ४ ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ म ३ प ४ ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ म

१—[म] म ३ प ४ ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ (म)—सौवीरी ।

२—[प] प ४ ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ म ३ (प)—हृष्यका ।

३—[ध] ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ म ३ प ४ (ध)—पौरवी ।

४—[न] न ४ स ३ र २ ग ४ म ३ प ४ ध २ (न)—मार्गी ।

५—[स] स ३ र २ ग ४ म ३ प ४ ध २ न ४ (स)—शुद्धमध्या ।

६—[र] र २ ग ४ म ३ प ४ ध २ न ४ स ३ (र)—कलोपनता ।

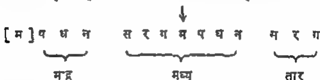
७—[ग] ग ४ म ३ प ४ ध २ न ४ स ३ र २ (ग)—हरिणाश्वा ।

प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी इसी तरहकी मूर्च्छनाओंका प्रयोग होता था जिन्हें 'मोड' कहते थे। इन मोडोंसे अनेक प्रकारके सक्रम तैयार होते थे। जब पाश्चात्य देशोंमें सहतिका प्रचार हुआ था इन सारे मोडोंका लोप हो गया और गुरु ग्राम और लघु ग्राम—ये दो ही मोड रह गये क्योंकि सहतिके लिए ये ही उपयुक्त समझे गये।

यह निश्चित है कि भरतके ग्रामोंमें मूर्च्छनाओंके स्वरोंका न तो स्थान बदलता और न संज्ञा ही बदलती है। किसी ग्रामकी ध मूर्च्छना उस ग्रामके धवतसे ही शुरू होती है (अनुच्छेद ९२) ऐसा नहीं कि धवतको षडज मानकर सभी स्वरोंकी संज्ञा क्रमानुसार बदल दी जाये और इस प्रकार एक नया ग्राम बनाकर उसे सदेह मध्य सप्तकमें सरका दिया जाये। ऐसा करने से फिर मूर्च्छनाकी आवश्यकता न रहती—एक ग्राममें विकृत स्वरोंके प्रयोग से ही काम चल जाता। दोनों ग्रामोंके प्रयोगसे और इनकी प्रत्येक मूर्च्छना के अन्तर ग और काकली न के साथ चार चार भेदोंके विधानसे यह सिद्ध है कि मूर्च्छनामें भरतके स्वर अपना स्थान या संज्ञा नहीं छोड़ते, नहीं तो इन विकृत मूर्च्छनाओंका कोई अर्थ न होता। अचल मूर्च्छनाओंका यह विधान शार्ङ्गदेवके समयमें नहीं रहा, इसीसे उन्होंने १२ विकृत स्वरोंका प्रसंग दिया है (अनुच्छेद ९३)।

भरतकी पद्धतिमें मध्यमको प्रधानता दी गयी है (अनुच्छेद ८६)। मूर्च्छना में भी मध्यमका महत्त्व पाया जाता है। भरतने कहा है—"मध्यमस्वरेण तु वैणेन मूर्च्छना निर्देशो भवति अनाशित्वात्। मूर्च्छनाप्रयोगमपि स्थान प्राप्त्यर्थं। स्थानं तु त्रिविधं।' मतङ्गने सम्भवतः इसीकी व्याख्या करते हुए कहा है—' मध्यमस्वरेण मूर्च्छनानिर्देशः कार्यो मन्द्रतारसिद्ध्यर्थम्।" किन्तु मध्यम स्वर का अर्थ 'मध्य सप्तक' उचित नहीं जान पड़ता। भरत वाक्यका अर्थ है—"वीणा वादक मूर्च्छनाका निर्देश मध्यम स्वरसे करते हैं, क्योंकि इसका नाश नहीं होता। मूर्च्छनाका प्रयोजन भी स्थान प्राप्ति है। स्थान तीन प्रकारके हैं [मन्द्र, मध्य और तार]।' यहाँ मध्यम स्वर को अनाशी बतानेसे यह स्पष्ट है कि इसका अर्थ स्वर है, सप्तक नहीं। इस दृष्टिसे भरतकी वीणाके स्वरोंके सम्बन्धमें बड़े महत्त्वकी बातें निकलती हैं।

भरतकी वीणामें १३ स्वर १३ सुन्दरियोंपर स्थापित हैं। इन स्वरोंके साथ खुले तारका स्वर मिलानेसे १४ स्वर हो जाते हैं जिनमें सातों मूर्च्छनाएं आ जाती हैं। यह स्वर संस्थान नीचे दिया जाता है—



इस प्रबन्धमें मध्यमका स्थान बाधारहित है। साथ ही-साथ इसका सम्बन्ध खुले तारके स्वर [म] से है इसलिए यह 'अनाशी' है। फिर म से [म] तक पहली मूर्च्छना है इसलिए मध्यमसे मूर्च्छनाका आरम्भ होता है। मध्यम से निषाद तककी मूर्च्छनाएं मन्द्र मध्यव्यापी हैं और षड्जसे गान्धार तककी तार-मध्यव्यापी। इस तरह स्थानकी प्राप्ति होती है। मध्यम ग्रामके लिए 'प' को एक श्रुति कोमल करना होगा। यदि इसके लिए एक नयी सुन्दरी बढ़ायी जाय तो सुन्दरियोंकी संख्या १४ हो जायगी।

आधुनिक वाद्योंमें भी यही १४ सुंदरियोंवाला प्रबंध प्रचलित है। इनमें भी मध्यमका स्थान ठीक बीचमें होता है। मध्यम ग्राम 'प' की जगह तीव्र मध्यमको सुंदरी रहती है। यह आगे बताया जायेगा कि मध्यम ग्राम 'प' ही मध्यकालमें मदु प या तीव्र म के रूपमें बदल गया है (अनुच्छेद ९४)। फिर मंद्र यापी और तारव्यापी मूर्च्छनाओंकी तरह हिंदुस्तानी पद्धतिमें मंद्र यापी रागों और तारव्यापी रागोंका अभी भी प्रचार है।

ऊपरका स्वर समुदाय चार चतुसंघातों (चार स्वरोंके संघात) से बना है। प्राचीन यूनानी स्वर संस्थान भी ऐसे ही चार चतुसंघातोंका बना होता था और वाद्योंमें इसीका व्यवहार होता था। वाद्यके बीचके तारको प्रधान माना जाता था जिसे 'मेसा' कहते थे। यह मेसा मध्यमका पर्याय है। इस स्वर प्रबंधमें सबसे नीचे एक स्वर 'मंद्र मेसा [म] और जोड़ दिया जाता था। इसे 'ग्रेट पर्फेक्ट सिस्टम' या 'बहत्पूर्ण समुदाय' कहा जाता था।

यह एक नियम है कि 'न्यास स्वर' तार स्थानमें कभी न हो। यह न्यास स्वर सदा मूर्च्छनाके स्वरसे चार स्वर नीचे होता है (अनुच्छेद ८८)। ऊपरके स्वर संस्थानमें सबसे ऊँचा मूर्च्छना ग की है इसलिए सबसे ऊँचा न्यास स्वर मध्य-स्थानका 'न' होगा जो ग-मूर्च्छनाका न्यास है। इससे भी ऊपरके स्वर संस्थानकी पुष्टि होती है।

८८ ऊपर दी हुई मूर्च्छनाओंसे जातिकी उत्पत्ति हुई। भरत पद्धतिमें जातिका वही स्थान है जो आधुनिक पद्धतिमें रागका। जैसे ठाठसे राग पैदा होता है वैसे ही मूर्च्छनासे जाति उत्पन्न होती है। जैसे रागका भेद ठाठ, संवादी वादी आदिपर निर्भर है वैसे ही जातिका भेद मूर्च्छना, ग्रह, अंश, न्यास आदिपर निर्भर है। 'ग्रह' वह स्वर है जिससे जाति गानका आरम्भ होता है और 'अंश' वह है जो सबसे प्रधान है अर्थात 'जीव स्वर' है। 'न्यास' वह स्वर है जिसपर गानकी समाप्ति होती है। जैसे एक

ठाठमें अनेक राग हो सकते हैं वैसे ही एक मूर्च्छनामें अनेक जातियाँ हो सकती हैं।

जातियोंके कई भेद हैं। जैसे—(१) शुद्ध, (२) विकृत और (३) संसर्गजात। शुद्ध जातियाँ वे हैं जिनका न्यास, अंश, ग्रह एक ही स्वर हो और जो सम्पूर्ण हों। न्यासका स्वर ही जातिकी संज्ञा होती है। जब न्यासको छोडकर ग्रह, अंश आदि बदल जायें या ओडवता या षाडवता आ जाय तो विकृत जाति बनती है। पर न्यास कभी विचलित नहीं होता। जो जातियाँ दो या अधिक शुद्ध जातियोंके मेलसे बनती हैं उन्हें संसर्गजात जातियाँ कहते हैं। शुद्ध जातियाँ ७ हैं, संसर्गजात ११ हैं और विकृत अनेक हैं।

प्रतिनिधि रूपमें शुद्ध जातियोंकी सारिणी नीचे दी जाती है—

सारिणी १२

क्रम	जाति	अंश	न्यास	मूर्च्छना	षाडव विद्वेषी स्वर	औडव विद्वेषी स्वर
१	षाड्जी	स ग म प ध	स	उत्तरायता (ध)	न	०
२	आर्षभी	र ध न	र	शुद्ध षड्जा (प)	स	स प
३	गान्धारी	स ग म प न	ग	पौरवी (ध)	र	र ध
४	मध्यमा	स र ग म प ध	म	कलोपनता (र)	ग	ग न
५	पञ्चमी	र प	प	(र)	ग	ग न
६	धैवती	र ध	ध	अभिरुद्गता (र)	[illegible]	स प
७	नैषादी	स न ग	न	(र)	प	स प

ऊपरकी सारिणीसे जातियोंकी प्रकृति प्रत्यक्ष हो जाती है। जैसे शुद्ध षाडजीका न्यास, अंश आदि स है और यह सम्पूर्ण है। विकृत षाडजीमें अगर अंश विकृति हो तो स की जगह ग म प ध म मे कोई एक अंश होगा षाडव विकृति हो तो न का लोप होगा। औडव भेद इसमें नहीं होता। इसी प्रकार शुद्ध आर्षभीका न्यास, अंश र होगा और यह सम्पूर्ण होगा। विकृतिकी दशामें अंश ध या न होगा, षाडवमें स का लोप और औडवमें स प का लोप होगा।

इन जातियोंपर ध्यान देनेसे कई बातें मालूम होती हैं। एक तो यह कि जातियोंमें सभी मूर्च्छनाओंका उपयोग नहीं हुआ है। शुद्ध विकृत जातियोंमें तो ५ ही मूर्च्छनाओंसे काम लिया गया है। संसर्गजात जातियां मिलाकर १० मूर्च्छनाओंका प्रयोग हुआ है। स-ग्रामकी दो मूर्च्छनाएं उत्तर मंद्रा (स) और रजनी (न) और म ग्रामकी दो मूर्च्छनाएँ, मार्गी (न) और हृष्यका (प)—ये नहीं पायी जातीं। (यहां यह बता देना उचित है कि प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी सभी 'मोड' काममें नहीं आते थे विशेष रूपसे उत्तरमन्द्रा आदिकी तरह म का मोड, जो युरोपका आधुनिक शुद्ध ग्राम है, बहुत दिनों तक बहिष्कृत रहा।) दूसरी बात यह है कि षाडव विकृतिमें प्रायः न्यासके नीचेका स्वर वर्जित है। पञ्चमी और नैषादीमें मूर्च्छनाकी समन्यास ग और प वर्जित हुआ है। पञ्चमीमें तो म के अविलोपी होनेसे यह वर्जित हो ही नहीं सकता। फिर औडव विकृतिमें तो नियमित रूपसे षाडव विकृती स्वर और उसका पञ्चम सवादी वर्जित हुआ है। इससे भरतकी पद्धतिमें संवादका महत्त्व मालूम होता है, और औडव-षाडवविकृति भी नियमबद्ध जान पड़ती है।

तीसरी बात न्यासके सम्बन्धकी है। जातियोंमें न्यासका प्रधानता तो प्रत्यक्ष है, क्योंकि न्यास-स्वरके नामपर ही जातिका नाम चलता है। पर न्यासमें और भी गुण है। यह पहले बताया जा चुका है स्वरोंका एक तो अपने निकटतम पर्णेमियोंसे अन्तरालका पारस्परिक सम्बन्ध होता है,

ठाठमें अनेक राग हो सकते हैं वैसे ही एक मूर्च्छनामें अनेक जातियाँ हो सकती हैं।

जातियोंके कई भेद हैं। जैसे—(१) शुद्ध (२) विकृत और (३) संसर्गजात। शुद्ध जातियाँ वे हैं जिनका न्यास, अंश, ग्रह एक ही स्वर हो और जो सम्पूर्ण हों। न्यासका स्वर ही जातिकी संज्ञा होती है। जब न्यासको छोड़कर ग्रह, अंश आदि बदल जायँ या ओडवता या षाडवता आ जाय तो विकृत जाति बनती है। पर न्यास कभी विचलित नहीं होता। जो जातियाँ दो या अधिक शुद्ध जातियोंके मेलसे बनती हैं उन्हें संसर्गजात जातियाँ कहते हैं। शुद्ध जातियाँ ७ हैं, संसर्गजात ११ हैं और विकृत अनेक हैं।

प्रतिनिधि रूपमें ७ शुद्ध जातियोंकी सारिणी नीचे दी जाती है—

सारिणी १२

क्रम	जाति	अंश	न्यास	मूर्च्छना	षाडव विद्वेषी स्वर	ओडव विद्वेषी स्वर
१	षाड्जी	स ग म प ध	स	उत्तरायता (ध)	म	०
२	आर्षभी	रे ध नि	रे	शुद्ध षड्जा (प)	स	स प
३	गान्धारी	स ग म प नि	ग	पौरवी (ध)	रे	रे ध
४	मध्यमा	स रे ग म प ध	म	कलोपनता (रे)	ग	ग नि
५	पञ्चमी	रे प	प	,, (रे)	ग	ग नि
६	धैवती	रे ध	ध	अभिरुद्गता (रे)	प	स प
७	नैषादी	[illegible] नि ग	नि	(रे)	प	स प

ऊपरकी सारिणीसे जातियोंकी प्रकृति प्रत्यक्ष हो जाती है। जैसे शुद्ध षाडजीका न्यास, अंश आदि स है और यह सम्पूर्ण है। विकृत षाड्जीमें अगर अंश विकृति हो तो स की जगह ग म प ध में-से कोई एक अंश होगा षाडव विकृति हो तो न का लोप होगा। औडव भेद इसमें नहीं होता। इसी प्रकार शुद्ध आर्षभीका न्यास, अंश र होगा और यह सम्पूर्ण होगा। विकृतिके दशामें अंश ध या न होगा, षाडवमें स का लोप और औडवमें स-प का लोप होगा।

इन जातियोंपर ध्यान देनेसे कई बातें मालूम होती हैं। एक तो यह कि जातियोंमें सभी मूर्च्छनाओंका उपयोग नहीं हुआ है। शुद्ध विकृत जातियोंमें तो ५ ही मूर्च्छनाओंसे काम लिया गया है। संसर्गजात जातियाँ मिलाकर १० मूर्च्छनाओंका प्रयोग हुआ है। स-ग्रामकी दो मूर्च्छनाएँ उत्तर मन्द्रा (स) और रजनी (न) और म ग्रामकी दो मूर्च्छनाएं, मार्गी (न) और हृष्यका (ध)—ये नहीं पायी जातीं। (यहाँ यह बता देना उचित है कि प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी सब 'मोड' काममें नहीं आते थे। विशेष रूपसे उत्तरमन्द्रा आदिकी तरह स का 'मोड', जो युरोपके आधुनिक शुद्ध ग्राम है, बहुत दिनों तक बहिष्कृत रहा।) दूसरी बात यह है कि षाडव विकृतिमें प्रायः न्यासके सातवें स्वर वर्जित हैं। पञ्चमी और नैषादीमें मूर्च्छनाके सप्तम ग और ध वर्जित हुआ है। पञ्चमीमें तो म के अविलोपी होनेसे यह वर्जित हो ही नहीं सकता। फिर औडव विकृतिमें तो नियमित रूपसे षाडव विद्वेषी स्वर और उसका पञ्चम संवादी वर्जित हुआ है। इससे भरतकी पद्धतिमें संवादका महत्त्व मालूम होता है और औडव-षाडवविकृति भी नियमबद्ध जान पड़ता है।

तीसरी बात न्यासके सम्बन्धकी है। जातियोंमें न्यासकी प्रधानता तो प्रत्यक्ष है, क्योंकि न्यास-स्वरके नामपर ही जातिका नाम चलता है। पर न्यासमें और भी गुण है। यह पहले बताया जा चुका है स्वरोंका एक तो अपने निकटतम पड़ोसियोंसे व अन्तरालका पारस्परिक सम्बन्ध होता है,

दूसरा इनका अलग अलग एक आधार स्वरसे सम्बन्ध होता है। इस आधार स्वरको, जिसमें सभी स्वर अलग-अलग नापे जाते हैं सुर, स्वरित या अंग्रेजीमें 'टोनिक' कहते हैं। आधुनिक कालमें इस स्वरितकी भावना बड़ी प्रबल है। पाश्चात्य संगीतमें संघातके गुण इस 'टोनिक' पर ही निर्भर हैं। भारतीय संगीतमें गाना या बजानेके साथ सुर भरनेकी अनिवार्य प्रथा है। इससे सभी स्वर शुद्ध निकलते हैं, राग बेसुरा या स्थानभ्रष्ट नहीं होने पाता। स्वरितका प्रभाव एक दृष्टान्तसे स्पष्ट हो जायेगा। किसी बाजेमें यमनके स्वर बांधकर बजाओ जिसका स्वरित स हो। अब मन्द्र न को स्वरित बांधकर उसी पटरिया या मुंदरियासे राग निकालो। दीख पड़ेगा कि बातकी-बातमें राग यमनसे भैरवीमें बदल गया। स्वरोंके स्थानमें कोई अन्तर नहीं पड़ा फिर भी स्वरित बदलनेसे रागका सारा रंग बदल गया। स्वरितका प्रभाव इतना प्रबल होते हुए भी प्राचीन कालमें इसकी भावना दुर्बल थी। फिर भी विद्वानोंने वहां भी इसका कुछ आभास पाया है। जैसे हेल्महोल्ज़ने बताया है कि अरिस्टॉटलने अपने प्रश्नोंमें 'मेसा' के गुणकी ओर संकेत किया है वह 'टोनिक' का ही परिचायक है। प्राचीन कालमें चार 'आथेण्टिक स्केल' या 'आप्त ग्राम' प्रचलित थे जिनकी मूर्च्छनाएँ क्रमशः र, ग, म और प थी। इन ग्रामोंका 'यह पुराना नियम था कि पहली मूर्च्छनाके गानकी समाप्ति र पर, दूसरीकी ग पर, तीसरीकी म पर और चौथीकी प पर होना चाहिए'। हेल्महोल्ज़ कहते हैं—'यह (नियम) इन स्वरोंको हम लोगोंके ही अर्थमें टॉनिक निर्दिष्ट कर देता है।' पर प्राचीन भारतीय संगीतके विषयमें हेल्महोल्ज़ने कहा है—'भारतवासियोंमें भी स्वरितकी धारणा थी, यद्यपि उनका संगीत भी ऐसा ही (प्राचीन यूनानी संगीतकी तरह ही) वर्णस्थित एककण्ठी था।'[1] वे स्वरितको अंश कहते थे। हेल्महोल्ज़की धारणाका आधार जोंसका

---

[1] पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है कि स्वरित (टॉनिक) की धारणा बहुकण्ठ-संगीत या सहति-संगीतमें ही प्रस्फुटित होती है।

विचार है जिन्होंने रागोंमें अंशकी प्रधानताके कारण ही इसे स्वरित मान लिया है। आज भी रागमें वादीका वही महत्त्व है जो पहले अंशका था। पर वादी स्वरित नहीं होता। जातियोंके निरीक्षणसे यह स्पष्ट है कि यदि कोई स्वर स्वरित हो सकता है तो वह 'न्यास' ही है। न्यास ही ऐसा है जो जातिको सत्ता देता है। और न्यास ही ऐसा है जो सबके विकृत होनेपर भी अचल रहता है। हेल्महोल्ज़ने भी प्राचीन आप्त ग्रामके प्रसंगमें न्यासको ही स्वरित माना है। पर भारतीय संगीतके सम्बन्धमें वे वोसके विचारसे भ्रममें पड़ गये हैं। जातियोंपर ध्यान देनेसे पता चलता है कि न्यास प्रायः मूर्च्छनाके स्वरसे कमसे कम चार स्वर नीचे होता है। जैसे, आर्षभीकी मूर्च्छना 'प' और न्यास 'र' है, गान्धारीकी मूर्च्छना 'ध' और न्यास 'ग' है। न्यासका यह नियम प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी पाया जाता है। अब अगर वीणाका ऊपर बताया हुआ ग–म स्वर सन्धान (अनुच्छेद ८७) माना जाये जिसमें सातों मूर्च्छनाएँ आ जाती हैं तो यह नियम भी सिद्ध हो जाता है कि न्यास तार स्वर कभी नहीं हो सकता। मूर्च्छना प्रबन्धका सबसे ऊँचा स्वर ग है जिससे चार स्वर नीचे न मध्य सप्तकमें पड़ता है। इस प्रकार किसी भी मूर्च्छनामें जातिका न्यासतार सप्तकमें नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त न्यास स्वर मूर्च्छनाके बीचका स्वर होता है जिसमें 'मध्यम स्वर' की विशेषता आ जाती है और यह म की तरह ही अविलोपी हो जाता है।

ऊपरके विवरणसे यह स्पष्ट है कि भरतकी पद्धतिमें बड़े ही सरल नियमोंके द्वारा श्रुतिसे स्वर, स्वरसे ग्राम, ग्रामसे मूर्च्छना और मूर्च्छनासे जातिका प्रादुर्भाव हुआ है। इस पद्धतिकी प्राचीन यूनानी पद्धतिके साथ समता भी ध्यानमें रखनेकी बात है।

[ग] शार्ङ्गदेव पद्धति

८६ *भरतकी पद्धतिके सरल होनेपर भी उनका जातिगान अज्ञात है। शताब्दियों तक जिन जातियोंका प्रचार नहीं रहा, आज उनकी रूप रेखाकी* कल्पना भी सम्भव नहीं। भरतके बाद, मतङ्गके समयमें ही जातियाँके

बदले राग पद्धतिका प्रचार हो गया था। मतङ्गने अपने बृहद्देशी नामक ग्रन्थमें पहले पहले प्रचलित रागों की विवेचनाकी और यह भी स्पष्ट कर दिया कि भरतादि प्राचीनोंने रागोंकी चर्चा नहीं की है।[1] पर देशी रागों का वर्णन अपनी कृतिका मुख्य उद्देश्य मानकर भी मतङ्गने भरतकी ही पद्धतिका अनुकरण किया। मतङ्गके बाद शार्ङ्गदेवने भी मार्ग और देशीका भेद बताकर मतङ्गकी भाँति ही देशी रागोंका वर्णन किया है। पर संगीत शास्त्रका जहाँतक सम्बन्ध है शार्ङ्गदेवके संगीत रत्नाकरको भरत पद्धति पर महाभाष्य समझना चाहिए। ऐसा जान पड़ता है कि कि शार्ङ्गदेवके समयमें ग्राम जातियोंका प्राय लोप हो गया था। ऐसी स्थितिमें शार्ङ्गदेव जैसे आचार्य यदि भरत-पद्धतिका मोह छोड़कर प्रचलित संगीतको ही स्वतन्त्र रूपसे नियमबद्ध करनेका प्रयास करते, जैसा कि भरतने किया, तो शार्ङ्गदेवकी पद्धति इतनी दुरूह न होती। यह ध्यान देनेकी बात है कि भरतने तो गान्धार ग्रामका चर्चा न की परन्तु बादके आचार्योंने गान्धार ग्राम का स्थान और इसका मूर्च्छनाओंके नाम तक बताये हैं। शार्ङ्गदेवने भी इसका वर्णन किया है पर अन्तमें कह दिया है— "... स नारदो मुनि प्रब्रूते स्वर्गलोके ग्रामोऽसौ न महीतले॥" इस प्रकार प्रचलित और अप्रचलित मतके कारण रत्नाकरके राग भरतकी जातियोंसे भी अधिक दुर्बोध हो गये हैं। भरतकी पद्धति यदि अज्ञात है तो शार्ङ्गदेवकी पद्धति दुर्बोध है। पर आचार्य शार्ङ्गदेवकी विद्वत्ता निर्विवाद है। विस्तारमें और संगीतके सांगोपांग वर्णनमें रत्नाकरकी तुलना दूसरा कोई भी ग्रन्थ नहीं करता। इसीसे रत्नाकरके संगीतका सच्चा रूप आज पूरी तरह अज्ञात होनेपर भी दक्षिण और उत्तरके सभी संगीताचार्य रत्नाकरको संगीत शास्त्रका वेद ही मानते चले आये हैं। शार्ङ्गदेवकी

1 रागमार्गस्य यद्रूपं यन्नोक्तं भरतादिभिः।
निरूप्यते तदस्माभिर्लक्ष्यलक्षणसंयुतम्॥
—रागलक्षण-बृहद्देशी।

कृतिके बाद ऐसा शायद ही कोई ग्रन्थ रचा गया जिसका आधार रत्नाकर न हो।

६० शार्ङ्गदवने पहले नादके अनाहत और आहत नामक दो भेद करके आहत नादकी उत्पत्तिकी विवेचना गम्भीर वैज्ञानिक विधिसे की है। उन्होंने शारीरक आधारपर नादकी उत्पत्ति बतायी है यहांतक कि २२ श्रुतियोंके लिए २२ नाडियोंकी भी कल्पना की है। यह ठीक है कि आज शार्ङ्गदवकी धारणा निराधार प्रतीत होती है। पर शार्ङ्गदवकी विवेचना उस युगके मवमा य शारीर और तन्त्रक सिद्धान्तोंपर निर्भर है। फिर आहत नादके पाँच भेद बताये गये हैं। जैसे पुष्ट अपुष्ट, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म और कृत्रिम। ये पांचों नाद पांच भिन्न भिन्न स्थान या तारताके हैं (परिशिष्ट २ ग २)। इन भेदोंका आधार व्यक्तिके कण्ठकी स्वाभाविक वृत्ति है। पाश्चात्य पद्धतिमें भी कण्ठनादके साधारणत ये ही पाँच भेद माने गये हैं। जैसे—

बास्स — पुष्ट— } पुरुष कण्ठ
टेनर — अपुष्ट—
आल्टो — सूक्ष्म— } स्त्री कण्ठ
साप्रेनो — अतिसूक्ष्म—

फ़ाल्सेटो—कृत्रिम—जब ध्वनि ऊँची होकर कण्ठके विस्तारके बाहर चली जाती है तब जो एक बनावटी महीन आवाज निकलती है।

प्रत्येक व्यक्तिके कण्ठ-स्वरका विस्तार तीन सप्तकों तक माना गया है। ये मन्द्र, मध्य और तार नामक स्वरके तीन स्थान हैं। हृदयमें मन्द्र, कण्ठमें मध्य और मस्तकमें तार पैदा होता है जो उत्तरोत्तर दूना होता जाता है। (परिशिष्ट २ ग,३)। पाश्चात्य पद्धतिमें मन्द्रको 'चेस्ट वायस' कहते हैं और तारको 'हेड वॉयस'। मन्द्र सप्तकके स्वरोंकी आवृत्तिसे मध्य सप्तकके स्वरोंकी दूनी, और तारके स्वरोंकी चौगुनी होती है। तारकी लम्बाईसे

स्वरोंके सम्बन्ध निर्णयकी भौतिक विधि पहले-पहल अहोबलने बतायी है। पर ऐसा जान पड़ता है कि कमसे-कम तीन स्थानोंके स्थापनमें शार्ङ्गदेवने भी इस विधिसे काम लिया था।

६१ भरतके माने हुए दो ग्रामोंके अतिरिक्त रत्नाकरमें गान्धार-ग्रामका भी वर्णन मिलता है। गान्धार ग्रामकी चर्चा अन्य ग्रन्थोंमें भी पायी जाती है। यहाँतक कि कई पुराणोंमें भी इसका प्रसंग आया है। पर भरतकी पद्धतिमें इसका संकेत भी न होना एक महत्त्वकी बात है। रत्नाकरके अनुसार गान्धार ग्रामका संस्थान इस प्रकार है (परिशिष्ट २ ग ४)—

स २ रे ४ ग ३ म २ प ३ ध ४ न २ स

और ग्रामोंकी तरह गान्धार ग्राम भी गान्धारसे ही आरम्भ होता है। इसलिए इसका प्रकृत रूप यों होगा—

ग ३ म २ प ३ ध ४ न ३ स २ रे ४ (गं)

इस ग्रामके नामकरणके सम्बन्धमें भी विद्वानोंने कल्पना लगायी है। पर और ग्रामोंकी तरह संवादाधिक्यके न्यायपर इस ग्रामका नाम गान्धार ग्राम अनुचित नहीं है। क्योंकि इसमें गान्धार ही ऐसा स्वर है जिसके दो संवादी हैं। इस ग्रामकी भी नन्दा, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रावती, सुखा और अलापा ये सात मूर्च्छनाएँ हैं। पर सभी प्राचीन शास्त्रकार मूर्च्छनाओं समेत इस ग्रामको लुप्त मानते हैं।

६२ मूर्च्छनाकी धारणामें शार्ङ्गदेवके समयसे ही परिवर्तनका संकेत मिलता है। यह बताया जा चुका है कि भरतकी मूर्च्छनामें स्वरोंको मन्द्र और स्थान नहीं बदलते। पर शार्ङ्गदेवकी पद्धतिमें मूर्च्छना शब्दके निरूपणपर मौलिक षड्जपर लाया जाता है। और इस प्रकार सभी मूर्च्छनाएँ मध्यसप्तकव्यापी होती हैं (परिशिष्ट २ ग ५)। इसी दृष्टिसे मतङ्गने भी कहा है कि— मध्यमसप्तकेन मूर्च्छनानिर्देशः कार्यः ... रत्नाकरके टीकाकार कल्लिनाथने भी इस परिवर्तनकी ओर संकेत किया है। वे कहते हैं कि 'मध्यमग्रामान्तरे मध्यमादि ... प्रभृतिका मध्य स्थानके मध्यमको छोड़कर मध्य

षड्ज स्थानसे ही आरम्भ करना लक्ष्य-लक्षणके विरुद्ध है।" अर्थात् मार्ग पद्धतिके विरुद्ध है। यह भेद उदाहरणसे स्पष्ट हो जायेगा। भरतकी पद्धतिमें धैवतकी मूर्च्छना मध्य ध से मन्द्र ध तक व्याप्त होगी पर शार्ङ्गदेवकी पद्धतिमें मन्द्र ध खिसककर मध्य षड्जपर और मध्य ध तार षड्ज पर जायगे। धैवत मूर्च्छना होनेसे स्वरोंका अन्तराल अब षड्ज मूर्च्छनासे भिन्न हो जायेगा। यथार्थमें शार्ङ्गदेवकी मूर्च्छनाओंको उपग्राम कहना चाहिए। यही बात नीचे सकेतमें बतायी गयी है।

```
ष-ग्राम                    स ३ र २ ग ४ म ४ प ३ ध २ न ४ स
ध-मूर्च्छना भरत   ध २ न ४ स ३ र २ ग ४ म ४ प ३ ध
   शार्ङ्गदेव      ——→म २ र ४ ग ३ म २ प ४ ध ४ न ३ स
```

इस भेदसे यह जान पड़ता है कि भरतके समयमें स्वरित या आधार 'सुर' की भावना अङ्कुरित न हो पायी थी, यद्यपि न्यासस्वरमें उसका बीज पड़ गया था। उनके न्यास, अंश, षड्ज, मध्यम और मूर्च्छनाके आधार स्वर, ये सबके सब प्रायः बराबर मूल्य रखते थे। पर शार्ङ्गदेवके समयमें स्वरितकी भावना प्रस्फुटित होने लगी थी और इसीसे सभी मूर्च्छनाओंका आरम्भ षड्जसे होता था। इससे मध्य सप्तक और षड्ज स्वर प्रधान होता हुआ प्रतीत होता है।

६३ मूर्च्छनाके भावमें इस परिवर्तनका फल यह हुआ कि शार्ङ्गदेवने पहले पहल भरतके अन्तर गान्धार और काकली निषादके अतिरिक्त अनेक विकृत स्वरोंकी कल्पना की। क्योंकि जब सभी मूर्च्छनाएँ खिसककर मध्य सप्तकमें आ गयीं तो एक एक स्वरके भिन्न भिन्न अन्तराल स्पष्ट दीखने लगे। जैसे अगर ऊपर दिये हुए षड्ज और धैवत मूर्च्छनाओंको एक-दूसरेपर इस प्रकार रखें—

```
ष—मूर्च्छना—
म     र     ग          म     प     ध     न       स
| | | |  |  |  |  | | | | | | | | |  |   |   |   | |
ध-म स र           ग     म प     ध             न    स
```

तो यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि प-मूर्च्छनामें ही र और ध को एक एक श्रुति और प को दो श्रुति उतारकर तथा ग और न को एक एक श्रुति चढ़ाकर ध-मूर्च्छना बनायी जा सकती है। अर्थात अब शुद्ध स्वरोंके अलावा कोमल र तीव्र ग, कोमल प कोमल ध तीव्र न ये पाँच विकृत स्वरोंकी कल्पना करनी पड़ती है। इस प्रकार मूर्च्छनाओंको एक सप्तकमें लानेका स्वाभाविक परिणाम विकृत स्वरोंकी उत्पत्ति है।

शार्ङ्गदेवने १२ विकृत स्वरोंका निरूपण किया है जो आगेकी सारिणी में श्रुति संख्या और श्रुति जातिके साथ दिया जाता है।

शार्ङ्गदेवके इन बारह विकृत स्वरोंके विधानसे यह मालूम होता है कि उनके समयमें 'स्वर' से दो पड़ोसी नादोंके बीचका अन्तराल समझा जाता था। तारता या स्थानकी भावना भी स्वरके साथ थी अवश्य पर निरपेक्ष रूपमें नहीं थी। यह बात स्वरकी परिभाषासे भी प्रकट होती है जहाँ इसे स्निग्ध और अनुरणनात्मकके साथ साथ श्रुत्यनन्तरभावी भी कहा गया है (परिशिष्ट २ ग ६)। यह इस विचारको पुष्ट करता है कि शार्ङ्गदेवके समयमें स्वरितकी भावना प्रस्फुटित होकर भी प्रबल न हो पायी थी। क्योंकि जबतक स्वरितकी भावना प्रबल नहीं होती तबतक प्रत्येक स्वरका अपने पड़ोसी स्वरोंसे अन्तराल ही मुख्य रहता है। स्वरितकी भावना प्रबल होनेपर प्रत्येक स्वरकी तारता स्वरितकी अपेक्षा निश्चित हो जाती है। स्वरके साथ इस द्वयभावके संयोगसे जैसे किसी स्वरके स्थानच्युत होनेपर वह विकृत समझा जाता था वैसे ही अपने स्थानपर स्थिर रहकर, अन्तराल बदलने पर भी वह विकृत समझा जाता था। जैसे, 'काकली निषाद अच्युत षड्ज' में षड्जका स्थान नहीं बदला पर निषादके दो श्रुति ऊपर चढ़ जानेसे षड्जका अन्तराल अब दो श्रुति रह गया। इसीसे यह विकृत समझा गया। इसी प्रकार च्युत षड्ज ऋषभ भी विकृत माना गया यद्यपि ऋषभने अपना स्थान नहीं छोड़ा। दूसरी ओर 'मध्यम-ग्राम प च्युत मध्यम' है जिसका अन्तराल तो पहले ही जैसा चार श्रुतियोंका ही है पर प के अपने स्थानसे विचलित होनेसे यह

सारिणी १३

ानि	सज्ञा	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर					विकृत स्वर सज्ञा
प्ता	तीव्रा		न (१)					(१) कैशिकी निषाद
यता	कुमुद्वती		न" (२)	(३)				(२) काकली निषाद
दु	मन्दा		म		(४)			(३) च्युतषड्जत्व नि
त्या	छन्दोवती	१ स						(४) अच्यु ष का नि
णा	दयावती					(५)		(५) च्युतषड्जऋषभ
०	रञ्जनी							
०	रक्तिका	२ र						
।०	रौद्री							
०	क्रोधा	३ ग						
।०	वज्रिका		ग' (६)					(६) साधारण गान्धार
।०	प्रसारिणी		ग" (७)	(८)				(७) अन्तर गान्धार
०	प्रीति		म		(९)			(८) सा ग च्यु म
०	मार्जनी	४ म						(९) अ ग अ म
०	क्षिती			(१०)		११		
०	रक्ता							
०	सन्दीपनी		प					(१०) म ग्रा पंच म
०	आलापिनी	५ प						(११) म ग्रा प च्यु म
०	मदन्ती		(१२)					
०	रोहिणी							
०	रम्या	६ ध						(१२) मध्यम ग्राम ध
०	उग्रा							
०	क्षोभिणी	७ न						

विकृत समझा गया। रामामात्यके समयमें स्वरितकी भावना प्रबल हो गयी थी। इसीलिए उन्होंने चार अच्युत विकृतिवाले स्वर और मध्यम ग्राम पकी दो विकृतियोंमें-से एकको त्यागकर सात ही विकृत स्वर माने हैं। जो स्वर अपने स्थानसे विचलित हुए हैं उन्हींको उन्होंने विकृत माना है (अनुच्छेद १०५)।

विकृत स्वरोंकी सारिणीसे एक बात और प्रकट होती है। वह यह कि सप्तकके सभी स्वर विकृतिमें विचलित हुए हैं पर र और ध अपने स्थानपर अचल हैं। इनमें अन्तराल विकृति पायी जाती है पर स्थान विकृति नहीं पायी जाती। इन दो स्वरोंको अचल माननेसे त्रिश्रुतिक र और त्रिश्रुतिक ध से छोटा इनका कोई विकृत रूप नहीं दीखता जिनका अस्तित्व मूर्च्छनाओंमें पाया जाता है। पर इन दो स्वरोंका श्रुतिमान अब भी अनिश्चित सा ही है क्योंकि कर्णाटकी पद्धतिमें, जो आज तक भरत शार्ङ्गदेवके षड्ग्रामको ही शुद्ध ग्राम मानती रही है, एक ही शुद्ध ऋषभको कोई शास्त्रकार त्रिश्रुतिक और कोई द्विश्रुतिक मानते हैं। यहाँतक कि कर्णाटकी शुद्ध ग्रामको गणितकी भाषामें व्यक्त करनेवाले आधुनिक विद्वानोंमें भी मतभेद मालूम होता है। पर र और ध में स्थान विकृति न होना इस बातको सिद्ध करता है कि ये स्वर दो-दो श्रुतिके हैं। र और ध की अचल प्रतिष्ठा शार्ङ्गदेवके ग्राम और आधुनिक कर्णाटकी ग्राम, दोनों हीमें पायी जाती है। इससे यह परिणाम निकलता है कि कर्णाटकी ग्राम शार्ङ्गदेवका अनुकरण करता है। भरतका ग्राम इन दोनोंसे ही भिन्न है (अनुच्छेद १०८)।

पर इन सात विकृत स्वरोंकी कल्पना करके भी शार्ङ्गदेवने अपने रागोंकी व्याख्या भरतकी प्रणालीमें मूर्च्छनाके द्वारा ही की है। यदि वे विकृत स्वरोंका उपयोग करते तो आज उनकी राग-पद्धति इतनी दुर्बोध न होती। आगेके शास्त्रकारोंने भी इसी मार्गका अवलम्बन किया है जिससे आधुनिक प्रचलित राग पद्धति अपने अतीतसे बिलकुल कटी हुई सी जान पड़ती है। क्योंकि इसका आधार परम्पराके सिवा कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं जिसकी राग

पद्धतिको समझकर अतीत और वर्तमानकी तुलना की जा सके।

इन विकृत स्वरोंकी प्रकृतिसे और श्रुति-वीणामें रत्नाकरकी स्वर स्थापनासे यह सिद्ध है कि भरत शार्ङ्गदेवके स्वर भी ग्रामकी तरह ही अवरोही थे। अर्थात् षड्ज आदिकी श्रुतियाँ नीचेकी जाती थी—ऊपरकी नहीं, जैसा कि कुछ आधुनिक विद्वानोंने मान लिया है। दी हुई सारिणीमें तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा और छन्दोवती इन चार षड्जकी निर्धारित श्रुतियाम षड्ज स्वर छन्दोवतीपर स्थित है तीव्रापर नहीं।

६४ शार्ङ्गदेवके शुद्ध विकृत स्वरमय ग्रामका एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि भरतके दो ग्रामोंमें से मध्यम ग्रामके परिचायक त्रिश्रुतिक प को षड्ज ग्राममें ही विकृत स्वरके रूपमें ग्रहण कर लिया गया। यही मध्यम ग्राम प आगे चलकर भारतीय संगीतमें तीव्र म या प्रति म के रूपमें प्रकट हुआ। मध्यम ग्राम प के तीव्र म में रूपान्तरकी प्रगतिकी ओर रत्नाकरके टीकाकार कल्लिनाथने साफ तौरसे संकेत किया है। रागविवेकाध्यायमें उन्होंने बताया है कि इन्हीं रागोंमें दोनों ग्रामोंका भेद मिट गया और रामक्रिया जैसे क्रियाङ्गोंमें मध्यमने पञ्चमके दो श्रुतियोंपर अधिकार कर लिया[1]। इससे यह प्रतीत होता है कि मध्यम ग्रामका पञ्चम ही आगे चलकर दो श्रुति उतरा हुआ तीव्र मध्यम होकर एक स्वतन्त्र विकृत स्वर बन गया है। भारतीय संगीतके विकासके इतिहासमें यह एक महत्त्वकी घटना है।

६५ यद्यपि शार्ङ्गदेवने श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति आदिके वर्णनमें भरतका ही अनुकरण किया है, फिर भी इनकी पद्धतिमें प्रगति और विकासके लक्षणोंका अभाव नहीं है। मूर्च्छनाओंकी मध्य सप्तकमें स्थापना, विकृत स्वरोंकी कल्पना, मध्यम ग्रामका लोप और प्रति मध्यमकी उत्पत्ति ये सारी बातें रत्नाकरकी मौलिकता प्रकट करती है। इसी विकास क्रममें

---

१ 'क्रियाङ्गरामक्रियायां मध्यमस्य पञ्चमश्रुतिद्वयाक्रमण '।

ग्राम-जातियाँ विलीन हो गया और राग-पद्धतिका प्रादुर्भाव हुआ जिसका वर्णन शार्ङ्गदेवने विस्तारके साथ किया है।

रत्नाकरके रागोंका रूप आज अज्ञात है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि भारतीय संगीतपर रत्नाकरका कोई प्रभाव नहीं। रत्नाकरके राग चाहे दुर्बोध हों पर उसकी राग पद्धति आज भी प्रचलित है। शार्ङ्गदेवके बताये *हुए आलाप-आलप्ति, गमक, अलंकार, तान, कूटतान, वर्ण, धातु आदिके* नियम और प्रयोग आज भी उसी रूपमें प्रचलित हैं। रत्नाकरका निबद्ध गान आज भी ध्रुपद (ध्रुवपद) के रूपमें जीवित है। रत्नाकरकी गायकी *ही भारतीय संगीतकी गायकी है। इसलिए भारतीय संगीतके आचार्यों* और उस्तादोंको जितनी तृप्ति संगीत रत्नाकरसे मिलती है उतनी और किसी दूसरे ग्रन्थसे नहीं।

[घ] श्रुति-स्वर विचार

६६ *भरत और शार्ङ्गदेवकी श्रुतियोंका मान क्या था और उन* श्रुतियोंसे बने हुए स्वर और ग्राम कैसे थे इसकी विवेचना बहुतेरे विद्वानोंने की है। इसीलिए यहाँ भी इस विषयपर कुछ विचार करना आवश्यक है। श्रुति विचारमें दो पक्ष प्रधान हैं, एक पक्ष असमानवादी है, दूसरा समानवादी। असमानवादी पक्षमें प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वान हैं जो २२ श्रुतियोंको समान नहीं मानते। वे भरतके चतुःश्रुतिक त्रिश्रुतिक और द्विश्रुतिक स्वरोंको क्रमशः मेजर टोन (गुरु स्वर) माइनर टोन (लघु स्वर) और सेमी टोन (अर्ध स्वर) मानकर चलते हैं (अनुच्छेद ४७)। समानवादी पक्षमें प्रायः देशी विद्वान् हैं जो सभी श्रुतियोंको समान मानते हैं। वे २२ श्रुतियोंसे बने हुए स्वर प्रबन्धको, आधुनिक १२ समान अर्ध स्वरोंवाले स्वर प्रबन्धसे अपेक्षाकृत अधिक संख्या पाकर सन्तुष्ट होते हैं। पर यह तो मानना ही पड़ता है कि भरत शार्ङ्गदेवका श्रुति-स्वरविचार कानोंके सूक्ष्म अनुभव और विश्लेषणपर निर्भर था, कुछ गणितकी जटिल क्रियाओं पर नहीं।

उन्होंने कहीं भी श्रुति-स्वरोंके नाप-तौलका तरीका नहीं बताया है जिससे उनके स्वरों और ग्रामोंका ठीक-ठीक पता चल सके। इसलिए श्रुतियोंके प्रसंगमें मतभेद होना स्वाभाविक है। पर आधुनिक गणितके साधनसे यह गुत्थी नहीं सुलझायी जा सकती।

९७ यह बताया जा चुका है कि प्राचीन शास्त्रकारोंने स्वरोंका स्थान पशु-पक्षियोंकी ध्वनिसे निर्धारित किया है (अनुच्छेद ८१)। रत्नाकरमें भी यह प्रसंग पाया जाता है (परिशिष्ट २ ग ७)। पर आधुनिक पण्डित स्वर निर्धारणके इस संकेतसे सर्वथा उदासीन रहे हैं। इसका कारण यह है कि आधुनिक परिपाटीमें ग्राममें प्रत्येक स्वरकी तारता एक ही स्वरितकी अपेक्षा निश्चित होती है। इसलिए किसी जीवकी ध्वनिको गान्धार और किसीकी ध्वनिको मध्यम तभी माना जा सकता है जब इन दोनोंका माप किसी एक ही स्वरितसे हो। ऐसे सर्वनिष्ठ स्वरितकी सम्भावना नहीं होनेसे स्वर निर्धारणकी यह प्राचीन प्रणाली उन्हें असंगत जान पड़ती है। पर प्राचीनोंके स्वर, कम-से-कम शार्ङ्गदेवके समय तक दो ध्वनियोंके अन्तराल माने जाते थे। स्वरके साथ एक सर्वनिष्ठ स्वरितकी धारणा नहीं थी। गान्धारका मतलब किसी विशेष तारताके स्वरसे न था बल्कि षड्ज और गान्धारके बीचके अन्तरालसे था, चाहे गान्धार और षड्जकी तारता कुछ भी हो। यह बताया जा चुका है (अनुच्छेद ८२) कि पशु-पक्षियोंके शब्द एक ही ऊँचाई या तारताके नहीं होते, उनमें उतार चढ़ाव या अन्तराल होता है। अर्थात् इनकी आवाज नीचे सुरसे शुरू होकर बढ़ते-बढ़ते किसी खास ऊँचाईपर पहुँचकर रुकती है। और यह क्रिया हर जातिके पशु-पक्षियोंमें सदा एक-सी पायी जाती है। यह सारी बातें सामान्य अनुभव और वैज्ञानिक निरीक्षणसे सिद्ध हैं। दृष्टान्तके लिए पञ्चमका निरूपण ले लें। सभी शास्त्रकारोंने कोकिलकी ध्वनिको पञ्चम माना है। कोकिल जब बोलता है तो इसकी आवाज एक निम्नतम स्थानसे शुरू होती है और धीरे धीरे ऊपर उठकर एक उच्चतम स्थानपर पहुँचती है। कोकिलके

स्वरका यह विस्तार निश्चित मानना और स्वाभाविक होता है जो सभी कालियोंमें सदा एक सा पाया जाता है। प्राचीन शास्त्रकारोंका कथन है कि कालिकी ध्वनिका यह सारा विस्तार षडज-मध्यमके विस्तार या अन्तरालको बनाता है। इसी प्रकार अन्य जीवोंके स्वरोंकी भी व्याख्या की जा सकती है। यदि पशु-पक्षियोंकी ध्वनिके द्वारा स्वरोंका मान निर्धारित करनेमें शास्त्रकारोंका यही तात्पर्य हो तो प्राचीन स्वर-ग्रामके निर्णयका सूत्र मिल सकता है।

प्राचीन शास्त्रकारोंके इस निर्देशको जितना अनर्गल समझा जाता है सम्भवतः यह उतना नहीं है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि जो अन्तराल नादके आवर्त्तकोंपर निर्भर हैं व जब मनुष्यके गलेसे स्वाभाविक रूपसे निकलते हैं वैसे ही पशु-पक्षियोंके गलेसे भी। फिर मनुष्य मनुष्यके बीच तो परिस्थिति और अभ्यासवश बहुत विभिन्नता आ जाती है। पर एक जातिके जन्तुओंमें इन आवर्त्तक अन्तरालोंका प्रकृत स्वरोंका उच्चारण सदा एक सा पाया जाता है। डार्विनने हेल्महोल्ज़के सिद्धान्तके आधारपर बताया है कि "हमारे ग्रामके किन्हीं भी दो स्वरोंके बहुतेरे आवर्त्तक उपस्वर एक ही हैं। इसलिए यह बहुत ही स्पष्ट प्रतीत होता है कि यदि किसी जन्तुकी सदा एक ही गान गानेकी इच्छा हो तो वह इसकी पूर्तिका प्रयास उन्हीं स्वरोंका एकके-बाद एक उच्चारण करके करेगा, जिनके बहुतेरे उपस्वर एक ही हों। अथवा वह अपने गानके लिए उन्हीं स्वरोंको चुनता जो हमारे संगीत ग्रामके हैं।" इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि पशु-पक्षियोंकी ध्वनि मनुष्यके लिए स्वर निर्धारणका प्रमाण मानी जा सकती है। पर बिना वैज्ञानिक अनुसन्धानके यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन आचार्यों का क्या तात्पर्य था और यदि था तो उनका निरूपण कहाँतक ठीक था। इस विषयके निर्णयके लिए यह आवश्यक है कि जिन पशु-पक्षियोंका प्रसंग आया है उनकी ध्वनियोंका रेकॉर्ड लिया जाय और फिर वैज्ञानिक विधिसे उनका अन्तराल निकाला जाय।

६८ जसे भरतने प्रमाण श्रुतिका निर्देश किया है वसे ही शाङ्गदवने भी श्रुति वीणाके द्वारा श्रुति-स्वरका सिद्ध करनकी विधि बतायी ह। पर दानाकी प्रक्रियाम मौलिक अतर ह। भरतने पहल ग्रामक स्वराकी स्थापना का है और उसस प्रमाण श्रुनि निकाला ह। पर शाङ्गदवने पहले २२ श्रुतियाकी स्थापना की ह और फिर उनस स्वराका मान निकाला ह। भरत का निर्देश सक्षेपम या ह—दो एक सी वीणाआका पहले षडज ग्राममें बाधो। फिर इनम से एकके पञ्चमको एक प्रमाण श्रुति उतारकर इसे मध्यम ग्रामका बना दो। इस उतरे हुए पञ्चमको स्थिर रखकर अब इसे फिर षडज ग्राम बनाओ। इस प्रकार दूसरी वीणाका हर एक स्वर पहली वीणाके स्वराकी अपेक्षा एक एक श्रुति नीचे उतर जायेगा। फिर इसी तरह उतारनेसे दूसरी वीणाके गान्धार और निपाद पहलीके र और ध स मिल जायगे। तीसरे उतारम दूसरीक ऋषम और धवत पहलीक षडज और पञ्चमम और चौथे उतारमें दूसरीके षडज, मध्यम और पञ्चम पहलीके निपाद, गान्धार और मध्यममें मिल जायेंगे। (परिशिष्ट २ ख ४) इस प्रकार दोना ग्रामाकी २२ श्रुतिया जानी जा सकती है। मतलब यह कि भरतने २२ श्रुतियाकी सिद्धि 'स्वर वीणा' के द्वारा की ह। दूसरी ओर शाङ्ग देवने 'श्रुति वीणा'का प्रयोग किया ह। शायद उनका अभिप्राय भरतकी अस्पष्टताका दूर करना हा। उनकी भी दो वीणाएँ ह जिनमे से हर एकम २२ २२ तार ह। उनका निर्देश ह कि हर एक अगले तार की ध्वनि पिछल तारसे बहुत ही थाडी ऊँची हो, इतनी थोडी कि दोनाके बीच और काइ ध्वनि सुनायी न दे। (परिशिष्ट २ ग ८) यही शाङ्गदेवकी प्रमाण-श्रुति ह। इस प्रकार २२ तारकी ध्वनिया लगातार एक एक श्रुति चढती जायेंगी। अब चौथे तारपर षड्ज, सातवेंपर ऋषम, नवेंपर गान्धार, तेरहवेंपर मध्यम, सत्रहवेंपर पञ्चम, बीसवेंपर धवत और बाईसवें पर निपादकी स्थापना करनेसे षडज ग्राम तयार हो जाता ह। इसके बाद शाङ्गदवने अचल वीणाकी अपक्षा चलवीणाके स्वराको सारित करके भरत

की तरह ही २२ श्रुतियोंको सिद्ध किया है। पर यह क्रिया भरतका अनुकरण मात्र है। क्योंकि जब २२ श्रुतियाँ पहले ही निश्चित हो गयीं तो फिर उनकी सिद्धिका कोई भी प्रयोजन नहीं रहता।

इन दोनों आचार्योंकी विधियोंकी तुलनासे यह परिणाम निकलता है कि भरतकी पद्धतिमें श्रुतियोंका समान होना आवश्यक नहीं है। पर शार्ङ्गदेवने निश्चय ही श्रुतियोंको समान माना है। इसीलिए असमानवादीके आधार भरत हैं और समानवादीके शार्ङ्गदेव।

६६ अब इन दोनों पक्षोंके अनुसार श्रुतिस्वरका क्या मान निकलता है और प्राचीन ग्राममें कैसा रूप खड़ा होता है इसका विचार आवश्यक है। यदि शार्ङ्गदेवके संकेतपर श्रुतियोंका मान एक दूसरेके बराबर माना जाये, तो एक सप्तक अर्थात् स म का अन्तराल २२ बराबर भागमें बँट जाता है। भिन्न-पद्धतिमें स स अन्तराल दो होता है। इसलिए २२ श्रुतियोंको परस्पर गुणा करनेसे दो-के बराबर होना चाहिए अर्थात् यदि एक श्रुतिके मानको 'द' मान लिया जाये तो

(द × द × × २२वाँ द) = २

या (द) २२ = २

या द = २२ √२ (अनुच्छेद ४८)

अर्थात् एक श्रुतिका अन्तराल दो-का बाईसवाँ मूलके बराबर हुआ। मूल निकालनेपर

द = १.०३२ = [illegible]

पर सेवटकी पद्धतिसे यह सारी गणना बड़ी सरल हो जाती है। इसलिए ऊपर भिन्नका संकेत करके अब आगे सेवटमें ही गणना की जायगी। अस्तु, स-स अन्तराल ३०१ सेवट होता है। इसलिए एक श्रुतिका अन्तराल,

द = ३०१/२२ = १३.७ सवट।

इस हिसाबसे

चतुश्रुतिक स्वर = १३ ७ × ४ = ५४ ८ सवट

त्रिश्रुतिक स्वर = १३ ७ × ३ = ४१ १ „

द्विश्रुतिक स्वर = १३ ७ × २ = २७ ४ „

आधुनिक स्वराके साथ तुलना करनपर पता चलता ह कि चतुश्रुतिक स्वर गुरु स्वर (मेजर टान) से लगभग चार सवट ऊँचा ह त्रिश्रुतिक स्वर लघु स्वर (माइनर टोन) स लगभग ५ सवट नीचा ह, और द्विश्रुतिक स्वर अध स्वर (सेमी टोन) क लगभग बराबर ह (अनुच्छेद ४९)। इस हिसाबस शाङ्गदेवका शुद्ध ग्राम ऐसा निकलता है—

स रे ग म प ध न स

० ४१ १ ६८५ १२३ ३ १७८ १ २११ २ २४६ ६ ३०१

इसमें म इष्ट मध्यमम लगभग २ सेवट नीचा और प इष्ट पञ्चमसे २ सवट ऊचा ह। ग और न भी आधुनिक कोमल ग और कोमल न से लगभग १० सेवट उतरे हुए ह। ये ग् ३२/२७ और न् १६/९ से भी लगभग ५ सेवट छोटे ह।

इस स्वर प्रबन्धमें, जो किसी भी ज्ञात स्वर प्रबन्धसे नहीं मिलता, विचारनेकी मुख्य बात यह ह कि इसका चतुश्रुतिक अन्तराल गुरु स्वरसे भी ३ ८ सेवट या लगभग एक कामा ऊचा ह। यह गुरु स्वर मध्यम और पञ्चमका अन्तराल ह, और ये दोना ही स्वर प्राकृतिक ह जो सभी देशा और सभी कालामें एक स ही पाये जाते ह। इसलिए यह मानना पड़ता ह कि शाङ्गदेवजस आचाय इसक मानमें त्रुटि नहीं कर सकते। जो हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि शाङ्गदेवकी श्रुतियाँ शुद्ध गणितकी दृष्टिसे बराबर नहीं ह और न उनका लक्ष्य सम साधुन ग्रामकी रचना ही था जो आधुनिक पाश्चात्य सगीतमें सहनिकी एक विशेष समस्या लेकर कल्पित हुआ ह।

१०० भरतक मागपर चलनस स्वराका मान पहले निश्चित करना हागा फिर श्रुतिका मान निकाल्ना हागा। इस सम्बन्धमें अनेक विद्वानान भरतक चतुश्रुतिक स्वरको गुरु स्वर, त्रिश्रुतिकको लघु स्वर और द्विश्रुतिकको अध स्वर मान लिया ह। ऐसा मान लेनेपर अनायास ही भरतका षडज ग्राम इस तरह तयार हो जाता ह—

स	र	ग	म	प	ध	न	[illegible]
१	$\frac{१०}{९}$	$\frac{३२}{२७}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{५}{३}$	$\frac{१६}{९}$	२

$\frac{१०}{९}$ $\frac{१६}{१५}$ $\frac{९}{८}$ $\frac{९}{८}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१६}{१५}$ $\frac{९}{८}$

यह बताया जा चुका ह कि—

गुरु स्वर $\frac{९}{८}=५१$ सवट
लघु स्वर $\frac{१०}{९}=४६$ सवट
अध स्वर $\frac{१६}{१५}=२८$ सवट   (अनुच्छेद ४९)

भरतकी पहली सारणामें चलवीणाका प्रत्यक स्वर अचलवीणाके प्रत्यक स्वरस एक श्रुति उतरता ह। यह बताया गया ह कि पहली सारणा षडज ग्राम प और मध्यम ग्राम प क अन्तरके बराबर होती ह। इस ही प्रमाण श्रुति कहत [illegible]। इम साधाणा-स मध्यम ग्राम प ऋपमका सवादी हो जाता ह, इसलिए मध्यम ग्राम प का मान $\frac{१०}{९}\times\frac{४}{३}=\frac{४०}{२७}$ हुआ। इम प का षडज ग्राम प स अन्तर $\frac{३}{२}-\frac{४०}{२७}=\frac{८१}{८०}$ हुआ या ५ सेवट हुआ। यह गुरु-स्वर और लघु स्वरका अन्तर ह जिस एक कोमा कहत ह। अब चलवाणाक गान्धार और निपाद भी एक एक कोमा उतर गये। दूसरी सारणामें चल वीणाक दोना स्वर अचलवीणाक र और ध म मिल जाते ह। इमलिए यह दूसरा उतार २३ सवटका हुआ जिसे लीमा कहत ह। इसलिए दूसरी श्रुति एक लीमा $\frac{२५६}{२४३}$ के बराबर हुई। इन दोना उतारामें चल वीणाक र और ध एक अध स्वर या २८ सवट उतर गये। इमलिए ये स्वर अचल

कोमल स और प से १८ सवट ऊँचे रहे। तीसरी सारणामें र और ध, म और प म मिल जाते हैं। इसलिए तीसरी श्रुति एक लघु अर्ध स्वर २५/२४ या १८ सेवटके बराबर हुई। अब म, म और प के कुल ४६ सेवट उतरनेसे इनमें एक कामा या ५ सेवट रह गया। चौथी सारणामें ये तीनों स्वर न ग और म म मिल जाते हैं। अर्थात चौथी श्रुति एक कामाके बराबर हुई। संक्षेपमें—

चतुश्रुतिक स्वर = कामा + लीमा + लघु अर्ध स्वर + कामा

= ८१/८० × २५६/२४३ × २५/२४ × ८१/८०

= ५ + २३ + १८ + ५

= ५१ सवट = ९/८

त्रिश्रुतिक = कामा + लीमा + लघु अर्ध स्वर

= ५ + २३ + १८ = ४६ सवट = १०/९

द्विश्रुतिक = कामा + लीमा

= ५ + २३ = २८ सेवट = १६/१५

सभी श्रुतियोंको यदि क्रमसे सजा दिया जाये तो नीचे दिया हुआ चित्र तैयार होता है—

स			र			ग ↓		म				प			ध		न		↓		स
ल	ली	को	ली	को	को	ल	ली	को	को	ल	ली	को	ल	ली	को	ल	को	को	ल	ली	को

जहाँ—

को—>कोमा ५ सेवट (८१/८०)

ल—>लघु अर्ध स्वर १८ सेवट (२५/२४)

ली—>लीमा २३ सेवट (२५६/२४३)

इस चित्रके अनुसार अन्तर ग और काकली न वाणचिह्नित स्थानपर होंगे जिनका अन्तराल म और म स एक अर्ध स्वर (१३५/१२८) होगा। अर्थात् इनका मान क्रमशः ५/४ और १५/८ होगा।

१०१ श्रुतियोंका यह मान निर्णय भरतके सारणा निर्देशपर हुआ है। पर बहुतेरे विद्वानोंने स्वतन्त्र रूपसे २२ श्रुतियोंका निरूपण किया है। इस निरूपणमें किन्होंने चक्रिक प्रक्रियाका उपयोग किया है, किन्होंने सक्रमिक प्रक्रियाका (अनुच्छेद ६५,६६)। दोनों ही प्रक्रियाओंमें अनेक प्रकारके श्रुति प्रबन्ध बन सकते हैं। और इसका कोई भी उचित कारण नहीं दीखता कि एक श्रुति प्रबन्धको दूसरेसे श्रेष्ठ या अधिक उपयुक्त क्यों समझा जाये। चक्रिक प्रक्रियामें यदि मध्यमसे आरम्भ करके पञ्चम ($\frac{३}{२}$) की कड़ीसे आरोहण करते जायँ और बाइसवीं कड़ीपर रुक जायँ तो एक विशेष प्रकारका श्रुति प्रबन्ध निकलेगा। पर यदि पञ्चमके प्रमाणसे ही अवरोहण करें तो दूसरा ही श्रुति प्रबन्ध प्राप्त होगा। और यदि दोनोंका मिश्रण करें तो अनेक प्रकारके श्रुति प्रबन्ध सिद्ध किये जा सकते हैं। ऐसे ही सक्रमिक प्रक्रियाके द्वारा भी अनेक प्रकारके श्रुति-समुदाय तैयार किये जा सकते हैं। नीचे उदाहरण रूपमें मध्यमसे आरोही-चक्रके द्वारा प्राप्त श्रुति स्थानोंको सारिणीमें दिया गया है। साथ-ही साथ तुलनाके लिए, सक्रमिक प्रक्रियासे प्राप्त स्थानोंको भी दिया गया है जिसका निरूपण क्लेमेंट्स आदि विद्वानोंने और जिसका अनुमोदन श्रीनिवास आयंगार, सुब्रह्मण्य अय्यर आदि भारतीय संगीत पण्डितोंने किया है।

ऊपरकी सारिणीमें दिये हुए सक्रमिक स्वरोंका निरूपण स्ट्रङ्गवेजने पञ्चम-संवाद (आरोही और अवरोही) और गान्धार संवाद ($\frac{५}{४}$) के प्रयोगसे किया है। क्लेमेण्टके संशोधनमें $\frac{२५६}{१३५}$ और $\frac{१६}{१५}$ गान्धार-संवादी और $\frac{६४}{६३}$ और $\frac{३६}{३५}$ साप्तिक संवादी अर्थात् ध्वनिके सातवें आवर्त्तकसे निकले हुए स्वर हैं। इन स्वरोंका निरूपण उन्होंने पूना निवासी देवलके प्रयोगोंके आधारपर किया है। श्रीनिवास आयंगारके कथनानुसार क्लेमेण्ट्सने $\frac{३२०}{३१३}$ (१२० स) और $\frac{११}{६८}$ (२९६) और मान हैं अर्थात् २४ श्रुतियाँ मानी हैं।

इस सारिणीको देखनेसे यह मुख्य बात निकलती है कि चाहे चक्रिक स्वरोंको लें या सक्रमिक स्वरोंको तीन ही प्रकारके अन्तराल उपयोगमें आये

सारिणी १४

चक्रिक प्रक्रिया

स्वर	स्थान (सेवट)	अंतराल
स	०	
		५
न'	५	
		२३
स'	२८	
		५
न"	३३	
		१८
र	५१	
		५
स"	५६	
		२३
र'	७९	
		२३
ग	१०२	
		५
र"	१०७	
		१८
म	१२५	
		५
ग'	१३०	
		२३
म'	१५३	
		५
ग"	१५८	
		१८
प	१७६	
		५
म"	१८१	
		२३
प'	२०४	
		५
म"'	२०९	
		१८
ध	२२७	
		५
प	२३२	
		२३
ध'	२५५	
		२३
न	२७८	
		५
ध'	२८३	
		१८
स	३०१	

सक्रमिक प्रक्रिया

	भिन्न	सेवट	विकल्प: स्टडवेज	विकल्प: क्लेमेण्ट
स	१	०	९/८ ५ से	३२/३१ २१ सॅ
	२५६/२४३	२३		
	[illegible]	२८		
	[illegible]	४६		
र	[illegible]	५१		
	३२/२७	७४		
	[illegible]	७९		
	[illegible]	९७		
ग	८१/६४	१०२		
	[illegible]	१२५		
म	[illegible]	१३०		६४/४५ १५०
	[illegible]	१४८		
	[illegible]	१५३	→ ४०/२७ १७१	
	[illegible]	१७६		
प	[illegible]	१९९		८/५ १९७
	[illegible]	२०४		
	१२८/८१	२२२		
ध	२७/१६	२२७		
	[illegible]	२५०		
	[illegible]	२५५		
	१६/९	२७३		२५६/१३५ २७८
न	२४३/१२८	२७८		
म	२	३०१		

है—एक कामा (५ सें), दूसरा लघु अर्ध स्वर (१८ से) और तीसरी लीमा (२३ सें) । यह ध्यान देनेकी बात है कि भरतके तात्पर्यानुसार *निकले हुए श्रुति प्रबन्धमें भी ये ही तीनों अन्तराल पाये जाते हैं। (अनुच्छेद* १००) इससे यह स्पष्ट है कि समश्रुति प्रबन्धको छोड़कर २२ श्रुतियोंकी अन्य सारी पद्धतियाँ मूलतः समान हैं इसमें अन्तर केवल श्रुतियोंके क्रम में है ।

१०२ इन श्रुति निर्णयोंमें चाहे तो यह मान लिया गया है कि भरतका स्वर ग्राम आधुनिक प्रकृत ग्राम ही है जिसके अन्तराल ⁹⁄₈, ¹⁰⁄₉ और ¹⁶⁄₁₅ हैं या यह कि भरत ग्राम चक्रिक प्रक्रियासे बना है पर २२ श्रुतियोंकी निष्पत्तिके लिए चक्रका बाईसवीं कड़ीपर ही खण्डित हो जाना आवश्यक है पर ऐसा माननेका कोई कारण नहीं बताया गया है ।

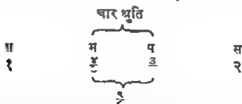
इसलिए यह आवश्यक है कि बिना किसी उत्प्रेक्षाके भरतके निर्देशों पर विचार किया जाये और यह देखा जाय कि ठीक ठीक उन निर्देशोंपर चलकर हम कहाँतक आगे बढ़ सकते हैं ।

पहले यह विचार करना है कि प्राचीन शास्त्रोंमें २२ श्रुतियाँ क्यों मानी गयी । या तो यदि षड्ज ग्रामकी सातों मूर्च्छनाओंको, बिना श्रुतिमानका विचार किये हुए केवल यह मानकर कि तीन प्रकारके स्वर एक-दूसरेसे बड़े हैं स और स के बीच स्थापित कर दिया जाय तो यह देख पड़ेगा कि स–स के बीचमें २० स्थान घिर जाते हैं । इसके अतिरिक्त स से लगा हुआ आरोही अन्तराल और स स लगा हुआ अवरोही अन्तराल बीचके अन्तरालोंसे बहुत बड़ा रह जाता है । यदि इन अन्तरालोंको दो दो हिस्सोंमें बाँट दिया जाये तो स स के बीच अनायास २२ अन्तराल या श्रुतियाँ मिल जाती हैं । पर यह नहीं माना जा सकता कि भरतकी धारणा सभी मूर्च्छनाओंको एक स्थानमें रखनेकी थी (अनुच्छेद ८७) ।

भरतने तीन प्रकारके स्वर माने हैं जिनका अन्तराल एक दूसरेसे बड़ा है—एक सबसे छोटा, दूसरा इससे बड़ा और तीसरा सबसे बड़ा । यह उनकी

बतायी हुई बशमें तीना प्रकारके स्वर निकालनकी विधिसे विदित हाता ह। (परिशिष्ट २ ख ५)। ये तीना स्वर सगीतोपयोगी ह। इनमें से सबसे छोटे स्वरस भी छोटा स्वर गल्म या यन्त्रसे स्पष्ट निकाला जा सकता ह पर स्वतन्त्र रूपमें ऐस स्वरका सगीतमें उपयोग नही हाता। इस अनुपयुक्त, फिर भी सुसाध्य, अणु स्वरक मानका यदि एक श्रुति मान लें ता, अनायास ही सगीतापयागी लघुतम स्वरका दा श्रुति इमसे बडे स्वरको तीन श्रुति और सबस बड स्वरका चार श्रुति मानना पडेगा। इसमें श्रुतिके किसी निश्चित मानकी स्वीकृति नही ह। इस प्रकार जब स्वराको द्विश्रुतिक त्रिश्रुतिक और चतु श्रुतिक बनाएँ निर्धारित हो जाती है ता एक सप्तकमें २२ श्रुतिया का अस्तित्व सामान्य गणनासे ही सिद्ध हा जाता ह।

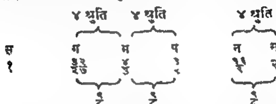
अब भरतक स्वराका विचार करना ह। भरतने मध्यम सवाद और पञ्चम सवादका बडी प्रधानता दी है। सवादक अथमें काट सशय नहीं उठता। कल्लिनाथने जा रत्नाकरकी टीकाम सवादका अथ लगाया ह नि सन्देह वही भरतको भी मान्य था।[1] अर्थात दो स्वराक साथ साथ उच्चारणकी इष्टताको ही सवाद कहते है। इसलिए यह सिद्ध है कि भरतका मध्यम और पञ्चम प्रकृत ह जिसका मान क्रमश ४/३ और ३/२ ह। म और प के अन्तरालको चतु श्रुतिक माना गया ह जिसका मान ९/८ निश्चित है। मप्तकम इन दोना स्वराकी स्थापना इस प्रकार होगी—



यह बताया गया ह कि साधार और मध्यमक बीचका अन्तराल चार

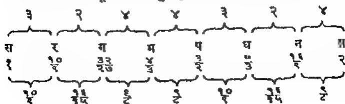
[1] मध्यमस्याविलोपित्व चाधस्तनाना सरिगाणामुपरितनाना पध नीना च द्वयाद्वयोरकत्र सन्त्या वदन सवादिन इति।

श्रुतियाँ और उसी प्रकार निषाद और षड्जके बीचका अंतराल भी चार श्रुतियाँ है। इसलिए इन दो स्वरोंका स्थान भी निश्चित हो जाता है। अर्थात ग का मान $\frac{४}{३} \times \frac{८}{९} = \frac{३२}{२७}$ और न का मान $२ \times \frac{८}{९} = \frac{१६}{९}$ है। अब इन दो स्वरोंका भी समावेश होनेपर सप्तकमें चार स्वर इस प्रकार बैठेंगे—



इन चार स्वरोंके स्थानोंमें कोई भी संशय नहीं हो सकता। र और ध का अंतर ग और न से दो-दो श्रुतियोंका है। इनकी स्थापना एक महत्त्वपूर्ण सबूतके आधारपर की जा सकती है। भरतने दो श्रुति अन्तर वाले र ग और ध न स्वरोंको परस्पर विवादी बताया है। यदि यह विवाद भी संवादकी ही भाँति व्यापक अनुभवपर निर्भर है तो अवश्य ही इसका आधार प्राकृतिक है। प्राकृतिक अनुभव, निरीक्षण और प्रयोगके द्वारा हेल्महोल्जने यह सिद्ध कर दिया है कि दो स्वरोंमें सबसे अधिक विवाद तभी होता है जब इनका पारस्परिक अंतर अर्ध स्वर या $\frac{१६}{१५}$ होता है (अनुच्छेद ५६)। यदि भरतका विवाद भी अनुभवसिद्ध अतएव प्राकृतिक है तो निस्सन्देह र–ग और ध–न का अंतर $\frac{१६}{१५}$ है। इस प्रकार र का मान $\frac{३२}{२७} \times \frac{१५}{१६} = \frac{१०}{९}$ और ध का मान $\frac{१६}{९} \times \frac{१५}{१६} = \frac{५}{३}$ सिद्ध होता है।

अब भरतका सम्पूर्ण ग्राम प्रस्तुत होता है—



यह ग्राम में स्थान बिल्कुल वैसा ही है जैसा अनुच्छेद १०० में दिया गया है। यदि 'संवाद' और 'विवाद' के प्राकृतिक आधारको मान लिया जाये तो भरत ग्रामका यह संस्थान निर्विवाद सिद्ध हो जाता है।

अन्तमें इस ग्रामके व्यावहारिक रूपपर भी थोड़ा विचार करना आवश्यक है। इस ग्रामका ऋषभ प्रचलित ग्रामोंके ऋषभसे एक कोमा उतरा हुआ है। पर भरतका ग्राम अवरोही था। और यह अनुभवसिद्ध है कि स्थिर स्वरोंको छोड़ शेष स्वरोंकी प्रवृत्ति अवरोहणमें आपसे आप नीचे उतरनेकी और आरोहणमें ऊपर चढ़नेकी होती है। इसलिए यदि भरत ग्रामका आधुनिक प्रथाके अनुसार आरोही क्रममें उपयोग किया जाये तो यह ग्राम आपसे आप काफी ठाठमें या मध्ययुगीय शुद्ध ग्राममें (अनुच्छेद ११३) बदल जाता है। इस विषयपर आगे भी प्रकाश डाला जायेगा।

१०२ यहां एक बातपर और विचार करना उचित है। कुछ पाश्चात्य पण्डितोंका मत है कि प्रकृत अर्ध स्वर (१६/१५) की धारणा तभी होती है जब प्रकृत गान्धार (५/४) का प्रयोग होने लगता है। और तभी लघु स्वर (१०/९) का भी प्रादुर्भाव होता है। पाश्चात्य देशोंमें प्रकृत ग्रामका उपयोग, विद्वानोंके प्रभावसे और पहले पहल ज़ार्लिनो (१५४०-१५९४) के विधानपर होने लगा है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भरत ग्राममें लघु स्वरका अस्तित्व कष्ट कल्पना मात्र है। पर भारतीय संगीतमें लघु स्वर (१०/९) और अर्ध स्वर (१६/१५) परम्परासिद्ध हैं। आधुनिक विज्ञान तथा पाश्चात्य पद्धतिसे पूरी तरह अनभिज्ञ अहोबलने जो तारकी लम्बाईसे स्वरोंको निर्धारित किया है उनमें ये दोनों अन्तराल निश्चित रूपमें मौजूद हैं, यद्यपि प्रकृत गान्धार (५/४) की उन्होंने चर्चा नहीं की है। पूर्वाङ्गमें उनके स्वरोंका स्थान अन्तरालके साथ, इस प्रकार है—

स	रे	ग	म
१	९/८	५/४	४/३

अन्तराल: ९/८, १६/१५, १०/९

(अनुच्छेद ११३)

इसमें दोनों ही प्रकृत अंतराल मौजूद हैं, सिर्फ उनके क्रममें भेद है। बात यह है कि लघु स्वर ($\frac{१६}{१५}$) की उत्पत्तिके लिए प्रकृत गांधार ($\frac{५}{४}$) उतना ही उपयोगी है जितना कोमल गांधार ($\frac{६}{५}$)।

जब भारतीय परम्परामें इन स्वरोंका अस्तित्व पाया जाता है तो भरत ग्राममें इनका होना असम्भव नहीं है। फिर भरत ग्राममें यदि लघु स्वरका अस्तित्व न होता तो वे भी ग्रामको २४ श्रुतियोंमें बाँटते जैसा कि प्राचीन यूनानी पद्धतिमें किया गया है। इस पद्धतिमें ग्रामको २४ डायसिसमें बाँटा गया है जैसे—

४ ४ २ ४ ४ ४ २

भरतका २२ श्रुतियोंका निरूपण ही इस बातको सिद्ध करता है कि उनके ग्राममें लघु स्वरका अस्तित्व है।



२५ मध्यकालीन स्वर-ग्राम

१०४ भारतीय संगीत-कलाके विकासमें जिस परिवर्तनका उपक्रम मतङ्ग शार्ङ्गदेवके कालमें दीख पड़ता है वह मध्यकाल (१६वीं सदी) में पूरी तरह चरितार्थ हो गया। इसके अतिरिक्त इस कालमें स्वर, ग्राम आदि निरूपणकी नयी विधियोंका आविष्कार हुआ जिससे इस युगकी धारणाएँ और आधारभूत सिद्धान्त आज सामान्यतः सुबोध जान पड़ते हैं। भारतीय संगीतमें इस नये युगके प्रतिनिधि, दक्षिणमें रामामात्य और उत्तरमें अहोबल माने जाते हैं।

इस युगमें मध्यम-ग्रामका निश्चित रूपसे लोप हो गया और केवल षड्ज ग्राम ही संगीतका आधार रहा। शार्ङ्गदेवकी परिभाषामें स्वरके साथ जो अन्तरालकी धारणा थी वह अब बदलकर स्वरित द्वारा निर्धारित स्थान या तारताकी धारणा प्रबल हो गयी। अर्थात् षड्जका आधार स्वर या स्वरित माना जाने लगा। षड्ज और पञ्चम सदाके लिए नियत स्वर निर्दिष्ट हुए जिनमें किसी प्रकारकी विकृति नहीं हो सकती। मध्यम ग्रामके अवशेष तीव्र मध्यम या प्रतिमध्यमको भारतीय संगीतमें स्वतन्त्र स्वरके रूपमें ग्रहण हुआ। मूर्च्छनाओंका चाहे तो लोप हो गया या नये अर्थमें इसका प्रयोग होने लगा। रागोंके वर्गीकरणके लिए विकृत स्वरोंके उपयोगसे मेलोंका निरूपण हुआ। पर सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि स्वर-ग्रामका भरत शार्ङ्गदेव द्वारा निर्दिष्ट अवरोही क्रमका लोप होकर आरोही-क्रमकी प्रतिष्ठा हुई।

[क] दाक्षिणात्य पद्धति

१०५ मध्यकालीन स्वर ग्रामकी विवेचनामें पहले रामामात्यकी दाक्षिणात्य पद्धतिका संक्षिप्त विवरण आवश्यक है। रामामात्यने शार्ङ्गदेव

न १२ विकृत स्वरामें से सातका रखकर पाँचका परित्याग कर दिया। शुद्ध और विकृत मिलाकर उनके १४ स्वर ये हैं—

स, शुद्ध र, शुद्ध ग (पञ्चश्रुति र), साधारण ग अन्तर ग, च्युत मध्यम ग, शुद्ध म च्युत पञ्चम म शुद्ध प, शुद्ध ध शुद्ध न (पञ्च श्रुति ध) कैशिकी न, काकली न और च्युत षडज न। अच्युत षडज (काकली निषाद) च्युत षडज ऋषभ, अच्युत मध्यम (अन्तर गान्धार), मध्यम ग्राम प (च्युत मध्यम) और मध्यम ग्राम ध, इन पाँच स्वरोंका स्थान नहीं बदलता इसलिए रामामात्यने इन्हें विकृत नहीं माना है। इससे यह सिद्ध है कि उन्होंने स्वरका प्रयोग नियत तारताकी ध्वनिके अर्थमें किया है। आरोही ग्राम और षडजको स्वरित माननेका यह स्वाभाविक परिणाम है। मध्यकालमें स्वरितकी भावना प्रबल हो गयी थी जो आधुनिक भारतीय संगीतकी सुदृढ़ भित्ति समझी जा सकती है (अनुच्छेद ११७)।

रामामात्यके अनुयायी सोमनाथने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि पूर्व आचार्यों द्वारा कल्पित ५ विकृत स्वर सम ध्वनि होनेके कारण विकृत नहीं माने जा सकते। उन्होंने यह भी बताया है कि इनका रागोंमें पञ्चमका विस्तार प्रचलित नहीं है (परिशिष्ट २ च)। पर सोमनाथने रामामात्यके ७ विकृत स्वरोंकी जगह १५ माने हैं।

शुद्ध ग और शुद्ध न विकल्पसे पञ्चश्रुति र और पञ्चश्रुति ध मेल रचनाके लिए ही कहे गये हैं। मेल रचनाके इन दो सामान्य नियमोंको मेलकर्ताके सभी प्रवर्तकोंने माना है—एक स्वर-संस्थान ७ स्वरोंका सम्पूर्ण हो दूसरा, एक स्वरके दो भेद मेलमें एक साथ नहीं आ सकते। जैसे, किसी मेलमें शु ग और सा ग या अ ग एक साथ नहीं आ सकते। ऐसा होनेसे मेलमें छह ही स्वर रह जाते हैं। इसलिए ऐसी दशामें शु ग को पञ्चश्रुति र कहा जायगा यद्यपि दोनोंके स्थानमें कोई भेद नहीं है। इसी तरह जिस मेलमें शु र हो उसमें वह शु ग ही कहा जायेगा, पञ्चश्रुति र नहीं। वैकल्पिक स्वर संज्ञाका यही तत्त्व है।

रामामात्यने १४ शुद्ध विकृत स्वरोंमें से सात-सात स्वरोंको लेकर २० मेलोंकी रचना की। ये जनक मेल कहे गये जिनमें से प्रत्येक से ओडव षाडव आदि भेद करके अनेक जन्य राग निकाले जा सकते हैं। यह मेल आधुनिक हिंदुस्तानी पद्धतिके 'ठाठ' का पर्याय है (अनुच्छेद १२४)। यों तो 'मेल' 'मेलन' आदिका प्रयोग पहले भी हुआ है पर मेलके द्वारा रागों के विधिवत वर्गीकरणके प्रवर्त्तक रामामात्य ही समझे जा सकते हैं। सोमनाथने जनक मेलोंकी संख्या बढ़ाकर २३ की। पर अंततम वेंकटमखीने ७२ मेलकर्त्ताओंके विधानके द्वारा जनक मेलोंकी संख्या चरम सीमा तक पहुँचा दी, जिससे बड़ी संख्या किसी भी गणनासे नहीं प्राप्त हो सकती। यह ७२ मेलकर्त्ताका विधान आज भी दाक्षिणात्य पद्धतिमें माना जाता है।

रामामात्यने प्रयोगमें 'च्युत मध्यम गान्धार और च्युत षड्ज निषाद' को 'अंतर गान्धार' और 'काकली निषाद' का प्रतिनिधि मान लिया है (परिशिष्ट २ घ २)। इससे व्यवहारमें शुद्ध विकृत मिलाकर १२ स्वर रह गये। यह १२ स्वरका ग्राम केवल भारतीय—दाक्षिणात्य और उत्तरीय—संगीतका ही आधार नहीं है वरन् प्रायः सार्वभौम है। प्रायः सभी देशोंमें अब सप्तक १२ स्वरोंमें बाँटे जाते हैं। पाश्चात्य देशोंमें भी इसी क्रोमेटिक स्केल का प्रचार है। इसी कारणसे १२ स्वरवाले सममाधृत ग्रामका भी इतना अधिक प्रचार हुआ। इससे यह न समझना चाहिए कि प्रत्येक पद्धतिमें इन बारह स्वरोंका मान भी एक ही है। पर अब स्वरका ग्राम आधुनिक विश्व संगीतका सर्वव्यापी अंग-सा जान पड़ता है। वेंकटमखीने भी १२ स्वरोंको मानकर ही ७२ मेलकर्त्ताओंकी सृष्टि की है (अनुच्छेद १०९)।

१०८ रामामात्यने बड़े ही मौलिक ढंगसे स्वयंभू स्वरों की कल्पना की है। स्वयंभू स्वरकी व्याख्यामें बहुतेरी कल्पनाएं दौड़ायी गयी हैं। रामामात्य इसकी परिभाषा बड़े ही सरल शब्दोंमें देते हैं। वे कहते हैं—"स्वयम्भुवः स्वराः प्रोक्ता न स्वबुद्ध्या प्रकल्पिताः।" इसका सीधा अर्थ यह है कि स्वयंभू स्वरोंकी कल्पना बुद्धिके द्वारा नहीं की गयी है, अतएव ये

कृत्रिम नहीं है। इनका आधार प्राकृतिक है। आगे वे कहते हैं कि इनका करके ८ या १२ श्रुति अन्तरवाले स्वरोंको परस्पर संवादी माना है। अब वे स्वरोंको प्रमाणित करनेके लिए दूसरे मार्ग (नियम) का निर्देश करते हैं। फिर वे अचल शुद्ध मेल नामक रुद्रवीणाके चार तारोंके नीचे ६ सारियों पर स्वरोंकी स्थापना करके इन सभी स्वरोंको स्वयम्भू प्रमाणित करते हैं। उनकी स्वयम्भू स्वरोंकी इस निरुक्तिसे यह सिद्ध है कि रामामात्यने उन स्वरोंको स्वयम्भू माना है जो किसी दूसरे प्राकृतिक स्वरसे षड्ज-पञ्चम या षड्ज मध्यम भावसे निकाले जा सकें। उन्होंने बताया है कि षड्ज और पञ्चम तथा षड्ज और मध्यमको तो रत्नाकर आदिने भी परस्पर संवादी माना है। इसलिए रामामात्यके सिद्धान्तसे प और म स्वयम्भू हैं। अब प और शुद्ध ग (हिन्दुस्तानी र) और फिर शुद्ध ग और शुद्ध न (हिन्दुस्तानी ध) में भी षड्ज मध्यम भाव है इसलिए शुद्ध ग और शुद्ध न भी स्वयम्भू हैं। इसी तरह यह शृंखला आगे बढ़ती है। अर्थात् रामामात्यने चक्रिक प्रक्रियासे स्वरोंका निरूपण किया है और इस प्रक्रियासे निष्पन्न स्वरोंको ही उन्होंने स्वयम्भू माना है।

सोमनाथने रामामात्यके स्वयम्भू स्वरकी स्वतन्त्र व्याख्या करनेका प्रयास किया है। वे कहते हैं कि संवादी स्वरोंका समाज (संहति) रञ्जनकारी होता है। षड्ज और म संवादी हैं जिनका अन्तर १२ या ८ श्रुतियोंका है। अब स-प-म की स्वयम्भूताके लिए बिना युक्तिवाली कल्पना किये बिना सुन्दरी और तारके स्पर्श बिना इनकी निष्पत्ति बताता है। फिर वे इसकी विधि बतलाते हैं कि वीणाके चौथे मन्द्र स के तारकी चौथी सुन्दरी मन्द्र प की है जिसपर तारको स्पर्श किये बिना ही अंगुली रखकर बजानेसे मन्द्र प का स्वर निकलता है जैसा कि तारको सुन्दरीसे दबानेपर। सोमनाथने इस मौलिक युक्तिसे सभी स्वयम्भू स्वरोंको प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है। इस व्याख्याका इतना अंश तो समीचीन है कि जिन स्वरोंमें १२ या ८ श्रुतियोंका अन्तर है वे स्वयम्भू हैं। पर तारको सुन्दरीमें

बिना सटाये स्वयम्भू स्वर निकालनेकी युक्ति असगत ही नहीं, पूरी तरह भ्रान्त है। शायद सामनाथकी इसी युक्तिसे प्रेरित होकर रामस्वामीने स्वरमेलकलानिधिकी भूमिकामें स्वयम्भू स्वरका आवर्तक उपस्वर सिद्ध करनेका प्रयास किया है। पर उनकी यह कल्पना निराधार प्रतीत होती है। उन्होंने रामामात्यके सरल और सुस्पष्ट अर्थकी उपेक्षा करके ध्वनि विज्ञानके आवर्तककी धारणा मात्र निकालनेकी चेष्टा की है। आवर्तकका ज्ञान संगीतके पण्डितके लिए आवश्यक नहीं है। पर रामामात्यके लिए यह प्रशंसाकी बात है कि उन्होंने सम्भवतः भारतीय संगीतके इतिहासमें पहले पहल चक्रिक प्रक्रियाका प्रयोग ग्रामकी रचनामें इस दक्षतासे किया है।

१०७ स्वयम्भू स्वरोंकी कल्पनाके आधारपर रामामात्य-द्वारा स्वरोंका निरूपण चित्रमें दिखाया जाता है जिससे इस विचारकी भी पुष्टि होती है कि उनका स्वयम्भू स्वरोंका तात्पर्य पञ्चम (या मध्यम) चक्र द्वारा प्राप्त स्वरोंसे था। चित्रमें शुद्धमेल रुद्रवीणाके चार तार स प स, म,के नीचे ६ सारियों पर रामामात्य-द्वारा निर्दिष्ट स्वरोंकी संज्ञा दी गयी है और साथ साथ सरल गणनासे निकला हुआ मान भी दिया गया है। स्वरोंकी उत्तरोत्तर उत्पत्ति की सीढ़ियाँ कोष्ठकमें अङ्क देकर और बाणांक द्वारा सूचित की गयी है।

तार →	१	२	३	४
सारी ↓	स $\frac{1}{1}$	प $\frac{3}{2}$	(१) स १	म $\frac{4}{3}$
१	[[illegible] शु र]	[[illegible] प (५)]	[[illegible] शु ग]	[शु प म [illegible]]
२	[[illegible] शु म]	[[illegible] शु न (२)]	[[illegible] शु ग]	[(१) शु प [illegible]]
३	[[illegible] सा ग]	[[illegible] धै न (४)]	[[illegible] स म]	[शु प (५) [illegible]]
४	[[illegible] च्युम ग]	[[illegible] च्यु प शु (३)]	[[illegible] शु म ग]	[म(२) शु न [illegible]]
५	[[illegible] सा म]	[१ शु स]	[शु म]	[कै न (४) [illegible]]
६	[[illegible] उप म]	[[illegible] शु र]	[[illegible] च्यु प म]	[च्यु प न (३) [illegible]]
	१	२	३	४

छह सारियापर स्वरोंकी स्थापनाके बाद रामामात्य स्वरोंको प्रमाणित करते हैं। वे कहते हैं (परिशिष्ट २ प ३) कि चौथे तारके नीचे दूसरी सारीपर मन्द्र पञ्चम, [प (१)] स्वयम्भू है [स (१) की अपेक्षा] इसलिए दूसरी सारीपरके सभी स्वर स्वयम्भू हैं। दूसरी सारीपर दूसरे तारके नीचे अनुमन्द्र शुद्ध निषाद [शु नि (२)] के प्रमाणसे चौथे तारके नीचे चौथी सारीपरका मन्द्र शुद्ध निषाद [शु नि (२)] स्वयम्भू है इसलिए चौथी सारीपरके सभी स्वर स्वयम्भू हैं। चौथी सारीपर दूसरे तारके नीचे अनुमन्द्र च्युतषड्ज निषाद [च्यु ष नि (३)] के प्रमाणसे चौथे तारके नीचे छठी सारीपरका मन्द्र [च्यु ष नि (३)] स्वयम् है इसलिए छठा सारीके सभी स्वर स्वयम्भू हैं। पाँचवी सारीपर स और म स्वयम्भू हैं इसलिए इसपरके सभी स्वर स्वयम्भू हैं। चौथे तारके नीचे पाँचवी सारीपर मन्द्र काकलि निषाद [क नि (४)] के प्रमाणसे दूसरे तारके नीचे तीसरी सारीपरके [क नि (४)] को मानयुक्त करनेपर इसमें उत्पन्न सभी स्वर स्वयम्भू हैं अर्थात् तीसरी सारीपरके सभी स्वर स्वयम्भू हैं। तीसरी सारीपर चौथे तारके नीचे मन्द्र शुद्ध धैवत [शु ध (५)] के प्रमाणसे दूसरे तारके नीचे पहली सारीपरके अनुमन्द्र शुद्ध धैवत [शु ध (५)] के प्रमाणसे दूसरे तारके नीचे पहली सारीपरके अनुमन्द्र शुद्ध धैवत [शु ध (५)] मानयुक्त होनेपर सभी प्रामाणिक स्वर उत्पन्न होते हैं अर्थात् पहली सारीपरके सभी स्वर स्वयम्भू हैं।

इस प्रकार रामामात्यने छह सारियापर स्थापित सभी स्वरोंको प्रमाणित किया है। इन प्रमाणित स्वरोंका मान अब बड़ी सरलतासे निकाला जा सकता है। जैसे स १ से दूसरी सारीके शु प का मान $\frac{3}{2}$ हुआ इसलिए दूसरी सारीके अन्य स्वरोंका मान—

शु प $\frac{3}{2}$→शु गांधार (शु ग) = $\frac{3}{2}\times\frac{3}{4}=\frac{9}{8}$→शु नि = $\frac{9}{8}\times\frac{3}{4}=\frac{27}{32}$ शु नि $\frac{27}{32}$→शु नि (२) $\frac{27}{16}$ इससे चौथी सारीके स्वरोंका मान शु नि (२) $\frac{27}{16}$→च्युत मध्यम गांधार (च्यु म ग) = $\frac{27}{16}\times\frac{3}{4}=\frac{81}{64}$→च्युत षड्ज निषाद (च्यु ष नि) = $\frac{81}{64}\times\frac{3}{4}=\frac{243}{256}$। इस प्रकार पटा-कडी

आगे बढ़ते जानेसे सभी स्वरोंका मान निकल आता है। रामामात्यने यथार्थ कहा है कि इन स्वरोंकी प्रामाणिकताको कोई 'अन्यथा नहीं कर सकता'। यहाँ तात्पर्य रामामात्यके 'न स्वबुद्ध्या प्रकल्पिता' का है। इस विधिसे प्रत्येक स्वरका मान निकालकर चित्रमें स्वरोंके साथ दे दिया गया है।

चित्रके सभी स्वरोंके मानको मध्य सप्तकमें लाकर नीचे दिया जाता है—

स	शु र	शु ग	साधारण ग	च्युत मध्यम ग
१	२५६/२४३, २१८७/२०४८	९/८	३२/२७	८१/६४
शु म	च्युत पञ्चम म	शु प	शु ध	शु न
४/३	१०२४/७२९, ७२९/५१२	३/२	१२८/८१	२७/१६
कैशिकी न	च्युतषड्ज न	स		
१६/९	२४३/१२८	२		

इनमें शु र और च्यु प म के दो दो मान हैं। शु र का पहला मान २५६/२४३ एक लीमा (२३ से) है और दूसरा २१८७/२०४८ एक एपोटोम (२८.६ सेवट) है। यह एक अन्य स्वरका मान है। इसलिए २१८७/२०४८ = १६/१५ लिया जा सकता है। इसी तरह च्यु प म का पहला मान १०२४/७२९ = १४७.६ स = ४५/३२ है और दूसरा मान ७२९/५१२ = १५३.४ स = ६४/४५ है। इसलिए इसके दोनों मान क्रमशः ४५/३२ और ६४/४५ लिये जा सकते हैं। इस संशोधनके बाद ऊपरका स्वर समुदाय इस प्रकार लिखा जायगा—

स	शु र	शु ग	सा ग	च्यु म ग	शु म
१	२५६/२४३, १६/१५	९/८	३२/२७	८१/६४	४/३
च्यु प म	शु प	शु ध	शु न	कै न	च्यु प न
४५/३२, ६४/४५	३/२	१२८/८१	२७/१६	१६/९	२४३/१२८
स					
२					

शु र और च्यु प म के दोनों मानोंमें एक-एक कोमाका अन्तर है। इसका कारण यह है कि शु र (१६/१५) और च्यु प म (४५/३२) आरोही

पञ्चम चक्रसे निकला है और शु र (२५६/२४३) और च्यु प म (४५/३२) अवरोही पञ्चम चक्रसे। इन दो स्वरोंके दो-दो मानोंमें से कोई भी एक आवश्यकतानुसार प्रयोगमें आ सकता है। किसी एकको या दोनों ग्रामसे निकाल देनेका कोई कारण नहीं क्योंकि रामामात्यके इस ग्राममें आरोही और अवरोही दोनों ही प्रकारके चक्रसे निकले हुए स्वर सम्मिलित हैं— स से आरोही चक्रसे ९/८, ८१/६४, ३/२, २७/१६ और २४३/१२८ ये पायथागोरसके ग्रामके स्वर तथा ३/२ और ४/३ हैं और स से अवरोही चक्रसे २५६/२४३, ३२/२७, ४/३, ४५/३२, १२८/८१ और १६/९ हैं। रामामात्यका शुद्ध ग्राम—

स	र	ग	म	प	ध	न	स
१	२५६/२४३	९/८	४/३	३/२	१२८/८१	२७/१६	२

निकलता है। यहाँ र ध संवादके उद्देश्यसे र १६/१५ के बदले र २५६/२४३ रखा गया है। इस शुद्ध मेलको मुखारी या कनकाङ्गी कहते हैं। आधुनिक दाक्षिणात्य पद्धतिमें भी सिद्धान्त रूपमें यही शुद्ध मेल माना जाता है। स्वयम्भू स्वरके सिद्धान्तपर इन १२ स्वरोंका निरूपण हुआ है। इस समुदायमें रामामात्य-द्वारा स्वीकृत अंतर गान्धार और काकली निषादका अस्तित्व नहीं पाया जाता। सम्भवतः ये दो स्वर क्रमशः प्रकृत ग (५/४) और इसका संवादी न (१५/८) हैं। ये पञ्चमचक्र (आरोही और अवरोही) की प्रक्रियासे नहीं निकल सकते। ये तो गान्धार-संवाद या पञ्चम आवर्त्तके उपयोगसे ही पैदा होते हैं। इसलिए इनका रामामात्यके स्वर-समुदायमें नहीं पाया जाना आश्चर्यकी बात नहीं। इसीलिए उन्होंने च्यु म ग और च्यु प न को इनका प्रतिनिधि मान लिया है। पर इन दो स्वरोंका अभाव भी इस धारणाको पुष्ट करता है कि स्वयम्भू स्वरका अर्थ चक्रिक क्रियासे प्राप्त स्वर ही है। यदि स्वयम्भूका तात्पर्य रामस्वामीके कथनानुसार, उपस्वरोंसे होता तो रामामात्य ग ५/४ को कभी न छोड़ते क्योंकि यह तारके उपस्वरमें स्वभावतः स्पष्ट पाया जाता है। आधुनिक हिन्दुस्तानी स्वरोंसे दाक्षिणात्य स्वरोंकी तुलना नीचे दी जाती है—

दाक्षिणात्य—	स	रे	ग	म	प	ध	नि
हिंदुस्तानी—	स	रे	रे	म	प	ध	ध

इस ग्रामकी विशेषता यह है कि इसके दोनों अंगोंमें पहले लगातार दो अर्ध स्वर आते हैं फिर एक बड़ा अन्तराल $\frac{32}{27}$ (ग) का आता है। यह प्राचीन यूनानी अर्ध स्वरक जातिका ग्राम है (अनुच्छेद ६७)।

१०८ यहाँ एक बातपर विचार करना आवश्यक है। रामामात्यने विकल्पसे अपने शुद्ध रे $\frac{256}{243}$ और शुद्ध ग $\frac{32}{27}$ को त्रिश्रुतिक रे और पञ्चश्रुतिक कहा है। उन्होंने ऐसा इसलिए किया है कि उनके मतानुसार यह ग्राम भरत शार्ङ्गदेवका शुद्ध ग्राम है। दाक्षिणात्य पण्डित आज भी इस बातको मानते हैं कि दक्षिणमें प्रचलित शुद्ध मेलमें ही भरत शार्ङ्गदेवकी परम्परा पायी जाती है। पर भरतका जो षडज ग्राम पहले निर्धारित हुआ है उससे यह दाक्षिणात्य शुद्धमेल बहुत ही भिन्न है। जिन आधुनिक दाक्षिणात्य विद्वानोंने उपर्युक्त भरत ग्रामको माना है और साथ-ही-साथ आधुनिक दाक्षिणात्य शुद्ध स्वरोंके ऊपर लिये हुए मानोंको भी स्वीकार किया है वे भी यह घोषित करते हैं कि दाक्षिणात्य शुद्धमेल प्राचीन भरत ग्राम ही है। यह प्रत्यक्ष विरोध मान्य नहीं हो सकता। भरत ग्राम दाक्षिणात्य शुद्धमेलसे नितान्त भिन्न है। इस विरोधकी आशंकासे ही कुछ दाक्षिणात्य पण्डितोंने शुद्ध रे को द्विश्रुतिक रे, शुद्ध ग को चतुश्श्रुतिक रे और साधारण ग को षट्श्रुतिक रे माना है। ऐसा माननेसे दाक्षिणात्य मेलका भरत-ग्रामसे विभिन्नता स्पष्ट हो जाती है। भरतके निर्देशानुसार म प और ग म अन्तराल समान है, जो चतुश्श्रुतिक माने गये हैं। व्यंकटाद्रिका म ग म अन्तराल म-प अन्तरालसे बहुत कम है। ग म $\frac{256}{243}$ और म-प $\frac{9}{8}$ है। इस प्रत्यक्ष विभेदके कारण व्यंकटाद्रिको भरतका शुद्ध ग्राम मानना उचित नहीं है।

दाक्षिणात्य ग्राम और शार्ङ्गदेव-ग्राममें समता स्पष्ट है। दाक्षिणात्य पद्धतिमें स्वरोंकी विकृति केवल उतरनेकी ओर होती है। इसका उत्तरीय

पद्धतिसे यही भेद है जिसमें विकृति तीव्रता और मृदुता दोनों ओर होती है। दाक्षिणात्य पद्धतिमें स र और र-ग अन्तराल आधे आधे स्वरके हैं। इसलिए न तो 'र' को उतारा जा सकता और न ग को। क्योंकि अर्ध स्वरसे छोटा अन्तराल संगीतोपयोगी नहीं होता। इसीलिए ऋषभकी विकृति चतुःश्रुतिक या पञ्चश्रुतिक ऋषभमें और गान्धारकी साधारण गान्धार आदिमें होती है। पर तथ्य यह है कि दाक्षिणात्य पद्धतिमें र और ध की कोई विकृति नहीं होती। चतुःश्रुतिक र और पञ्चश्रुतिक र शुद्ध ग और साधारण ग के ही दूसरे नाम हैं। ऐसे ही चतुःश्रुतिक ध और षट्श्रुतिक ध शुद्ध न और कैशिकी न से भिन्न नहीं हैं। यह मात्र विकल्प भिन्न भिन्न मेलोंकी रचनाके लिए काममें लाया जाता है (अनुच्छेद १०५)। र स से और ग तथा ध से प और न एक-एक अर्ध स्वरके अन्तरालपर हैं। इस तरह र और ध, दोनों क्रमशः स और ग तथा प और न के बीच ऐसे फँसे हैं कि इधर उधर विचलित नहीं हो सकते। अर्थात् दाक्षिणात्य पद्धतिमें र और ध में कोई विकार नहीं होता और ग और न की विकृति तीव्रताकी ओर होती है। शार्ङ्गदेवके शुद्ध ग्राममें भी र और ध अचल रहते हैं और ग और न तीव्रताकी ओर विकृत होते हैं (अनुच्छेद ९३)। इस समतासे यह सिद्ध होता है कि शार्ङ्गदेवका शुद्ध ग्राम दाक्षिणात्य शुद्ध ग्राम कनकाङ्गीसे भिन्न नहीं था। अर्थात् दाक्षिणात्य शुद्धग्राममें भरतकी नहीं वरन् शार्ङ्गदेवकी परम्परा पायी जाती है। शार्ङ्गदेवके पितामह भास्कर पण्डितका आदि निवास काश्मीर था। पर बादमें ये देवगिरिके यादव राजाके दरबारमें चले गये थे। शार्ङ्गदेवने वहीं तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें रत्नाकरकी रचना की है। इसलिए इनका कर्नाटकी पद्धतिका विधायक होना स्वाभाविक है।

१०६ सत्रहवीं शताब्दीमें वेंकटमखीने अपने ग्रंथ चतुर्दण्डी प्रकाशिकामें ७२ मेलोंका निरूपण किया है। उन्होंने पाँच विकृत स्वर माने हैं, जैसे, साधारण गान्धार (ग'), अन्तर गान्धार (ग"), वराली मध्यम (म'), कैशिकी निषाद (न') और काकली निषाद (न")।

इस प्रकार इनके ग्राममें १२ स्वराके स्थान है। जैसे—

स र ग ग' ग' म म' प ध न न' न' स।

हिन्दुस्तानी स्वर सकेतके अनुसार इन्हें इस प्रकार लिखेंगे —

स र र ग ग म म' प ध ध न न स।

इनमें ग और ग' तथा न और न' ये दो दो नाम है जैसे, ग के शुद्ध गान्धार और पञ्चश्रुतिक ऋषभ, ग' के साधारण गान्धार और षट्श्रुतिक ऋषभ, न के शुद्ध निषाद और पञ्चश्रुतिक धवत और न' के कैशिकी निषाद और षटश्रुतिक धवत। मेलम तीन प्रकारके ऋषभो, गान्धारो धवतो और निषादोंका भेद दिखानेके लिए वेंकटमखीने इनके क्रमश र, रि रु, ग गि गु ध धि धु और न नि नु सकेत माने हैं। जैसे—

(१) शुद्ध ऋषभ	र	(३) साधारण गान्धार } षटश्रुतिक ऋषभ }	गि रु
(२) शुद्ध गान्धार } पञ्चश्रुतिक ऋषभ }	ग रि	(४) अन्तर गान्धार (परिशिष्ट २ छ १)	गु

इन १२ स्वरोमे-से भिन्न भिन्न 'मेलो'की रचनाके लिए कोई ७ स्वर लिये जाते है जिनमे स प और दो मे से एक म का होना आवश्यक है। शेष चार स्वरोमे पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गके अवशिष्ट चार चार स्वरोमें से कोई दो-दो सम्मिलित किये जाते है। इस नियमके अनुसार यह गणितसे सिद्ध किया जा सकता है कि ७२ मेलसे अधिक नही बनाये जा सकते। यहा दृष्टान्त रूपमें पूर्वाङ्ग (स–म) के ६ सम्भव समुदाय दिये जाते है जिनमे ऊपर वेंकटमखीकी स्वर सज्ञा और नीचे हिन्दुस्तानी स्वर सज्ञाका व्यवहार किया जाता है। (परिशिष्ट २ छ २) जैसे—

(१)	स	र	ग	म
	स	र	र	म
(२)	स	र	ग'	म
	स	र	ग	म
(३)	स	र	ग	म
	स	र	ग	म

(४)	स	ग	ग′	म
	स	र	ग॒	म
(५)	स	ग	ग″	म
	स	र	ग	म
(६)	स	ग	ग″	म
	स	ग॒	ग	म

इसी प्रकार उत्तराङ्ग (प स) में भी ६ समुदाय बन सकते हैं । अब पूर्वाङ्गके ६ समुदायोंमें से किसी एकको उत्तराङ्गके किसी समुदायसे जोड़ दिया जाय तो ७ स्वरोंका पूरा मेल तैयार हो जाता है । इस प्रकार पूर्वाङ्गके एक एक समुदायसे छह छह मेल तैयार होते हैं और इस तरह शुद्ध म वाले मेलोंकी कुल संख्या ३६ होती है । फिर इसी क्रियासे तीव्र म वाले मेलोंकी संख्या ३६ होगी अतएव मेलोंकी चरम संख्या ७२ होगी । वेंकटमखीने इन ७२ मेलकर्त्ताओंको भिन्न भिन्न संज्ञाएँ दी हैं जिनमें अब कुछ परिवर्तन हुआ है । (परिशिष्ट १ क)

इन ७२ मेलोंकी रचना वेंकटमखीने केवल गणितके कौतूहलकी तृप्तिके लिए नहीं की थी । इन मेलोंके आधारपर अनेक नये रागोंकी रचनाएँ भी हुईं जो आज भी प्रचारमें पाये जाते हैं यद्यपि सभी मेल काममें नहीं आते (परिशिष्ट २६३) ।

यह माना जाता है कि यह ७२ मेलकर्त्ताओंकी व्यवस्था वेंकटमखीकी ही उद्भावना है । पर १९३४ ई० में मद्रास म्युजिक एकेडमीके सम्मेलनमें इन्दौरके नासिरुद्दीन खाँने बताया था कि यह पद्धति वेंकटमखीसे प्राय २०० वर्ष पहले भी प्रचलित थी । प्रमाणमें उन्होंने बैजूनायकके चार ध्रुपद बताये जिनमें ७२ मेलकर्त्ताओंके नाम आये हैं ।[1]

---

१ ऐसा जान पड़ता है कि वेंकटमखीने उत्तरीय संगीतकी भी शिक्षा ग्रहण की थी । वे अपने गुरुका नाम 'तानप्पा' बताते हैं (परिशिष्ट २ छ ४) । सम्भव है कि ये तानप्पा तानसेन ही हों । इसकी पुष्टि इस बातसे भी होती है कि वेंकटमखीने गोपाल नायककी दो स्थानोंमें चर्चा की है जो तानसेनकी गुरु परम्पराके आदि आचार्य थे (परिशिष्ट २ छ ५)।

[ख] उत्तरीय पद्धति

११० मध्यकालीन उत्तरीय पद्धतिके प्रतिनिधि अहोबल, हृदयनारायण, लोचन और श्रीनिवास समझे जाते ह जो प्राय समकालीन हैं। इनके ग्र थ क्रमश सगीतपारिजात, हृदयकौतुक, रागतरगिणी और रागतत्त्व विबोध हैं। इनमें अहोबल प्रमुख माने जाते हैं क्योकि अ य ग्र थकार इन्ही क अनुयायी हैं।

इस युगकी उत्तरीय पद्धतिमें भी वे सारे परिवतन पाये जाते ह जिनका प्रसग पीछे दाक्षिणात्य पद्धतिमें आ चुका ह। बल्कि रत्नाकरकी पद्धतिमें जिन परिवतनोको दाक्षिणात्य पण्डितोने सकोचके साथ ग्रहण किया है, अहोबल आदिने उनका निश्चयके साथ निरूपण किया ह। जस, व्यवहार में पञ्चम और षडजको नियत स्वर मानकर भी रामामात्यने स्वर-सप्तामें च्युत षडज न और च्युत पञ्चम म का प्रयोग किया ह। ऐसे ही सोमनाथने यह बताकर भी कि पञ्चमकी विकृति नही होती, मदु प' का व्यवहार किया ह। अहोबल आदिकी पद्धतिम पञ्चमकी कोई भी विकृति नही पायी जाती।

१११ भरतक निर्देशके अनुसार ही अहोबलने भा ग्रामके स्वरोमें षडज-पञ्चम सवादको महत्त्व दिया ह। वे कहते ह—"षड्ज-पञ्चमभावेन षड्ज ज्ञेया स्वरा बुधै।' अथात बुद्धिमान षड्ज ग्राममें षडज-पञ्चम भावस स्वरोको जानते ह। इस स्पष्ट करते हुए श्रीनिवासने कहा ह—

"सपयो रिधयोश्चैव मधैव गनिषाद्यो।
सवाद समसो लोक मसयो स्वरयोमिथ॥"

यहाँ म-स में षड्ज पञ्चम भाव निर्धारित होनेसे यह सिद्ध है कि अहोबल श्रीनिवासका ग्राम आठ स्वरोवाला अष्टक था, न कि सात-स्वरोवाला सप्तक। इसका निष्कर्ष यह ह कि ये भी स्वरके साथ स्थानकी धारणा मानते थे अ तरालकी नही। यह सामा य अनुभवकी बात ह कि ८ खम्भोंके

बीच ७ द्वार होते हैं। अब यदि इस सार क्षेत्रको द्वारासे व्यक्त करें तो ७ मानना पड़गा और यदि खम्भासे व्यक्त करें तो ८ मानना पड़ेगा। भरत शार्ङ्गदेवके स्वरकी तुलना द्वारसे की जा सकती है और मध्यकालीन स्वर की खम्भसे।

११२ अहोबल श्रीनिवासने १२ मुख्य स्वर माने हैं—७ शुद्ध और ५ विकृत। इन्हीं स्वरोंको श्रुतियोंका साधक मानकर इन्होंने नाप १० श्रुतियोंका निराकरण किया है। श्रीनिवासने साफ तौरसे कहा है—

> "श्रुतयो द्वादशैवात्र स्वरस्थानतयादृता।
> तथाप्रतवादिता सर्वा स्वरस्थानतयादिशेत्॥"

अहोबलने गौण रूपसे अतिविकृत स्वरोंका भी चर्चा की है—यहाँतक कि उन्होंने २२ की २२ श्रुतियोंका उपयोग किया है और विकृत रूपसे स्वरके कोमल और तीव्र दोनों ही भेदोंका निरूपण किया है। यह अहोबल-की विशेषता है। इनके स्वर ये हैं—

स, पूर्व र कोमल र, शुद्ध र (पूर्व ग), कोमल ग (तीव्र र), शुद्ध ग (तीव्रतर र) तीव्र ग, तीव्रतर ग, तीव्रतम ग, शुद्ध म (अति तीव्रतम ग), तीव्र म, तीव्रतर म, तीव्रतम म, शुद्ध प पूर्व ध, कोमल ध, शुद्ध ध (पूर्व न), कोमल न (तीव्र ध) शुद्ध न (तीव्रतर ध) तीव्र न, तीव्रतर न, तीव्रतम न।

यहाँ यह देखनेमें आता है कि अहोबलने भरतके स्वरोंका श्रुतिमान ज्योंका त्यों रखा है।

विकृत स्वरोंका बहुतसी अहोबली संज्ञाका व्यवहार आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीतमें भी होता है। अतितीव्रतम और पूर्व, ये संज्ञाएं प्रचारमें नहीं हैं। ऊँचाईकी दिशामें तीव्र तीव्रतर और तीव्रतम तथा निचाईकी दिशामें, कोमल, अतिकोमल और सहकार माने जाते हैं।

११३ अहोबलने भारतीय सगाग्रम पहले पहल तारकी लम्बाईसे स्वराका मान निर्णय किया है। इसमे स देह नही कि अहोबल और उनके अनुयायी पण्डितोने इस विधिको महत्त्व नही दिया है। श्रीनिवासने कहा है कि "यह विधि उनके लिए बनायी गयी है जिन्हें स्वरज्ञान नहीं है। स्वर स्थापनाका असल साधन तो स्वर सवादित्वका ज्ञान है।"[1] पर ऐतिहासिक दृष्टिसे अब इसका मूल्य बहुत अधिक है। क्योंकि इसीसे मध्यकालीन स्वर ग्रामका पता निश्चित रूपसे मिलता है। प्राचीन कालमें पायथागोरसने इस साधनका उपयोग किया था।

यह विधि पूरी तरह वैज्ञानिक आधारपर अवलम्बित है। यह बताया गया है कि तारकी लम्बाई और उसकी आवृत्तिमें व्युत्क्रम (उल्टा) अनुपातका सम्बन्ध है (अनुच्छेद १२) और दो नादोका अन्तराल उनकी आवृत्तियोंके अनुपातसे मापा जाता है। इसलिए स्वराका निर्धारण तारकी लम्बाईसे सहज हो जाता है।

अहोबलके आदेशानुसार वीणाके पूरे तार (स) के आधेपर तार स (स) और दोनो स के बीच म होना चाहिए। पूरे तारको त्रिभाग करके पहले भागपर प, स और प के बीच ग और स प को त्रिभाग करके पहले भागपर र की स्थापना होनी चाहिए। फिर प और स के मध्य देशमें ध और प स का त्रिभाग करके अंतिम भागपर न की स्थिति होनी चाहिए (परिशिष्ट २ ज०)। ये अहोबलके शुद्धस्वर है। श्रीनिवासन भी बिलकुल यही व्यवस्था बनायी है। स्वराकी यह व्यवस्था तारकी पूरी लम्बाई ३६ इञ्च मानकर, लम्बाईके अश और मान तथा अन्तरालके साथ चित्रम दिखायी जाती है—

1—" स्वरज्ञानविहीनेभ्यो मार्गोऽयं दर्शितो मया।
स्वरसंवादिताज्ञानं स्वरस्थापनकारणम् ॥"

स्वर	अन्तराल	अंश	लम्बाई
स	१ (०)	← → १	३६ इञ्च
र	← ९/८ (५१ से)	← → ८/९	→ ३२
ग	← ५/४ (७९)	← → ४/५	→ ३०
म	← ४/३ (१२५)	← → ३/४	→ २७
प	← ३/२ (१७६)	← → २/३	→ २४
ध	← २७/१६ (२२७)	← → १६/२७	→ २१ १/३
न	← ९/५ (२५५)	← → ५/९	→ २०
स	← २ (३०१)	← → १/२	→ १८



यहाँ धवतका स्थान शास्त्र वचनकी दृष्टिसे विवादग्रस्त है। अहोबलने तो ध की स्थिति स प के 'मध्यदेश' या क्षेत्रमें बतायी है पर श्रीनिवासने स्पष्ट कहा है कि 'पञ्चमोऽथरषड्जात्यमध्ये धैवतमाचरत्'। अब यदि धवतको स-प के बीचोबीच मानें तो इसकी लम्बाई २१ इञ्च और अन्तराल ३६/२१ या १२/७ निकलता है। इस धवतका अन्तराल प से ८/७ या ५८ से है। यह अन्तराल अज्ञात नहीं है और न असंगत [illegible]। यह सप्तम आवर्तकसे बना है और 'वहस्वर' के नामसे इसका प्रयोग अरबी और प्राचीन यूनानी संगीतमें हुआ है। हिंदुस्तानी संगीत भी सप्तम आवर्तकसे अपरिचित नहीं है। पर यहाँ यह अहोबल आदिके मान हुए पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गके सवाद सिद्धान्तके विरुद्ध पड़ता है।

इसीलिए आधुनिक पण्डितोंने र ध संवादके आधारपर ध का मान $\frac{२७}{१६}$ माना है।

यह अहोबल आदिका शुद्ध ग्राम आधुनिक हिंदुस्तानी पद्धतिका काफी ठाठ या दाक्षिणात्य पद्धतिका खरहरप्रियमेल है।

यहाँ यह एक ध्यान देनेकी बात है कि एक ओर रामामात्य आदि दाक्षिणात्य पण्डितोंने अपने शुद्ध र $\frac{२५६}{२४३}$ को द्विश्रुतिक माना है और दूसरी ओर अहोबल आदिने भी अपने शुद्ध र $\frac{९}{८}$ को त्रिश्रुतिक माना है। इसमें दोनों पद्धतियोंके पण्डितोंका भरत परम्पराको अक्षुण्ण रखनेका आग्रह दीख पड़ता है। पर विचारसे यह जान पड़ता है कि भरतका शुद्ध ग्राम अहोबलके शुद्ध ग्राममें ही रक्षित है। भरत ग्राम अवरोही है इसलिए उसमें नियत और प्रकृत स्वरोंको छोड़, चल स्वरोंका एक-एक श्रुति उतर जाना स्वाभाविक है। पर आरोही क्रमका प्रचार होते ही भरत-ग्रामका काफी ठाठमें बदल जाना अनिवार्य है। यह प्रत्यक्ष है कि भरतके स्वर-ग्रामको ही आरोही क्रममें व्यक्त करनेसे अहोबलका शुद्ध ग्राम निकल आता है। जैसे —

$\frac{९}{८}$ $\frac{१६}{१५}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{९}{८}$ $\frac{९}{८}$ $\frac{१६}{१५}$ $\frac{१०}{९}$

भरत—म ४ न २ ध ३ प ४ म ४ ग २ र ३ स

अहोबल—स ४ र २ ग ३ म ४ प ४ ध २ न ३ स

१ $\frac{९}{८}$ $\frac{६}{५}$ $\frac{४}{३}$ $\frac{३}{२}$ $\frac{२७}{१६}$ $\frac{९}{५}$ २

$\frac{९}{८}$ $\frac{१६}{१५}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{९}{८}$ $\frac{९}{८}$ $\frac{१६}{१५}$ $\frac{१०}{९}$

इस विचारसे यह परिणाम निकलता है कि व्यावहारिक रूपमें भरतका ग्राम उत्तरमें ही जीवित रहा है दक्षिणमें नहीं। इतना ही नहीं, भरतने जो षड्ज-पञ्चम संवादको महत्त्व दिया था उसकी प्रतिष्ठा उत्तरीय पद्धतिमें जितनी दृढ़ दीख पड़ती है उतनी दाक्षिणात्य पद्धतिमें नहीं।

शुद्ध स्वरोंकी भाँति ही विकृत स्वरोंका स्थान निरूपण भी वीणाके तारके द्वारा ही किया गया है। नीचे श्रीनिवासके निर्देशानुसार (परिशिष्ट २ ख) विकृत स्वरोंका मान दिया जाता है—

सारिणी १५

स्वर	तारकी लम्बाई (इञ्च)	अन्तराल
रे॒	३३ ३/४	३६/३३ ३/४ → ३४ स
ग	(क) (ध २१ १/३) → २८ १/३	५४/४३ → ९९ ,,
	(ख) (ध २१) → २८ १/२	२४/१९ → १०१ ,,
म'	(क) (ग' २८ १/३ → २५ १/३	३६/२५ १/३ → १५६ ,,
	(ख) (ग' २८ १/२) → २५	३६/२५ → १५८ ,
ध	२२	१८/११ → १९४ ,
न'	(क) (ध २१ १/३) → १९ १/३	६/३ → २७५ ,,
	(ख) (ध २१) → १९	३६/१९ → २७९ ,

यहाँ ग', म' और न' के (क) और (ख), ये दो दो भेद किये गये हैं। इनमें (क) ऋषभ संवादी अनुमित धैवतके और (ख) श्रीनिवासोक्त धैवतके आधारपर निकाला गया है। दोनों ग' क्रमशः दोनों न' के संवादी हैं। म' (ख) का रे के साथ मध्यम संवाद है। पर रे और ध में संवाद नहीं दीख पड़ता। विकृत स्वरोंके निर्णयमें श्रीनिवासने सम्भवतः स्वरोंके परम्परागत श्रुतिमानका ध्यान रखा है। स रे धैवतके विभाग करनेके आदेशसे ही यह जान पड़ता है। पर मुख्य बात यह है कि इस प्रबन्धका उद्देश्य 'स्वरज्ञान विहीन' व्यक्तियोंको मार्ग दिखाना है। इसलिए स्वरोंके मानमें त्रुटि होनेपर भी तारके सरल अंशोंपर ध्यान रखा गया है। इससे स्वभावतः श्रीनिवासके वचनसे

निर्दिष्ट स्वर अपेक्षाकृत अधिक इष्ट हो गये है। पर श्रीनिवासन पूर्वाङ्ग-
उत्तराङ्ग सवादकी अवना नही की। इन स्वराके निर्देशके बाद वे कहते है
कि 'उक्त स्थानपर स्थित शुद्ध-कोमल स्वरामें यदि परस्पर सवाद न होतो
चतुराको चाहिए कि स्वराको एक यव या आधा यव उतार दें।'[1] यहाँ
यह भी ध्यान देनेकी बात है कि श्रीनिवासने सवादित्वके लिए स्वराको
उतारनेकी बात कही है, चढानेकी नहीं। इससे सिद्ध है कि वे अपने धवत
को चढा हुआ समझते थे अत उसके आधारपर निर्दिष्ट स्वराको भी
चढा हुआ मानते थे। इसलिए ऊपरके स्वराके (क) भेदको ही ग्रहण
करना उचित है। ऐसा करनेमे श्रीनिवासका गान्धार लगभग प्रकृत ग
(५/४) हो जाता है। धृ को भी र के सवादसे निकालनेपर इसकी लम्बाई
२२ ८ क बदले २२३ ६ हो जाती है।

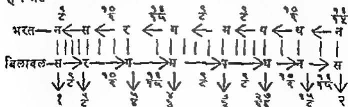
११४ उत्तरमें रागाका वर्गीकरण उतना नियमित नही दीख पडता
जितना दक्षिणमें। जनकमेलकी धारणा उत्तरके मध्यकालीन पण्डिताकी
पद्धतिमें नहीं पायी जाती। अहोबलने मेलाका वर्णन स्वराके सस्थान विशेषके
ही अर्थमें किया है पर इसका उपयोग वर्गीकरणमें नही किया। उन्होने
ओडव षाडव सम्पूर्ण भेदसे मेलाकी ११३४० सख्या बतायी है जिससे स्पष्ट
है कि उनके मेल और रागमें कोई अन्तर नही था। श्रीनिवास भी इसी
मार्गपर चले है। लोचन और हृदयनारायणने १२ राग सस्थितियाकी चर्चा
की है जो जनकमेलकी द्योतक है। उन्होने रागिनियाका भी प्रसग दिया
है। फिर भी उत्तरके पण्डिताने इस दिशामें कोई नियमित, सर्वमान्य
पद्धतिका निरूपण नही किया है।

११५ सम्भवत इसी युगमें अहोबल आदिकी शास्त्रीय पद्धतिके
साथ साथ उत्तरखण्डमें एक दूसरी धारा भी चल रही थी ... बताया
गया है कि अहोबल आदिका शुद्ध मेल आधुनिक काफी ठ

---

1 सवादिनौ न चेदुक्तस्थानगौ शुद्धकोमलौ।
तौ यवाधयवाभ्या वा कार्यौ न्यूनौ विचक्षणै ॥

उसी समय प्रचारमें बिलावल ठाठ, शुद्ध मेलके रूपमें, आ गया था। शायद इसके प्रवर्तक अमीर खुसरू हैं जिनके द्वारा उत्तरीय संगीतपर फारसी संगीतका प्रभाव पड़ा। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि शुद्ध मेलमें यह परिवर्तन पाश्चात्य मुसलमानी संस्कृतिके सम्पर्कसे ही हुआ। यूनानी पायथागोरसका ग्राम और अरबी फारसी ग्राम सदासे आधुनिक बिलावल ठाठ-जैसा ही रहा है। आधुनिक पाश्चात्य गुरु ग्राम भी पायथागोरसकी परम्परासे ही पैदा हुआ है। पर ऐसा जान पड़ता है कि फारसी संगीतका प्रभाव केवल शुद्ध मेलके संस्थानपर ही पड़ा। और बातोंमें उत्तरीय संगीत पद्धति पूरी तरह भारतीय बनी रही। बल्कि यों कहना चाहिए कि मध्य कालीन मुसलमान गायकों और नायकोंने भारतीय संस्कारको बनाये रखा। यह इस बातसे प्रकट होता है कि मुसलमान शास्त्रकारोंने भी इस शुद्ध ग्रामको फ़ारसी संगीतसे नहीं जोड़कर भरत पद्धतिके आधारपर ही इसका निरूपण किया है। भरतका ग्राम अवरोही होनेसे प्रत्येक स्वरकी श्रुतियाँ नीचेकी ओर चलती हैं। अब यदि स्वरोंका श्रुतिमान भरतके आदेशानुसार ही मानकर केवल प्रत्येक स्वरकी श्रुतिमाको ऊपरकी ओर जाता हुआ मानें तो बिलावल ठाठकी रचना होती है। षड्जकी तीव्रा कुमुद्वती, मन्दा और छन्दोवती ये चार श्रुतियाँ मानी जाती हैं जो उत्तरोत्तर ऊँची होती जाती हैं। भरत शार्ङ्गदेवके षड्जका स्थान छन्दोवतीपर है। पर यदि षड्जको तीव्रापर मान लें और इसी तरह और स्वरोंके स्थानको निम्नतम श्रुतिपर मान लें तो भरतका ग्राम आपसे आप बिलावल ठाठमें बदल जाता है। जैसे —



यह भी कहा जा सकता है कि यह बिलावली शुद्ध ग्राम भरतके षड्ज ग्रामकी मत्सरी या रजनी मूर्च्छना है।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि यह शुद्ध ग्रामविशेष जो फारसी संगीतके सम्पर्कसे ही हिन्दुस्तानी संगीतमें आया था, भारतीय परम्परा बनाये रखनेके लिए भरतकी पद्धतिसे जोड़ दिया गया है। यह ग्राम हरिदास-तानसेनके समयमें भी प्रचलित था। पीछे उत्तरीय संगीतकी बहुत सी गड़बड़ियोंको दूर करनेके लिए जयपुरके महाराज प्रतापसिंह देवने (१७७९-१८०१ ई०) संगीत-पण्डितोंका एक सम्मेलन किया जिसके विचार विनिमयके फलस्वरूप संगीत सार ग्रन्थकी रचना हुई। इस ग्रन्थमें बिलावली ग्रामको ही शुद्ध ग्राम माना गया है। फिर १८१३ ई० में पटना निवासी मुहम्मद रजाने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'नगमात आसफी' की रचना की, जिसका शुद्ध ग्राम बिलावल ही है।

आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिमें भी बिलावल ठाटको ही शुद्ध ग्राम माना जाता है। पर मुख्य बात यह है कि शुद्ध ग्रामके प्रबन्धमें यह परिवर्तन अहोबल आदिके समयमें ही सम्पन्न हो गया था।

११६. जब मध्यकालमें प्रचलित संगीतमें अहोबली ग्रामसे भिन्न बिलावली शुद्ध ग्राम चल रहा था वैसे ही रागोंके वर्गीकरणकी भी मेलकर्त्तासे भिन्न राग रागिनीकी प्रणाली चल रही थी। इस प्रणालीका सामान्य प्रबन्ध था सभी रागोंको ६ पुरुष रागों, ३० या ३६ रागिनियों और उनके पुत्रों तथा पुत्रभार्याओंमें बाटना। इस प्रणालीके भी कई मत थे जैसे—शिवमत, कृष्णमत, भरतमत, हनुमानमत, कल्लिनाथमत, सोमेश्वरमत, इन्द्रप्रस्थमत इत्यादि। पर इनमेंसे भरत और हनुमानमतका ही प्रचार अधिक रहा है। आधुनिक कालमें हनुमानमत ही माना जाता है।

संगीत-दर्पणकार दामोदरने (१६२५ ई०) वर्गीकरणकी इस प्रणाली का प्रसंग दिया है। उन्होंने तीन मतोंकी चर्चा की है। जैसे—

(क) शिवमत—६ राग और ३६ रागिनियाँ।
(१) श्रीराग—मालश्री, त्रिवणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी, पहाड़िका।
(२) वसन्त—देशी, देवगिरी, वराटी, टोडिका, ललिता, हिन्दाली।
(३) भैरव—भैरवी, गुजरी, रामकिरी, गुणकिरी बंगाली, सैन्धवी।
(४) पञ्चम—विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, बडहंसिका, मालवी, पट मञ्जरी।
(५) मेघ—मल्लारी सोरठी, सावरी, कौशिकी, गान्धारी, हरशृङ्गारा।
(६) वृहन्नाट—कामोदी, कल्याणी अमीरी नाटिका, सारंगी, नट्टहम्बीरा (या नटनारायण)।
(ख) रागार्णव—६ राग और ३० रागिनियाँ।
(१) भैरव—बंगाली, गुणकिरी, मध्यमादि, वसंत, धनाश्री।
(२) पञ्चम—ललिता, गुजरी देशी, वराडी, रामक्री।
(३) नाट—नट्टनारायण, गान्धार सालग, केदार कर्णाट।
(४) मल्लार—मेघमल्लारिका, मालकौशिक, पटमञ्जरी, आसावरी।
(५) गौड़मालव—हिंदोल त्रिवण, गान्धारी, गौरा, पटहंसिका।
(६) देश (देशाख्य)—भूपाली, कुडाली, कामोदी नाटिका वेलावली।
(ग) हनुमानमत—६ राग और ३० रागिनियाँ।
(१) भैरव—मध्यमादि, भैरवी बंगाली, वराटिका, सैन्धवी।
(२) कौशिक—तोडी, खम्बावती, गौरी गुणक्री, ककुभा।
(३) हिन्दोल—वेलावली रामकिरी देशाख्या, पटमञ्जरी, ललिता।
(४) दीपक—केदारी, कानडा, देशी, कामोदी, नाटिका।
(५) श्री—वासंती, मालवी, मालश्री, धनासिक, आसावरी।
(६) मेघ—मल्लारी, देशकारी, भूपाली, गुजरी, टक्का।

राग निरूपण' में, जिसके प्रणेता नारद कहे जाते हैं दस पुराग और हर-एककी पाँच पाँच स्त्रियाँ, चार-चार कुमार और चार चार स्नुषाएँ बतायी गयी हैं। इस प्रकार १४० रागोंके नाम आये हैं। इन दस रागोंमें

६ तो हनुमानमतके और शेष चार वसन्त, पञ्चम, नटनारायण और हमक है। इन चारोंमेंसे तीन ऊपर आ चुके हैं। पर इन सभीकी स्त्रियां उपर्युक्त रागिनी विभागसे भिन्न हैं।

ये वर्गीकरण प्रतिनिधि रूपमें दिये गये हैं। इस थोड़े उदाहरणोंसे ही यह सिद्ध हो जाता है कि उत्तरीय पद्धतिमें वर्गीकरण विषयक कितने मत मतान्तर प्रचलित थे। फिर किसी भी वर्गीकरणका कोई नियमित आधार नहीं जान पड़ता है।

जो हो, पर हनुमानमतकी परम्परा प्राचीन कालसे आज तक चली आयी है। प्राचीन पद्धतिके हिन्दू मुसलमान गायक आज भी इसी वर्गीकरणको याद रखते हैं। उनके लिए परिवार सहित ये छह राग स्थूल ऐतिहासिक सत्य हैं जिनमें नियम या रीति नीति ढूंढ निकालनेकी उन्हें आकांक्षा नहीं होती। भैरवरागकी मध्यमादि भैरवी आदि रागिनियां क्यों हैं, यह प्रश्न उनके लिए उतना ही असंगत है जितना यह प्रश्न कि दुष्यन्तकी रानी दमयन्ती क्यों हुई। इन रागोंके साथ युग-युगका प्रभाव है, महिमा है, चामत्कारिक इतिहास है—वैसे ही जैसे पौराणिक महापुरुषोंके साथ है। इसीलिए एक विशिष्ट कलाकारके द्वारा इन रागोंके प्रस्तारमें इतनी श्रद्धा भक्तिका गाम्भीर्य प्रकट होता है। हम थोड़ेमें कह सकते हैं इस वर्गीकरणका आधार पौराणिक है, वैज्ञानिक नहीं।

इन रागोंमें एक बात देखनेमें आती है। इनकी स्वर रचनापर विचार करनेसे पता चलता है कि इनमें कौशिक (मालकोस), हिन्दोल और मेघ तो निश्चय ही ओडव जातिके हैं। श्री ओडव सम्पूर्ण है, और भैरवको भी पहले ओडव ही माना जाता था। जो हो, श्री और भैरवमें कोमल ऋषभ और तीव्र गान्धारके प्रयोगसे रे-ग अन्तराल, वैसे ही ध-नि अन्तराल, बहुत बड़ा हो जाता है। दीपक लुप्त समझा जाता है। पर दीपककी जो एक-दो चीजें बतायी जाती हैं उनमें भी रे-ग और ध-नि अन्तरालका प्रयोग होता है। ऊपरके ओडव रागोंमें भी वर्जित स्वरके कारण बड़े अन्त

राल पदा हा जाते ह। यह सामा'य अनुभवकी बात ह कि इस प्रकारका बडा अ'तराल शान्त रसको प्रस्फुटित करता ह। इस बातम इन छह रागा की गति एक सी ह। इन रागाकी आडव प्रवृत्तिसे यह भा धारणा होती ह कि सम्भवत उत्पत्तिकी दृष्टिसे रागाका काल पहले हो।



२६ आधुनिक स्वर-ग्राम

[क] स्वरित

११७ आधुनिक भारतीय संगीतका, विशेष रूपसे उत्तरीय संगीतका आधार 'स्वरित' है। इसे उत्तरके गवये 'सुर' या 'खरज' (षड्ज) कहते हैं, दक्षिणके गवये 'श्रुति' कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानोंकी यह धारणा है कि एक कण्ठ संगीतमें स्वरितकी चेतना बड़ी दुर्बल होती है। हेल्महोल्ट्ज़के ऐसे ही विचार थे। यह बात चाहे प्राचीन ग्राम्य संगीतोंके लिए ठीक हो पर कलापूर्ण, सांस्कृतिक भारतीय संगीतके लिए बिल्कुल गलत है। बल्कि बात उलटी है। हिन्दुस्तानी संगीतमें स्वरितका अधिकार जितना प्रबल स्पष्ट और अनिवार्य है उतना पाश्चात्य संगीतमें नहीं। पाश्चात्य संहति संगीतमें स्वर संघातोंका प्रयोग होता है जिनकी रचना और गुण उन संघातों के 'टोनिक' या स्वरितपर निर्भर है। शायद इसीलिए पाश्चात्य विद्वानोंकी ऐसी धारणा हुई हो कि जहाँ संहति-संगीतका प्रचार नहीं वहाँ टोनिकको प्रधानता नहीं दी जाती। पर संहतिमें तो स्वर संघातोंके प्रयोगसे तीन भिन्न भिन्न स्वरोंका एक साथ ही उच्चारण होता है। इसलिए स्वरोंके समूहमें से स्वरितका चुन लेना इतना आसान नहीं होता। इसमें स्वरोंका सम्बन्ध प्रत्यक्ष होनेपर भी स्पष्ट नहीं होता। इसके विपरीत, जहाँ स्वरों का उच्चारण एकके-बाद एक होता है वहाँ स्वरोंके सम्बन्धकी अनुभूति स्मृतिके द्वारा होनेसे परोक्ष होती है पर यह अनुभूति बड़ी ही स्पष्ट है। और यह स्पष्टता स्वरितके दृढ़ संस्कारपर ही निर्भर है। फिर संहतिकी पद्धतिमें स्वरितान्तरकी युक्तिका प्रयोग होनेसे आधारस्वरितकी प्रधानता नहीं रहने पाती। इसलिए मुख्य स्वरितको चैतन्य रखनेके लिए आधार स्वर-संघातका बार-बार उपयोग होता है। भारतीय संगीतमें यह उपद्रव

नहीं होता। इसमें तो स्वरितका उच्चारण लगातार होता रहता है जिससे न तो स्वरित भ्रष्ट होने पाता और न दूसरे स्वर अपने उपयुक्त स्थानसे विचलित होने पाते। स्वरितके सतत चैतन्य रहनेसे अन्य स्वरोंका स्वरितसे सम्बन्ध भी बहुत ही स्पष्ट बना रहता है।

स्वरितकी ऐसी दृढ़ धारणा आधुनिक संगीतकी विशेषता है, पर इसका विकास भरत-कालसे ही होता चला आया है। पिछले अध्यायोंमें यह बताया जा चुका है कि जैसे-जैसे स्वरितकी धारणा प्रबल होती गयी है वैसे-ही-वैसे स्वरका अर्थ और ग्रामका संस्थान भी बदलता चला गया है। ग्रामके प्रथम स्वरको षड्ज माननेसे ही संगीतके आदिकालमें भी स्वरितके अस्तित्वका पता चलता है। इसीलिए आज भी षड्ज स्वरितके अर्थमें ही प्रयुक्त होता है। प्राचीन कालसे ही संगीत शिक्षाकी यह प्रथा है कि शिक्षार्थी महीनों तक 'षड्जसाधन' करता है। इसकी विधि यह है कि शिक्षार्थी अपनी आवाजको एक स्थानपर बाँध लगातार स्वरका उच्चारण करता है जिससे धीरे धीरे वह स्वर उसके गलेमें बैठ जाता है। वही उसके कण्ठका स्वरित या 'षड्ज' होता है।

११८ आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीतमें स्वरितकी इतनी प्रधानता है कि कोई भी संस्कारी संगीत इसके बिना नहीं होता। गान हो या वाद्य, स्वरितकी लगातार संगति आवश्यक है (अनुच्छेद ८८)। शहनाई या बाँसुरीके गिरोहमें भी एक सुर भरनेवाला अवश्य रहता है। यहाँतक कि तबला या पखावज भी सुरमें मिला रहता है जो स्वरितका काम देता है। पर उत्तरमें स्वरितकी संगतिके लिए सबसे मुख्य बाजा तमूरा है। उत्तरके गवैयोंके लिए इसका व्यवहार अनिवार्य है। कुछ लोगोंका मत है कि यह पौराणिक गायक तुम्बरु गन्धर्वका आविष्कार है। पर प्राचीन ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा नहीं पायी जाती। यह भी हो सकता है कि यह खुरासानी तम्बूरका ही (मुसलमानी कालमें आया हुआ) रूपान्तर हो। पर खुरासानी तम्बूरमें वीणाकी तरह ग्रामके स्वर बँधे होते हैं और इसलिए

इसका उपयोग रागके लिए होता है, स्वरितकी संगतिके लिए नहीं। इससे तो यही मानना पड़ता है कि यह हिन्दुस्तानी संगीतका मध्ययुगीय आविष्कार है। यह सम्भव है कि इसका नाम खुरासानी तम्बूरके ही तौलपर रखा गया हो। इस बाजेमें जवारीका प्रयोग जो प्राचीन वाद्योंके 'जीवा' का ही रूपान्तर है इसकी भारतीय परम्पराको प्रमाणित करता है। इस यन्त्रका प्रधान अंग लौकीका तूमा होना है। सम्भव है इसीसे इस बाजेका नाम तमूरा पड़ा हो। ऐतिहासिक दृष्टिसे तमूरा एकतारेका विकसित रूप है। जिसका आज भी निर्गुण गानेवाले गोसाईं स्वरित और लयके लिए व्यवहार करते हैं।

तमूरेमें चार तार होते हैं जिनमें पहला मन्द्र पञ्चम (प) में चौथा मन्द्र षड्ज (स) में और बीचके दोनों तार मध्य षड्ज (स) में मिले होते हैं। इसे पञ्चम मेल कहते हैं। कभी कभी 'प' वाले तारको 'म' में मिलाकर मध्यममेलका उपयोग किया जाता है। पर ऐसा उपयोग उन्हीं रागोंके साथ होता है जिनमें पञ्चम वर्जित हो और शुद्ध मध्यमका प्रयोग हो। व्यापक रूपसे ऐसी अवस्थामें भी पञ्चम मेलका ही व्यवहार होता है क्योंकि 'प स' योग मध्यमका ही संस्कार पैदा करता है। पञ्चम वर्जित म' वाले रागोंमें भी यही मेल काम आता है। यहाँ पञ्चम म' के स्थान निर्णयमें सहायक होता है। इसलिए पञ्चम मेल ही प्रधान होनेसे इसपर थोड़ा विचार करना आवश्यक है।

प्राचीन कालमें प्रत्येक वीणामें जीवाका प्रयोग होता था। अब यह 'जवारी' के नामसे सिर्फ तमूरेमें ही लगायी जाती है। तमूरेमें चारों तार नीचे तूमेपर बैठाया हुई लकड़ी या हड्डीकी घोड़ीपर होकर जाते हैं। इस घोड़ीपर तारोंके नीचे रेशम या ऊनके धागे लगा दिये जाते हैं जो तारोंके लिए गद्दीका काम देते हैं। इस ऊन या रेशमके धागेको ही 'जवारी' कहते हैं। इसके कारण तार घोड़ीकी कोरसे कुछ उठ जाता है। परिणाम यह होता है कि जब तार छेड़नेपर काँपता है तो घोड़ीकी कोरपर टकर

खाता ह। या ठोकर यदि तारम ठीक उस समय लगे जब वह कम्पनम अपनी दिशा बदलता ह तो कम्पनका विस्तार बढ़ता जायगा और ठोकरसे बार बार नयी शक्ति मिलते रहनेसे कम्पन दर तक होता रहेगा (अनुच्छेद ३७)। इस ही प्राचीन शास्त्रकारान स्वरका अनुरणनात्मकत्व' गुण कहा ह। ठोकरका विस्तारके अन्तमें लगना अर्थात ठोकरकी आवत्ति और कम्पनकी आवत्तिका एक होना आवश्यक ह, इसीसे घोडीके सार तलपर एक ही स्थान ऐसा ह जहा जवारी ठीक बठती ह। तमूरा मिलानेवालेको जवारी धीरे धीरे खिसकाकर उस स्थानपर लाना होता ह। उस स्थानपर जवारीके पहुँचते ही तारम भन्नाहट होने लगती ह। जवारी न हो तो एक तारकी ध्वनि बन्द होनेपर ही दूसरे तारकी ध्वनि सुनायी पडेगी। जवारी ठीक होनेपर चारो तारोंकी ध्वनि एकमें मिलकर सहति' का गुण पदा करती ह।

जवारीकी क्रियाकी विवचना कार और गुन्नयाने वज्ञानिक मीमासा और प्रयागके द्वारा की ह। इनका विचार ह कि जवारीके कारण कोरक समकालिक अभिघातसे केवल मौलिक ही नहीं उपस्वर भी तीव्र हो उठत ह। पर एक बातमें दोनो वज्ञानिकोंमें मतभेद ह। कारके प्रयागम सम आंशिक ही प्रस्फुटित होते हैं और विषम आंशिक दब जाते ह। गुन्नयाके प्रयोगमें सम विषम, सारे आंशिक तीव्र हो जाते ह। यह मतभेद, सम्भवत जवारीके प्रयोग भेदके कारण ही हुआ ह। एकमें आधे कम्पन पर ही ठोकर लगती ह जिससे ठोकरकी आवत्ति तारकी आवत्तिसे दूनी हो जाती ह। दूसरेमें ठोकरकी आवत्ति और कम्पकी आवत्ति एक होती ह। गुन्नयाने पन्द्रहवें आंशिक तकका पता लगाया ह। व्यवहारमें सभी आंशिका का अस्तित्व पाया जाता ह। यग हेल्महोल्ज़के नियम (अनुच्छेद ३२) के विरुद्ध छेडनेके स्थानका इन आंशिकोंपर कोई असर नहीं पड़ता। तारके छेडनेके स्थानपर जिन आंशिकोंकी ग्रन्थि होती ह उन्हें नियमानुसार दब जाना चाहिए पर बार बार अभिघातके कारण वे भी तीव्र हो जाते ह।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि जवारीके प्रयोगसे तारकी ध्वनि केवल तीव्र और लगातार ही नहीं होती बल्कि इसके आवर्त्तक बली हो उठते हैं।

११९ तमूरेके इस संक्षिप्त विवरणके बाद इसके महत्वपर भी ध्यान देना आवश्यक है। संगतिके लिए तमूरेमें कई विशेषताएँ हैं। पहली तो यह कि षड्ज और पञ्चमका इतना घनिष्ठ संवाद है कि इन दोनोंका साथ साथ उच्चारण बड़ा ही इष्ट होता है। बल्कि, पञ्चमके कुछ नये आवर्त्तकों (अनुच्छेद ५७) के कारण इस स-प संघातमें नया रंग नयी रोचकता आ जाती है। दूसरी, सप्तकके पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग, दोनोंके आदि स्वर स्वरितमें मौजूद होनेसे दोनों अंगोंका सामञ्जस्य और तौल बना रहता है। इस तौलका हिन्दुस्तानी संगीतमें बड़ा मूल्य है (अनुच्छेद १३०)। तीसरी सभी आंशिकोंके तीव्र होनेसे ये स्वतन्त्र रूपसे और अपने परिणामी स्वरों (अनुच्छेद ४४) के द्वारा प्राकृतिक (अनुच्छेद ६४) सप्तकके प्रायः सभी स्वर उत्पन्न कर देते हैं जिससे तमूरेमें केवल स्वरितकी ही संगति नहीं बल्कि गलेके सभी स्वरोंकी संगति होती है।

तमूरेके चार तारोंमें दो तो जोड़के होते हैं इसलिए तीन ही स्वरोंकी 'संहति' होती है—स $\frac{१}{२}$ प $\frac{३}{४}$ और स १। इनके आंशिक नीचे दिये जाते हैं—

स			१		२			३		४		५	६
प		$\frac{३}{४}$		$\frac{३}{२}$		$\frac{९}{४}$		३	$\frac{१५}{४}$		$\frac{९}{२}$		
स	$\frac{१}{२}$		१	$\frac{३}{२}$	२		$\frac{५}{२}$	३	$\frac{७}{२}$	४			

यों तो एक ही ध्वनिके उपस्वरोंमें आवर्त्तक ग्रामके सभी स्वर निहित रहते हैं (अनुच्छेद ६४), पर यहाँ प और स के उपस्वरोंसे र ($\frac{९}{८}$), ग ($\frac{५}{४}$) और न ($\frac{१५}{८}$) को विशेष रूपसे पुष्टि होती है। फिर न ($\frac{७}{४}$) एक नया स्वर प्रस्फुटित होता है जो सामान्यतः व्यवहारमें नहीं आता।

पर इन आवर्त्तकोंके अलावा इनके परिणामी स्वर बड़े प्रबल होते हैं, क्योंकि 'जवारी' की क्रियासे स्वरोंकी तीव्रता बहुत बढ़ जाती है। नीचे स्वरोंका विवरण दिया जाता है—

(१) स—प——→ यौगिक—$1 + \frac{3}{4} = \frac{7}{4}$ (क) न७
अन्तरिक—$1 - \frac{3}{4} = \frac{1}{4}$ (ख) म

(२) स—सं——→ यौगिक—$1 + \frac{1}{2} = \frac{3}{2}$ (ग) प
अन्तरिक—$1 - \frac{1}{2} = \frac{1}{2}$ (घ) स

(३) प—सं——→ यौगिक—$\frac{3}{4} + \frac{1}{2} = \frac{5}{4}$ (च) ग
अन्तरिक—$\frac{3}{4} - \frac{1}{2} = \frac{1}{4}$ (छ) स

इस प्रकार परिणामी स्वर स, प, ग और न७ को पुष्ट करते हैं। यह हिन्दुस्तानी गवैयोंका अनुभव है कि सच्चे मिले हुए तम्बूरेमें गान्धार साफ सुनायी पड़ता है। न७ कोमल निषाद ($\frac{7}{4}$) से भी कुछ उतरा हुआ है। जहाँ स्वतन्त्र रूपसे, केवल स्वरितके साथ न् का उच्चारण होता है वहाँ शायद इसी साप्तिक निषादका प्रयोग होता है। क्लेमेण्टने कहा है कि "साप्तिक अन्तराल अर्थात् सप्तम आवर्त्तकसे बने हुए स्वरोंको जो महत्त्व दिया गया है उसने हिन्दुस्तानके संगीतको संगीत कलाके बौद्धिक विकासमें सबसे ऊँचे स्थानपर पहुँचा दिया है।" दाक्षिणात्य संगीत-पण्डित सुब्रह्मण्य अय्यर लिखते हैं— फाक्स स्ट्रैंगवेज आदिके इस (श्रुति निर्णय) विधानमें $\frac{7}{6}$, $\frac{7}{4}$ और $\frac{7}{5}$ ये तीन मुख्य स्वर नहीं पाये जाते, यदि हम अपनेको स–म, स–प के आधारपर २२ श्रुतियोंके विधान तक ही सीमित रखें। मैं जब इन स्वरोंको वीणामें निकालता हूँ तो इन्हें इनके अनुनाद और आशिकासे पहचान लेता हूँ। ये सुन्दर स्वर हैं और निश्चित रूपसे दाक्षिणात्य रागोंमें प्रयुक्त होते हैं।"[1] इनका विश्वास है कि ग $\frac{7}{6}$ का

---

१ The grammar of south Indian (Karnatic) Music

भैरवी (आसावरी) और आनन्द भैरवमें म′ ७/५ का रामप्रियमें और न ७/४ का सुरतिमें अवश्य प्रयोग होता है। ये सारे दाक्षिणात्य राग हैं। हिन्दुस्तानी रागोंपर इस दृष्टिसे किसीने विचार नहीं किया है। पर यह सम्भावना अवश्य है कि तमूरेके साथ गानेमें कमसे-कम न ७/४ का प्रयोग होता है, क्योंकि यह स्वर स के आर्मिकामें और स–प के यौगिकमें मौजूद है। यह माना जा सकता है कि न ९/५ न १६/९ और न ७/४ इन तीन प्रकारके कोमल निषादोंमें न का प्रयोग ग ६/५ के संवादमें न का प्रयोग म के संवादमें और न ७/४ का स्वरित (स) के साथ होता है। इस प्रसंगपर आगे भी विचार किया जायेगा।

[ख] स्वर ग्राम

१२० यह बताया जा चुका है कि आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिमें शुद्ध ग्राम बिलावल ठाठ (अनुच्छेद ५३) माना जाता है। उत्तरमें संगीतका पहला पाठ बिलावलके स्वर-साधनसे ही आरम्भ होता है। हिन्दुस्तानी पद्धतिमें इस बिलावल ठाठका कब प्रवेश हुआ इसपर भी विचार किया जा चुका है (अनुच्छेद ११५)। तमूरेके ध्वनि विश्लेषणके बाद यहां इतना और कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक दृष्टिसे तमूरेके आविर्भाव और व्यवहारके साथ बिलावल ठाठका शुद्ध ग्रामके रूपमें प्रकट होना स्वाभाविक है। क्योंकि बिलावलके स्वरोंकी ही तमूरेके स्वरोंके साथ सर्वाङ्गीण संगति है।

दाक्षिणात्य पद्धतिमें कनकाङ्गी (अनुच्छेद १०७) के स्वर ही शुद्ध माने जाते हैं। इसमें दो अर्ध स्वर लगातार आते हैं। इसके षड्ज मध्यमका प्रबन्ध यों है—

स ½ र ½ ग १½ म′[1]

(स से ग तक: ९/८; ग से म′ तक: ३२/२७)

---

१ यहाँ ½ अर्ध स्वरके, १ एक स्वरके और १½ डेढ़ स्वरके अन्तरालोंका संकेत है।

हिन्दुस्तानी स्वर-ग्राममें इसका रूप स $\frac{९}{८}$ र $\frac{१०}{९}$ र $\frac{१६}{१५}$ म होगा। चतु:संघात का ऐसा विभाग 'अर्ध-स्वरक' (क्रोमेटिक) के नामसे प्राचीन यूनानी पद्धतिमें भी प्रचलित था (अनुच्छेद ६७)। पर दो अर्ध स्वरोंका उच्चारण एकके बाद एक साधारणतः कठिन है। संगीतकी दृष्टिसे इसमें कोई सुन्दरता भी नहीं आती। फिर ये दोनों अर्ध स्वर समान भी नहीं हो सकते। यदि स–र को $\frac{२५६}{२४३}$ माना जाये तो र–ग $\frac{१३५}{१२८}$ या एक लीमा (२३ से) होगा और यदि ग को $\frac{१०}{९}$ मानें तो दूसरा अर्ध स्वर इससे भी छोटा $\frac{२५}{२४}$ अर्थात् १८ से होगा। इसीलिए सुब्रह्मण्य अय्यर कर्नाटकोंका स्वर प्रबन्ध

स	र	(ग)	म	प	ध	(न)	स
१	$\frac{२५६}{२४३}$	$\frac{१०}{९}$	$\frac{४}{३}$	$\frac{३}{२}$	$\frac{१२८}{८१}$	$\frac{५}{३}$	२
[स	र	र	म	प	ध	ध	स

देकर लिखते हैं 'यह कोई पूछ सकता है कि $\frac{२५६}{२४३}$ और $\frac{१३५}{१२८}$ इन दो अन्तरालोंका लगातार उच्चारण सम्भव है या नहीं। हाँ सम्भव है यदि स्वर को बीचमें छोड़ दिया जाये।' पर ऐसी सम्भावना संगीतके कामकी नहीं। यह भी देखा जाता है कि दाक्षिणात्य पद्धतिमें इस कठिनाईको दूर करनेके लिए आरोही अवरोहीमें दोमें-से एक स्वरको छोड़ देते हैं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि स्वरकी दो मुख्य प्रकृतियाँ हैं—एक गमक और दूसरा लीनक। फिर गमकके अनेक भेद हैं। गमकका सामान्य लक्षण है गति। जब ध्वनि किसी स्वरपर ठहरती नहीं और भिन्न भिन्न युक्तियोंसे उस स्वरको स्पर्श कर दूसरेपर चली जाती है तो उसे 'गमक' कहते हैं। कम्पन, आन्दोलन, मींड, कण आदि इसीके अन्तर्गत हैं। जब ध्वनि किसी एक स्वरपर देर तक एकतान ठहरती है तो उस ठहराव या 'मुकामके स्वरको

---

१ The grammar of south Indian (Karnatic) music pp 84

'लीनक' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि ध्वनि उस स्वरमें लीन हो जाती है। गमक और लीनककी दृष्टिसे विचार करें तो यह मानना पड़ता है कि गमकमें दो अर्ध स्वरोंका उच्चारण सम्भव है पर लीनकमें ऐसा प्रयोग अनायास नहीं हो सकता। इसीसे व्यवहारमें अब दक्षिणमें भी मालवगौड़ा (भैरव) को ही शुद्ध मेल मानते हैं और संगीतकी शिक्षा इसीसे आरम्भ होती है। दाक्षिणात्य पद्धतिमें यह परिवर्तन कर्नाटकके मेधावी सन्त-गायक पुरन्दरदासने किया। यह मालवगौड़ा मेल भी कनकाङ्गीकी तरह ही अर्ध स्वरक है, पर दोनों अर्ध स्वरोंको अलग अलग कर दिया गया है। जैसे,

स रे र रे ग रे म
[स र ग म]

पर एक अस्वाभाविकता इसमें भी रह जाती है। स्वरितके बाद लगातार अर्ध स्वरका उच्चारण आसान नहीं होता। इसीलिए हिन्दुस्तानी संगीतके भैरव आदि रागोंमें 'न स ग म' तानका ही प्रयोग होता है। 'स रे' उतना ही कृत्रिम है जितना 'म न'। इसके विपरीत आरोहीमें 'न स' और अवरोहीमें 'र स' अनायास आता है। यहां र और न का प्रयोग प्रवेशक स्वर (अनुच्छेद ८५) के रूपमें होता है। इस विचारसे मालवगौड़ा भी शुद्ध मेलके लिए बहुत उपयुक्त नहीं है।

पर महत्त्वकी बात यह है कि दक्षिणमें शङ्कराभरण (बिलावल) राग सबसे अधिक लोकप्रिय समझा जाता है। मैं इस बातकी ओर संकेत करता हूँ कि दक्षिणमें भी बिलावलको ही शुद्ध मेल माननेकी ओर झुकाव है।

प्रश्न यह है कि 'शुद्ध' का तात्पर्य क्या है? कुछ लोगोंका विचार है कि साम-गानके ग्रामको ही 'शुद्ध' कहते हैं। सामगानके ही ग्रामको भरतने स्वीकार किया है इसलिए भरत ग्राम 'शुद्ध' है। दाक्षिणात्य पण्डितोंकी धारणा है कि अर्धस्वरक कनकाङ्गी मेल ही भरत-ग्रामका सच्चा रूप है। इसीलिए दाक्षिणात्य पद्धतिमें कष्टसाध्य कनकाङ्गी मेलको ही शुद्ध मेल माना गया

जिससे स्वरोंमें चार चार श्रुति तककी विकृति करनी पड़ी। पर यह सभी मानते हैं कि भरत ग्राम द्विस्वरक था जिसका मनका ग्रामसे कोई सम्पर्क नहीं। फिर 'शुद्ध' का ठीक अर्थ है 'प्राकृत'। जो ग्राम 'प्राकृत' हो जिससे अनायास निकल सके उसी ग्रामको शुद्ध कहना चाहिए। प्रत्येक सस्कारी सगीत पद्धतिका आधार होता है ग्राम्य सगीत और इसलिए ग्राम्य सगीतका सरल प्राकृत स्वर प्रबन्ध ही सस्कारी सगीतमें 'शुद्ध' के नामसे गृहीत होता है। सस्कृति उन्हीं शुद्ध स्वरोंको नाना युक्तियोंसे विकृत कर नाना कृत्रिम ग्रामोंकी रचना करती है और इस प्रकार शुद्ध ग्रामके आधार-पटपर स्वरोंकी रोचक चित्रकारी होती है।

इस दृष्टिसे देखा जाय तो बिलावलको शुद्ध मेल मानना अनिवार्य हो जाता है। इसीके स्वर सुसाध्य और प्राकृत हैं। इसीका आधार ग्राम्य सगीत है। प्रकृति इसका आधार है इसीलिए यह इतना व्यापक है कि प्राय सभी देशोंके प्राचीन और नवीन सगीतमें यह पाया जाता है।

१२१ बिलावलमें ही भरतकी परम्परा भी मौजूद है। भरतकी सगीत पद्धति सीधे ग्राम्य-सगीतसे निकली है। यह अनुभव सिद्ध है कि ग्राम्य सगीतका क्रम प्राय अवरोही होता है। भरत-सगीत भी अवरोही क्रममें ही है। अवरोही क्रममें प्राकृत ग्रामका काफी मेलमें बदल जाना स्वाभाविक है क्योंकि अवरोहीमें स्वर अनायास नीचे उतर जाते हैं। फिर स न के प्रयोगसे स न का प्रयोग अधिक सुन्दर होता है। भरत ग्रामकी इसी रीतिसे रचना हुई है। सस्कारी सगीतमें आरोही क्रमका प्रवेश होते ही बिलावलका अधिकार आ जाता है। ये दोनों ही मेल द्विस्वरक हैं। भरत ग्रामसे किस प्रकार केवल स्वर श्रुतियोंका क्रम बदल देनेसे बिलावल मेल तयार हो जाता है यह बताया जा चुका है (अनुच्छेद ११५)।

प्राचीन यूनानी ग्राम भी भरत ग्रामकी तरह ही अवरोही था। इस ग्रामका प्रबन्ध हिन्दुस्तानी स्वरोंमें श्रुति-सप्तक साथ दिया जाता है—

(८) (७) (६) (५) (४) (३) (२) (१)
स २ र ४ ग ४ म ४ प २ ध ४ न ४ स।



इसे 'डोरियन' कहते थे, जो हिंदुस्तानी भैरवीसे मेलके ही समान है। पायथागोरसने इन्हीं स्वरोंके अन्तरालोंको आरोही क्रममें बैठाकर नीचेका द्वि स्वरक ग्राम बनाया—

(१) (२) (३) (४) (५) (६) (७) (८)
स ४ र ४ ग २ म ४ प ४ ध ४ न २ स

भरतका अवरोही ग्राम भैरवी और काफीके बीचका है, क्योंकि उनका ध और र प्राचीन यूनानी डोरियनके ध और र से कुछ चढ़ा हुआ है। इसलिए भरत-ग्रामका आरोही रूप एक तो अहोबलका काफी शुद्ध हुआ और दूसरा हिंदुस्तानी पद्धतिका बिलावल शुद्ध। पर ध्यान देनेकी बात यह है कि भरत ग्राम, अहोबल-ग्राम और हिंदुस्तानी ग्राम, ये तीनों द्वि स्वरक हैं।

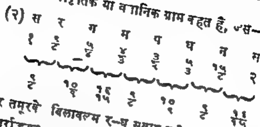
थोड़े थोड़े अन्तरके साथ बिलावलके कई रूप हो सकते हैं। इनमें सबसे सरल पायथागोरसका द्वि स्वरक ग्राम है जिसका रूप नीचे दिया जाता है—

(१) स र ग म प ध न स
१ ९/८ ८१/६४ ४/३ ३/२ २७/१६ २४३/१२८ २
९/८ ९/८ २५६/२४३ ९/८ ९/८ [illegible] २५६/२४३

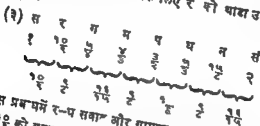
इसमें गान्धार बहुत ही अनिष्ट है। पर हिंदुस्तानी पद्धतिकी दृष्टिसे इसमें एक गुण है कि इसके पूर्वाङ्ग (स–म) और उत्तराङ्ग (प–स) में पूरा सादृश्य है। इस सादृश्यको हम 'यमकत्व' कहेंगे। 'यमक' का अर्थ होता है एक ही रूपके दो वस्तुओंका जोड़ा।

तमूरेकी संगतिमें ऊपरके अनिष्ट गान्धार और अनिष्ट धैवतको स्थान नहीं मिल सकता। इसलिए तमूरेका बिलावल तो शुद्ध आवर्तक ही हो

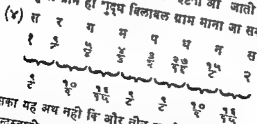
सकता है जिसे प्राकृतिक या वैज्ञानिक ग्राम कहते हैं, जैसे—



पर तमूरके बिलावलमें र–प संवाद नहीं रहता और इसलिए पूर्वांग और उत्तरांगका यमकत्व नष्ट हो जाता है। यह भारतीय परम्पराके प्रतिकूल है। यमकत्व बनाये रखनेके लिए र को थोड़ा उतारा जा सकता है। जैसे—



इस प्रबन्धमें र–प संवाद और ग्रामका यमकत्व स्थापित हो जाता है। पर र $\frac{10}{9}$ को तमूरका पञ्चम प्रस्फुटित न होने देगा। पञ्चमके साथ तो र $\frac{9}{8}$ ही आ सकता है। इसलिए धैवतको ही चढ़ाना आवश्यक है यद्यपि अनिष्ट होनेपर भी र के संवादमें इसमें इष्टता आ जाती है। इस प्रकार नीचे दिया हुआ ग्राम ही शुद्ध बिलावल ग्राम माना जा सकता है—



इसका यह अर्थ नहीं कि और तीन रूपोंके वैकल्पिक स्वर मान्य नहीं हैं। हिन्दुस्तानी रागोंमें भिन्न भिन्न संवाद और संगतिकी आवश्यकताके अनुसार र $\frac{10}{9}$ ग $\frac{81}{64}$ और ध $\frac{5}{3}$ का व्यापक रूपसे प्रयोग होता है।

१२२ यदि तमूरेके ही आधारपर चलें तो हिन्दुस्तानी-ग्रामके पाँच विकृत स्वर भी निश्चित हो जाते हैं। कोमल गान्धार (ग् ६/५) इष्ट स्वरोंमें है जिसका अस्तित्व तमूरेकी सहतिमें निर्विवाद है। इसका स से सीधा संवाद है। कोमल गान्धार (ग्) का संवादी न ९/५ का भी मानना आवश्यक है। ग् का मध्यम संवादी कोमल धैवत (ध ८/५) है। इस ध् का पूर्वाङ्ग संवादी कोमल ऋषभ (र् १६/१५) है। कोमल ऋषभका मध्यम संवादी तीव्र मध्यम (म') होता है जिसका मान ६४/४५ है। इस प्रकार विकृत स्वरोंका मान क्रमशः

(स)	र्	ग्	म'	ध्	न्
१	१६/१५	६/५	६४/४५	८/५	९/५

होता है। ये पाँचों स्वर स र म प और ध (२५/२४) को एक-एक अर्ध स्वर (१६/१५) घटाकर भी निकाले जा सकते हैं। पूर्व स्वरोंको घटानेके बदले यदि उत्तर स्वरोंको एक-एक अर्ध स्वर उतारा जाये तो दूसरे प्रकारके विकृत स्वर निकलेंगे। जैसे, प —१६/१५→ म' ४५/३२। हिन्दुस्तानी पद्धतिमें इस म' (४५/३२) का भी प्रयोग होता है क्योंकि न (१५/८) इसका मध्यम संवादी है। जहाँ र स संवादकी आकांक्षा रहती है वहाँ म' ६४/४५ का व्यवहार होता है और न (१५/८) के साथ म' ४५/३२ का।

शुद्ध और विकृत मिलाकर १२ स्वर सारिणी ५ में दिये गये हैं। वहाँ म का मान ४५/३२ है। इसकी जगह म' ६४/४५ भी रखा जा सकता है। यह बताया जा चुका है कि १२ स्वरोंका ग्राम परम्पराप्राप्त और सार्वभौम है। हिन्दुस्तानी संगीतको आधार मिला भी ये ही बारह स्वर हैं।

हिन्दुस्तानी संगीतमें अब 'शुद्ध' और 'विकृत' विशेषणोंका व्यवहार होने लगा है, जहाँ 'विकृत' के दो भेद माने जाते हैं—एक कोमल और दूसरा तीव्र। पर प्रचारमें अब भी नीचे स्वरोंको कोमल और ऊँचेको 'तीव्र' या 'कड़ी' कहते हैं। तारताकी दृष्टिसे यह संज्ञा अधिक उपयुक्त है।

१२३ आधुनिक हिंदुस्तानी संगीतक पण्डित भातखण्डेने अभिनव रागमञ्जरीमें अहोबल-श्रीनिवासकी शैलीमें हिंदुस्तानी संगीतके बारह स्वरों का स्थान निरूपण किया है। मञ्जरीके आधारपर स्वरोंकी गणना नीचेकी सारिणीमें दी जाती है (परिशिष्ट २ ट) —

सारिणी १६

स्वर	तारकी लम्बाई (इं०)	अन्तराल	
		भिन्नाव	सेवट
स	३६	१	०
र	३४	१८/१७	२४ ८
र	३२	९/८	५१ १
ग	३०	६/५	७९ १
ग	२८ ४/५	५/४	९६ ९
म	२७	४/३	१२५
म′	२५ १/२	२४/१७	१४९ ८
प	२४	३/२	१७६ १
ध	२२ २/३	२७/१७	२०१ ०
ध	२१ १/३	२७/१६	२२७ २
न	२०	९/५	२५५ २
न	१९ १/८	३२/१७	२७५ ०
स	१८	२	३०१ ०

इस सारिणीमें र, ग म प और न तो अहोबलके स्वर हैं, जो सर्वमान्य हैं। पर र, ग, म′ ध और न नये हैं। सारिणी ५ के साथ तुलना करनेपर जान पड़ता है कि यहां ग और न लगभग २ सेवट

चढ़ हुए है। पर हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति (मराठी) में भातखण्डेने सच्चे गांधार ($\frac{५}{४}$) और सच्चे निषाद ($\frac{१५}{८}$) को मान लिया है। र म′ और ध् को इन्होंने द्विश्रुतिक माना ह इसीलिए इन्हें चतुःश्रुतिक र, प और ध के आधेपर बैठाया ह। स्वरको दो लगभग बराबर भागोंमें बाटनेकी यह प्रक्रिया ईरानी संगीत-पद्धतिमें भी प्रचलित थी। जिस अंतरालको दो सम भागोंमें बाटना हो उसके अंश और हर, दोनोंको दोसे गुणा करना चाहिए। फिर इन द्विगुणित अंश और हरको जोड़कर दो से भाग देना चाहिए। भाग देनेपर जो अंक निकले उसे अंशके नीचे रखनेपर मूल अंतरालका पूर्वार्ध और हरके ऊपर रखनेपर उत्तरार्ध निकल आता ह। इन दो भागों को परस्पर गुणा करनेपर मूल अन्तराल आ जाता ह। जैसे, र के अंतराल $\frac{९}{८}$ को दो सम भागोंमें बाँटना हो तो इस रीतिसे बाटेंगे—

$$\frac{९}{८} = \frac{९}{८} \times \frac{२}{२} = \frac{१८}{१६} = \frac{१८}{१७} \times \frac{१७}{१६}$$

यहाँ $\frac{९}{८}$ दो लगभग समभागोंमें विभक्त हो गया जिनमें एक $\frac{१८}{१७}$ ह और दूसरा $\frac{१७}{१६}$। सेवटमें इनका मान क्रमशः २५ और २६ ह। दोनोंमें केवल १ सवर्टका अंतर ह। भातखण्डेने इसी प्रक्रियासे र, म′ और ध् का स्थान निर्णय किया है। पर गान्धारको $\frac{५}{४}$ मान लेनेपर ग–म अन्तराल ($\frac{१६}{१५}$) प्रधान हो जाता ह और यही द्विश्रुतिक कहा जा सकता है। इसलिए स्वरोंको इसी मात्रामें घटा बढ़ाकर विकृत करना उचित ह। इस प्रक्रियाको हिंदुस्तानी संगीत पद्धतिमें पण्डित भातखण्डेने भी माना ह। जो हो, यदि पण्डितजी अहोबलकी चाली छोड़कर तारको सरल अंशोंमें बाटनेकी विधि ग्रहण करते तो कहीं अच्छा होता।

[ग] ठाट (थाट)

१२४ यह बताया जा चुका ह कि उत्तरमें मध्यकालमें ही वर्गीकरणकी राग रागिनी पद्धति प्रचलित ह। पहले इसके कितने ही मत थे। अब हनुमत् मत ही प्रचारमें ह (अनुच्छेद ११६)। इस मतका वर्गीकरण दिया

जा चुका है (अनुच्छेद ११६)। छह पुरुष राग, तीस रागिनियाँ, ४८ पुत्र और ४८ पुत्रभार्याएँ मिलाकर कुल १३२ प्रचलित राग इस पद्धतिमें माने गये हैं। महम्मद रज़ाने सभी प्राचीन मतोंका खण्डन करके नयी पद्धतिका निरूपण किया है। उन्होंने दीपकके अप्रचलित होनेसे इसकी जगह नट माना है एक-एक रागकी छह-छह रागिनियाँ मानी हैं। उनका विधान नीचे दिया जाता है—

[१] भैरव—(१) भैरवी (२) रामकली (३) गूजरी (४) खट (५) गान्धारी (६) आसावरी।

[२] मालकौंस(१) बागेश्वरी (२) तोड़ी (३) देशी (४) सूहा (५) सुघराई (६) मलतानी।

[३]हिण्डोल-(१) पूरिया (२) बसन्त (३) ललित (४) पञ्चम (५) धनाश्री (६) मारवा।

[४] श्री—(१) गौरी (२) पूर्वी (३) गौरा (४) त्रिवण (५) मालश्री (६) जैतश्री।

[५] मेघ—(१) मधुमाध (२) गौड़ (३) शुद्ध सारंग (४) बड़हंस (५) सामन्त (६) सोरठ।

[६] नट—(१) छायानट (२) हमीर (३) कल्याण (४) केदार (५) बिहागड़ा (६) यमन।

महम्मद रज़ाके इस वर्गीकरणके विषयमें भातखण्डे कहते हैं—'राग रागिनी विभागकी पद्धतिके लिए उन्होंने (महम्मद रज़ा) इस महत्वपूर्ण सिद्धान्तका स्पष्टरूपसे निरूपण किया है कि राग और उनकी रागिनियोंके बीच कुछ साम्य या सादृश्य होना चाहिए। उनके वर्गीकरणमें इस सिद्धान्तका अनुसरण पाया जाता है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।"

पर भातखण्डेको इस वर्गीकरणसे सन्तोष न हुआ इसलिए उन्होंने वेंकटमखीके ७२ मेलोंके आधारपर हिन्दुस्तानी संगीतको फिरसे नियम-बद्ध

किया। रागोंका वर्गीकरण अनेक प्रकारसे हो सकता है। इन वर्गीकरणोंमें परस्पर विरोध होना आवश्यक नहीं है। अपेक्षा सिर्फ इस बातकी है कि प्रत्येक वर्गीकरणका आधार एक सामान्य लक्षण हो। रागोंका समय, उनकी गति प्रकृति, उनका रस भाव, उनका स्वर विन्यास आदि इनमें-से प्रत्येक वर्गीकरणका आधार माना जा सकता है। भातखण्डेने इनमें-से स्वर विन्यासको ही ग्रहण किया।

'ठाट या थाट' शब्दका प्रयोग उत्तरमें 'मेल' के ही अर्थमें होता आया है। यह सितार या इसराज-जैसे बाजोंमें सुन्दरियोंके किसी विशेष क्रमका नाम है। इन बाजोंमें सुन्दरियां सरकायी जा सकती हैं। यदि सुन्दरियोंका प्रबन्ध ऐसा है कि उनपर बिलावल राग बजाया जा सकता है तो इस प्रबन्धको बिलावल 'ठाट' कहेंगे। अब यदि गान्धार और निषादको सरकाकर कोमल बना दें तो यह 'काफी' ठाट हो जायेगा। इसी तरह सुन्दरियोंको सरकाकर आसावरी, भैरवी आदिके ठाट तयार किये जाते हैं। वीणामें सुन्दरियां स्थायी रूपसे बैठी होती हैं। इसीलिए वीणाके स्वरको 'अचल ठाट' कहते हैं। 'ठाट' या 'थाट' का यह लौकिक प्रयोग है। अब बिलावलकी सुन्दरियोंपर जितने राग बजाये जा सकते हैं उन्हें बिलावल ठाटके राग कहेंगे। इस प्रकार 'ठाट' का व्यवहार मेलके अर्थमें होने लगा।

स्वर प्रबन्धके अर्थमें ठाटका प्रयोग होते हुए भी उत्तरमें राग रागिनी विभागका ही प्रचार रहा। पण्डित भातखण्डेने पहले-पहल राग रागिनी पद्धतिका निराकरण कर उसके स्थानमें 'दस ठाट' की पद्धतिका निरूपण किया है। वे कहते हैं कि "हम ७२ ठाटोंमें-से उन्हीं ठाटोंको चुन लें जो उत्तर भारतके प्रचलित रागोंके वर्गीकरणके लिए आवश्यक हैं और फिर पूरी पद्धति तयार करनेका प्रयत्न करें।" "मैं ७२ मेलोंमें-से केवल १० अधिक प्रचलित मेलोंको लूँगा और उन्हींमें प्रचलित रागोंको विभक्त करूंगा।" इस प्रकार पण्डित भातखण्डेने देखा कि उत्तरके सारे प्रचलित रागोंका दस ठाटों या मेलोंमें ही समावेश हो जाता है। ये ठाट, स्वर-

सस्थार-समेत दिये जा चुके हैं (अनुच्छेद ५३)। यहाँ प्रसंगवश उनका स्वर प्रबन्ध फिर दिया जाता है—

(१) बिलावल—स र ग म प ध न स।
(२) यमन— स र ग म' प ध न स।
(३) खमाज— स र ग म प ध न स।
(४) भैरवी— [redacted] र ग म प ध न स।
(५) भैरव— स र॒ ग म प ध न स।
(६) पूर्वी— स र ग म' प ध न स।
(७) मारवा— स र ग म' प ध न स।
(८) काफी— स र ग म प ध न स।
(९) आसावरी—स र ग म प ध न स।
(१०) टोडी— स र ग म' प ध न स।

दाक्षिणात्य मेलकर्ता पद्धतिमें इनके नाम क्रमशः ये हैं—(परिशिष्ट १ ख) (१) शंकराभरण (२) मेच कल्याण (३) हरिकाम्भोजी (४) टोडी (५) मायामालव गौडा (६) कामवर्धनी (७) गमनप्रिया (८) खरहर प्रिया (९) नटभैरवी (१०) शुभ पन्तुवराळी।

१२५ इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्तरके प्रचलित राग उपर्युक्त दस मेलोंमें ही समाविष्ट हो जाते हैं। पर महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इन दस मेलोंका ही प्रचार उत्तरमें क्यों रहा? दक्षिणमें इन दस मेलोंके अतिरिक्त अनेक मेल प्रचलित हैं जो उत्तरमें ग्राह्य नहीं। दोनों पद्धतियोंमें इस विभेदका कोई मुख्य कारण होना चाहिए। पण्डित भातखण्डेने इसपर विचार नहीं किया है। इसीलिए यहाँपर इसकी विस्तृत विवेचना आवश्यक है। इससे हिन्दुस्तानी पद्धतिके तत्त्व और मौलिक सिद्धान्तका भी स्पष्टीकरण होगा। उत्तरीय और दाक्षिणात्य, दोनों ही पद्धतियोंमें पूरे सप्तकको १२ अर्ध स्वरोंमें बाँटा गया है। इन १२ स्वरोंसे मेलकी रचनाके लिए कुछ नियम उत्तर और दक्षिणमें समान

रूपसे माने जाते हैं। जैसे—(क) १२ स्वरोंमें से [illegible] स्वरोंको लेकर ही मेल या ठाटकी रचना होनी चाहिए (ख) इन ७ स्वरोंमें षड्ज, पञ्चम और शुद्ध मध्यम या तीव्र मध्यम अवश्य होना चाहिए। (ग) पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गके शेष चार-चार स्वरोंमें-से २ पूर्वाङ्गमें और २ उत्तराङ्गमें होने चाहिए।

इन्हीं ३ नियमोंपर वेंकटमखीके ७२ मेलोंकी रचना हुई है (परिशिष्ट १ ख)।

हिन्दुस्तानी पद्धतिके व्यवहारसे स्पष्ट है कि इसमें ऊपरके इन ३ नियमों के अतिरिक्त नीचेके ३ नियम और माने जाते हैं जो उत्तरीय पद्धतिका वैशिष्ट्य प्रकट करते हैं—

१—किसी स्वरके शुद्ध और विकृत भेदोंमें से किसी एकका ही प्रयोग हो सकता है।

२—पूर्वाङ्गके प्रत्येक स्वरका मध्यम या पञ्चम-संवादी स्वर उत्तराङ्ग में अवश्य होना चाहिए।

३—जिस ठाटमें तीव्र मध्यम हो उसमें शुद्ध निषादका होना आवश्यक है। साथ-ही साथ जहाँ म'-नि का युग्म हो वहाँ कोमल ऋषभ या शुद्ध गान्धार भी अवश्य हो।

हिंदुस्तानी पद्धतिके इन तीनों नियमोंके औचित्य और इनकी सभा निवताका विचार नीचे किया जाता है।

१२६ (१) १२ स्वरोंकी पाटीमें र र ग ग, ये ४ स्वर पूर्वाङ्गमें हैं जिनमें से नियम (ग) के अनुसार २ ही लिये जा सकते हैं। दाक्षिणात्य पद्धतिमें इन चारोंमें से कोई भी २ ग्राह्य हैं जैसे, 'र र', 'र ग', 'र ग' 'र ग, 'र ग' और 'ग ग। पर हिंदुस्तानी पद्धतिमें नियम (१) के अनुसार र और र में-से १ और ग और ग में-से १ का ही प्रयोग हो सकता है। र र और 'ग ग' प्रयोग वर्जित हैं। सिद्धान्तरूपमें दक्षिणमें भी यह नियम

माना जाता है। पर वहाँ यह नियम केवल नाममें लगता है, स्वरमें नहीं। जैसे, दक्षिणमें जब र और र दोनोंका प्रयोग होगा तो र को शुद्ध ऋषभ और र को शुद्ध गान्धार कहा जायेगा। पर 'र ग' के प्रयोगमें र को शुद्ध गान्धार न कहकर, चतुश्रुतिक ऋषभ कहेंगे और ग को साधारण गान्धार। इसी प्रकार जब 'ग ग' से मेल बनावेंगे तो ग को साधारण गान्धारके बदले षटश्रुतिक ऋषभ और ग को अन्तर गान्धार कहा जायगा। इसीलिए र और ग में से प्रत्येकको दो दो सनाएं हैं। वैसे ही ध और न के भी दो-दो नाम हैं। इन दो दो सनाओंके वैकल्पिक प्रयोगसे 'सरगम' के उच्चारणमें प्रत्येक मेलका पूर्वाङ्ग षडज, ऋषभ, गान्धार और मध्यमसे और उत्तराङ्ग पञ्चम, धवत, निषाद और तार षडजसे पूरा हो जाता है।

नीचे, उदाहरणस्वरूप, कुछ दाक्षिणात्य मेलोंके पूर्वाङ्ग हिन्दुस्तानी स्वर-संकेत और दाक्षिणात्य स्वर सज्ञाके साथ दिये जाते हैं—

	स	र	र	ग	ग	म
१–कनकाङ्गी—	स	र्	र	⅄	×	म
	पडज	शु ऋ	शु गा	×	×	मध्यम
२–नटभरवी—	स	×	र	ग्	×	म
	पडज	×	च श्रु ऋ	सा गा	×	मध्यम
३–यागप्रिय—	स	×	×	ग	ग	म
	पडज	×		प श्रु ऋ	अ गा	मध्यम

यहाँ एक ही र के शुद्ध गान्धार और चतुश्रुतिक ऋषभ और एक ही ग् के साधारण गान्धार और षटश्रुतिक ऋषभ ये दो दो नाम दीख पडते हैं। इसी प्रकार उत्तराङ्गमें भी ध के शुद्ध निषाद और चतुश्रुतिक धवत और न् के कैशिकी निषाद और षटश्रुतिक धवत, ये दो दो नाम हैं।

कही चतुश्रुतिक ऋषभ और चतुश्रुतिक धवतको ही पञ्चश्रुतिक ऋषभ और पञ्चश्रुतिक धैवत कहा गया ह।

इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट ह कि पूर्वाङ्गमें ऋषभ और गान्धार नामक स्वरोंका होना आवश्यक ह, इस नियमका पालन करनेके लिए जिस र को कनकाङ्गीमें शुद्ध गान्धार कहा ह उसीको नटभरवीमें चतुश्रुतिक ऋषभ माना ह। वसे ही एक ही ग् नटभैरवीमें साधारण गान्धार और याग प्रियामें षटश्रुति ऋषभ ह।

हिन्दुस्तानी पद्धतिमें केवल नामका परिवर्तन नहीं किया गया ह। यहाँ इस नियमका सम्बन्ध अन्तरालसे है। अन्तरालके शब्दमें इस नियम को इस रूपमें रख सकते ह कि जिन दो स्वरोंके बीचका अन्तराल एक अर्ध स्वर अर्थात $\frac{१६}{१५}$ या २८ सेवटसे कम हो उनमें-से एक ही का प्रयाग मेलमें हो सकता है। सारिणी ५ देखनेसे पता चलता है कि र र अन्तराल २३ सेवटका और ग् ग १८ सेवर्टका ह। अर्थात—

	५१			४६	
स	र्	र	र	ग्	ग
	२८	२३		२८	१८

इसलिए हिन्दुस्तानी मेलम स–र और र–ग् का, तथा प–ध–और ध–न का प्रयोग हो सकता ह। पर र–र, ग–ग, ध्–ध और न्–न वर्जित हैं। केवल नाम बदल देनेसे ही अन्तरालका मान नहीं बदल जाता। अर्ध स्वर या २८ सेवटसे छोटा अन्तराल सगीतोपयोगी नहीं है यह एक बडा ही व्यापक नियम है। हेल्महोज लिखते ह—"युरोपीय राष्ट्रोंन युनानी प्रथाका अनुकरण करके अर्ध स्वर $\frac{१६}{१५}$ को सीमा मान लिया ह। ग ($\frac{६}{५}$) [= ३१६ सण्ट] और ग ($\frac{५}{४}$) [= ३८६ सण्ट] तथा ध ($\frac{८}{५}$) [= ८१४] सण्ट और ध ($\frac{५}{३}$) [= ८८४ सेण्ट] का अन्तराल प्राकृतिक ग्राममें अपक्षाकृत छोटा ह क्योंकि यह $\frac{२५}{२४}$ [= ७० सेण्ट] ह, इसीलिए हम लोग एक ही ग्राममें

ग और ग तथा ध और ध का साथ साथ प्रयोग नहीं करते।''[१] हिंदुस्तानी संगीतमें जहाँ ग और ग तथा नृ और न का प्रयोग होता भी है वहाँ ग और न का आरोहीमें और ग और नृ का अवरोहीमें—एक साथ नहीं। इससे यह सिद्ध है कि हिन्दुस्तानी संगीतमें रृ र या ग ग के साथ साथ प्रयोगके वर्जित होनेका कारण केवल स र ग-म में उच्चारणकी सुविधा नहीं है। ऐसा होता तो यहाँ भी दक्षिणकी तरह र को गान्धार और गृ को ऋषभ नाम देकर काम चला लिया जाता। हिंदुस्तानी संगीतमें स्वर विधान और कलाकी दृष्टिसे इस नियमका पालन होता है।

१२७ (२) पूर्वाङ्गका पूरा संवाद उत्तराङ्गमें हो, इस नियमकी परम्परा भरतकी पद्धति है। भरतकी ओडव जातियोंमें, जहाँ दो स्वर वर्जित हुए हैं वहाँ एक स्वर पूर्वाङ्गका है तो दूसरा उसका पञ्चम संवादी उत्तराङ्गका है जैसे स प, र ध या ग न (अनुच्छेद ८८)। हिंदुस्तानी संगीतमें भी ओडवत्वमें भरतके नियमका यथासम्भव पालन होता है। हिंदुस्तानी पद्धतिमें भरतके नियमके क्षेत्रको थोड़ा कम दिया गया है। भरत दोनों अङ्गोंमें केवल पञ्चम संवाद मानते हैं। पर हिन्दुस्तानी पद्धतिमें पूर्वाङ्गके स्वरोंका व्यष्टिरूपसे उत्तराङ्गके स्वरोंके साथ पञ्चम और मध्यम दोनों प्रकारका संवाद हो सकता है। अर्थात् ग्राम या मेल में कोई भी ऐसा स्वर नहीं रह सकता जिसका मध्यम या पञ्चम संवादी कोई दूसरा स्वर मेलमें न हो।

पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गमें संवादसे ग्रामके दोनों अङ्गोंमें अनायास साम्य हो जाता है। अर्थात् उत्तराङ्गका स्वर प्रबन्ध ठीक वैसा ही होता है जैसा पूर्वाङ्गका। इस साम्यको यमकत्व कहेंगे। जहाँ पूर्वाङ्गके प्रत्येक स्वरका पञ्चम-संवादी स्वर उत्तराङ्गमें रहता है, वहाँ उत्तराङ्ग पूर्वाङ्गकी पुनरुक्ति मात्र होता है। ऐसा साम्य बहुत ही सरल होता है इसलिए इसे सरल

१ Helmholtz–Sensation of tones—pp 272

यमकत्व कहा जायेगा। यह सरल यमकत्व बिलावल, भरव, भैरवी और काफीमें पाया जाता है। जहां पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गमें मध्यम संवाद हो या मध्यम और पञ्चम-संवादका मिश्रण हो वहां भी यमकत्व होता है अवश्य, पर इतना सरल नहीं। इनके उदाहरण आगे दिये जायेंगे। यहां यह विचार करना है कि हिन्दुस्तानी पद्धतिमें पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गके संवादको या इन दोनों अङ्गोंके यमकत्वको क्यों महत्त्व दिया गया है।

यह पहले बताया जा चुका है कि ग्राम्य संगीतका आदिरूप एक ही चतुःसंधान तक सीमित था। बादको यह औडव हो गया। अन्तमें कहीं, षाडवमें दो स्वर और जोड़कर और कहीं निम्न चतुःसंघातमें वैसा ही एक उच्च चतुःसंघात जोड़कर संस्कारी संगीतका ग्राम तयार हुआ। इसलिए पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गमें समन्वय होना स्वाभाविक है। ग्राम्य संगीतसे संस्कारी संगीतका विकास होनेके कारण रागका रस भाव यथार्थमें एक ही चतुःसंघातमें प्रस्फुटित होता है। यदि पूर्वाङ्गकी और उत्तराङ्गकी रचनाएँ भिन्न भिन्न हों तो ग्रामके दोनों अङ्गोंमें दो भिन्न भिन्न रसोंका परिपाक होगा जिसका फल रस भङ्ग ही मानना पड़ेगा। प्राचीन यूनानी, अरबी और फ़ारसी पद्धतियोंमें भी एक ही चतुःसंधान, स स म तक की रचना भिन्न-भिन्न विधियोंसे होती थी। उच्च चतुःसंधान (प स स) तक निम्न चतुःसंघातकी ही पुनरुक्ति होता था। जैसे, यदि निम्न चतुःसंधान द्विस्वरक है तो उच्च चतुःसंधान भी द्विस्वरक होगा। निम्न चतुःसंघात अर्धस्वरक हो तो उच्च चतुःसंघात भी वैसा ही होगा। निम्न चतुःसंघात श्रुतिमूलक है तो उच्च चतुःसंघात भी श्रुतिमूलक ही होगा (अनुच्छेद ६७)। ग्रामके दोनों अङ्गों या चतुःसंघातोंका ऐसा यमकत्व स्वाभाविक है और एकरसता के लिए आवश्यक है इसलिए यदि संगीतको रस प्रधान बनाये रखना हो तो पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गके संवाद या यमकत्वके इस नियमका पालन करना आवश्यक है। यदि भैरवके पूर्वाङ्गमें भैरवीका उत्तराङ्ग जोड़ दें तो इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों अङ्ग दो भिन्न भिन्न भाव पैदा करेंगे क्योंकि

भैरवका अङ्ग अधस्वरक ह और भरवीका अङ्ग द्विस्वरक। उत्तरके रसिको का यह मेल रागमाला या रागसागर-सा जान पडेगा। पर रागसागर एक कौतूहलका विषय ह, रस परिपाकका साधन नही। दक्षिणम बकुला भरण ऐसा ही मेल ह जिसका पूर्वाङ्ग तो भरव ह और उत्तराङ्ग भैरवी।

१२८ (३) इस तीसर नियमका आधार वनानिक तथ्य ह। पहले यह बताया जा चुका है कि (अनुच्छेद ८५) न $\frac{15}{8}$ एक अनिष्ट स्वर ह जिसका षडजसे बहुत दूरका सम्बध ह। इसलिए ग्राममें इसका स्थान मुख्यत प्रवेशक स्वरके रूपम ह। इसी तरह म' ($\frac{45}{32}$) भी पञ्चमका प्रवेशक स्वर ह। भारतीय पद्धतिम इनकी स्वतन्त्र स्थिति भी ह। पर ये दुबल स्वर माने जात ह क्योंकि अनिष्ट होनस तमूरके स्वरित के साथ ध्वनि इन स्वरोपर अधिक समय तक नही ठहर सकती। ग्रामम व ही स्वर बली मान जा सकत हैं जिनका स्वरितसे आवत्तक सम्बध ह अर्थात जो इष्ट ह। इसीलिए किसी भी रागमें म' या न वादी नही माना गया ह। इसलिए म' और न का प्रयाग प्रवेशकके स्वरके रूपमें तो सदा हो सकता ह परन्तु मेलमें स्वतन्त्र स्वरके रूपम ये तभी आ सकते ह जब ये दूसर किसी बली स्वरपर खडे हो। जसे, यदि मेलमें ग $\frac{5}{4}$ हो तो इसका पञ्चम-सवादी न $\frac{15}{8}$ और न का मध्यम सवादी म' ($\frac{45}{32}$), इन दोनो स्वरोका अधिकार बढ जाता ह। वसे ही यदि मेलम र हो तो र का मध्यम सवादी प' और म का मध्यम-सवादी न ये दोनो स्वर साधक हो जात ह। कोमल ऋषभ भी, अनिष्ट होनेसे अवरोहीम षडजका, 'न' की तरह ही प्रवशक स्वर होना ह। इसपर भी ध्वनिका ठहराव नहीं होता। फिर भी र वादी माना गया है। पर र का वादित्व भी दुबल ह। र की इस दुबलताके कारण ही, म' केवल र पर खडा नही हो सकता। जहा म को ग का आधार न होकर र का आधार हो वहा र के लिए भी ध का आधार आवश्यक ह।

इस वनानिक विवचनास यह सिद्ध ह कि ग या र के अभावमें म' और

न, इन दो दुर्बल स्वरोंका संवाद मान्य नहीं है। म' और न मेलमें दूसरे स्वरोंके संवादी होकर ही रह सकते हैं, स्वयं वादी होकर नहीं। यदि म'-न का आश्रय ठाटमें स्वतंत्र आवें तो इनमें-से एकको वादी मानना पड़ेगा। यह संगीतिक दृष्टिसे ग्राह्य नहीं है। इसलिए इन दो स्वरोंमें-से किसी एकका वादी, जैसे र या ग का ठाटमें अस्तित्व आवश्यक है।

१२६. हिन्दुस्तानी पद्धतिके इन तीन नियमोंकी विवेचनाके बाद मेल रचनामें इनका उपयोग करना आवश्यक है। मेल रचनाके (क), (ख) और (ग) नियमोंके उपयोगसे वेंकटमखीने ७२ मेलकर्त्ताओंका निरूपण किया है जिन्हें परिशिष्ट १ क में काष्ठबद्ध दे दिया गया है। इनकी रचना विधि भी बतायी जा चुकी है (अनुच्छेद १०९)। अब इन ७२ मेल-कर्त्ताओंमें यदि हिन्दुस्तानी पद्धतिके नियम (१) का उपयोग करें तो क्रमशः 'र र' और 'ग ग' के प्रयोगके कारण परिशिष्ट १ क के चक्र १ और चक्र ६ पूरेके-पूरे लुप्त हो जाते हैं। यह लोप केवल पूर्वाङ्गके कारण हुआ। यदि उत्तराङ्गका विचार करें तो शेष चार चक्रोंमें, 'ध ध' और 'न न' के प्रयोगके कारण, नीचे दिये हुए मेलोंका भी निराकरण हो जाता है—

चक्र २—७ और ४३ १२ और ४८।,

चक्र ३—१३ और ४९ १८ और ५४।

चक्र ४—१९ और ५५, २४ और ६०।

चक्र ५—२५ और ६१ ३० और ६६।

इस प्रकार, सब मिलाकर इन ४० मेलोंका हिंदुस्तानी पद्धतिमें कोई स्थान नहीं है। रामस्वामीने इसी पहले नियमको मानकर शेष ३२ मेलोंके आधारपर 'लघु मेलकर्त्ता' का निरूपण किया है। यह परिशिष्ट १ ख में काष्ठबद्ध दिया गया है।

अब इन शेष ३२ मेलोंमें नियम (२) को लगाना है। परिशिष्ट १ (ख) के ऐसे मेलोंका विवरण नीचे दिया जाता है जिनके कोई न-कोई स्वर संवादहीन हैं—

सारिणी १७

अंक	मेल-क्रमांक	मेल संज्ञा	संवादहीन स्वर
१	२	धेनुका	न
२	३	नाटकप्रिया	र ध
३	१९	षड्विधमार्गिनी	ध
४	४	कोकिलप्रिया	र ग, ध, न
५	२०	स्वर्णांगी	म, ध
६	५	वकुलाभरण	ग
७	२१	नाममनारायणी	ग
८	७	चक्रवाक	र्
९	२३	रामप्रिया	न
१०	८	सूयगाल	र
११	२५	षण्मुखप्रिया	म
१२	१०	गीर्वाणी	न
१३	२७	हेमवती	[illegible]
१४	१२	गौरीमनोहारी	ग न
१५	२८	धर्मवती	ग
१६	१३	चारुकेशी	ग ध
१७	२९	ऋषभप्रिया	ग, म ’ ध न
१८	१४	सरसांगी	ध
१९	३०	लतांगी	ध
२०	३१	वाचस्पति	म , न

इस प्रकार ३२ मेलोंमें-से हिन्दुस्तानी पद्धतिके नियम २ के अनुसार इन २० विसंवादी मेलोंको निकाल देनेपर १२ संवादी मेल शेष रह जाते हैं।

इन शेष १२ मेलोंमें (१) भावप्रिया और (२) सिंहेन्द्रमध्या, ये दो मेल हैं जिनके स्वर-संस्थान नीचे दिये जाते हैं—

(१) भावप्रिया १७ (परिशिष्ट १ ख)—

स ऱ ग म′ प ध ऩ स।

(२) सिंहेन्द्रमध्या २६ (परिशिष्ट १ ख)—

स र ग़ म′ प ध़ न स।

भावप्रियामें स्वर-संवाद स–प, ऱ–म′, ग–ध़, और ग–ऩ है। सिंहेन्द्रमध्यामें स–प, र–प, ग़–ध और म′–न का संवाद है।

पर हिन्दुस्तानी पद्धतिके तीसरे नियमके अनुसार म′ के साथ न का होना आवश्यक है। जो भावप्रियामें नहीं है। फिर जहां म′–न युग्म हो वहां ऱ या ग में-से एकका होना भी आवश्यक है। सिंहेन्द्रमध्यामें म′–न युग्म तो है पर न तो 'ऱ' है और न 'ग'। इसलिए तीसरे नियमके अनुसार इन दोनों मेलोंका निराकरण हो जाता है।

इस प्रकार शेष १२ मेलोंमें से भावप्रिया और सिंहेन्द्रमध्याको निकाल देनेपर १० ही मेल रह जाते हैं जो पूरी तरह संवादी कहे जा सकते हैं। ये १० मेल वे ही हैं जो पीछे दिये जा चुके हैं (अनुच्छेद १२४)। इन्हीं १० मेलोंको भातखण्डेने, हिन्दुस्तानी रागोंके स्वर विन्यासकी परीक्षा करके ग्रहण किया है। पर ऊपरके विवरणसे यह सिद्ध होता है कि विज्ञान और कलाके सिद्धान्तोंपर बने हुए हिन्दुस्तानी पद्धतिके नियमोंकी दृष्टिसे यही १० मेल ग्रहण किये जा सकते हैं।

१३० अब इन दस संवादी मेलोंके यमकत्वपर ध्यान देना आवश्यक है। संवादकी दृष्टिसे ये दस ठाट तीन भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं—(१) पञ्चम-संवादी ठाट (२) मध्यम-संवादी ठाट और (३) पञ्चम

मध्यम या मिश्र-संवादी ठाट। पञ्चम संवादी ठाटोंमें पूर्वाङ्गके प्रत्येक स्वरका उत्तराङ्गके किसी स्वरके साथ सीधा पञ्चम संवाद होता है। इस वर्गमें (१) बिलावल (२) काफी (३) भैरव और (४) भैरवी हैं। मध्यम संवादी ठाटोंमें पूर्वाङ्गके प्रत्येक स्वरका उत्तराङ्गके स्वरके साथ मध्यम संवाद होता है। इस वर्गमें (५) खम्माज और (६) आसावरी हैं। मिश्र संवादी ठाटोंमें पूर्वाङ्गके किसी स्वरका तो उत्तराङ्गके स्वरके साथ पञ्चम-संवाद होता है और किसीका मध्यम-संवाद। इस वर्गमें (७) टोडी (८) यमन (९) पूर्वी और (१०) मारवा हैं। इनमेंसे प्रत्येकका अङ्ग विश्लेषण नीचे दिया जाता है जिससे इनका यमकत्व प्रत्यक्ष होगा—

१—पञ्चम संवादी—

	पू		उ
(१) बिलावल—[1]	स १ रे १ ग ½ म	१	प १ ध १ न ½ स
(२) काफी—	स १ रे ½ ग॒ १ म	१	प १ ध ½ नि॒ १ स
(३) भैरव—	स ½ रे॒ १½ ग ½ म	१	प ½ ध॒ १½ न ½ स
(४) भैरवी—	स ½ रे॒ १ ग॒ १ म	१	प ½ ध॒ १ न १ स

इनके दोनों अङ्गोंके बीच एक स्वरका व्यवधान है इसलिए इन्हें वियुक्ताङ्ग (विश्लिष्टाङ्ग) मेल कहेंगे। दोनों अङ्गोंके अलग हो जानेसे इनके यमकको भी 'भिन्न यमक' कहेंगे।

---

१ यहाँ १ अङ्क एक स्वरके अन्तरालके लिए और ½ अर्ध स्वरके अन्तरालके लिए प्रयुक्त हुआ है।

(५) खम्माज—

पू: स १ र १ ग १/२ म १ — उ: प १ ध १/२ न स

(६) आसावरी—

पू: स १ र १/२ ग १ म — उ: १ प १/२ ध १ न स

इनके दोनों अङ्ग मध्यमपर आपसमें मिल गये हैं इसलिए इन्हें युक्ताङ्ग (क्लिष्टाङ्ग) कहेंगे और इनके यमकको 'बिन्दु-यमक'।

३—मिश्र-सवादी—

(७) टोडी—म र् ग् १ १/२ म — पू: १/२ प १/२ ध १ १/२ न — उ: १/२ स १/२ र्

(८) यमन—

पू: स र १ ग १ म १/२ प — उ: १ ध १ न १/२ स

(९) पूर्वी—

पू: न १/२ स १/२ र् १ १/२ ग १ म' — उ: १/२ प १/२ ध १ १/२ न सं

(१०) मारवा—

पू: न (स) र १ १/२ ग १ म' —१ १/२— (प) ध १ न — उ

—१—

इन चार मेलोंका यमकत्व पञ्चम और मध्यम-सवादका मिश्र होनेसे सरल नहीं है। इनमें यमकका क्षेत्र खिसक गया है। इसलिए इस

यमकको 'अपसत यमक' कहा जायेगा। यह अपसारण म' वाले मेलामें ही दीख पड़ता है। पर अपसत हानेपर भी टोडी और यमनमें बिंदु यमक, और पूर्वीमें भिन्न यमक दीख पड़ता ह। यह तो स्पष्ट ही ह कि जहाँ दोना अङ्गामें पूण पञ्चम सवाद रहता है वहाँ वियुक्ताङ्ग भिन्न यमक होता ह और जहाँ मध्यम सवाद रहता ह वहाँ युक्ताङ्ग विन्दु-यमक। टोडीमें स–प और र–ध पञ्चम-सवादी ह और ग–ध, म–न मध्यम-सवादी। इसलिए स–प और र–धका उलटा प–स और ध–र लेनेसे ग स ग तक पूण-मध्यम सवाद स्थापित हो जाता ह और इस प्रकार यमक ग पर खिसक जाता ह। एसे ही यमनम स को छोडकर स ले लेनेपर यमक र पर चला जाता ह। पूर्वीमें म –न ही एक मध्यम सवादी ह। इसलिए मध्य न के बदले मन्द्र न लेनेस न–म भी पञ्चम-सवादी हो जाता ह और न से न तक पूण पञ्चम-सवाद स्थापित होता ह। इस तरह टोडी और यमनमें तो बिंदु यमक और पूर्वीम भिन्न यमक पाया जाता ह। इस यमक भावकी सिद्धिके लिए ही पूर्वी रागके मुख्य तानामें 'न, स र ग माना जाता ह।

मारवाका यमक और टोडीकी तरह सरल नही ह। इस मल्के सवादी हानम कोई सदेह नही। इसमें स–प तो पञ्चम सवादी ह और र–म, ग–ध और म –न मध्यम सवादी ह। म'–नका सवाद यहा सिंहेन्द्रमध्यमाकी तरह स्वत त्र नही ह। क्योंकि निपाद गान्धारके आधारपर ह। ग→न →म → र इस क्रमसे इसके दुबल स्वराकी बली स्वर गान्धारसे पुष्टि होती ह। फिर भी इसके पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गमें यमकत्व स्पष्ट नहीं ह। पर एक युक्तिसे इसमें यमककी सष्टि होता ह अर्थात स और प को लोप कर दिया जाये और यमकका क्षेत्र मन्द्र न पर लाया जाये ता यमकत्व प्रस्फुटित हो जाता ह। अब न स म तक पूर्वाङ्ग और ग स न तक उत्तराङ्ग का अधिकार हागा। पर ये दोना अङ्ग एक दूसरमें घुस हुए हैं इसलिए इन्हे प्रविष्टाङ्ग कहेंगे और दोना अङ्गाके यमकका वक्र यमक कहेंगे। मारवाके ऊपर दिये हुए विश्लेषणमें यह वक्रयमक दिखाया गया ह।

मारवा ठाटमें वक्रयमककी धारणा स्थूल दृष्टिसे कष्ट-कल्पना सी जान पडती है। पर बात ऐसी नही है। यह धारणा व्यवहारसे पुष्ट होती है। यह एक महत्त्वकी बात है कि मारवा ठाटके मुख्य मुख्य रागोंमें प वर्जित है जैसे, मारवा, पूरिया, ललित, पञ्चम, सोहनी आदिमें। कुछ अप्रसिद्ध रागोंमें प का प्रयोग होता है। पर यह दुर्बल माना जाता है। इस ठाटके मुख्य राग पूरियाका आरोही देखनेसे पता चलता है कि यह मारवाके ऊपर बताये हुए वक्रयमकके अनुरूप ही होता है। जैसे—

न र ग म' ध न र स

कभी न र् स, ग भी आता है। पूरिया, मारवा, ललित आदि रागोंमें 'न र स,' 'न र ग' और 'न र् न ध न' मुख्य तान माने जाते हैं। 'हिंदुस्तानी सगीत प्रवेशिका' के लेखक मुरारीप्रसादका कथन है—' आज लोग ऐसा कहते हैं कि मारवामें 'षडज' सुर एक दम नही है।''[1] जो हो षडजके स्वरित होनेसे, उसे बिलकुल तो नही छोड़ा जा सकता पर उसकी अप्रधानता स्पष्ट है। इसका अन्तरा भी प्राय 'ग म' ध' टुकडेसे शुरू होता है जो 'वक्रयमक' का द्योतक है।[2] इन उदाहरणोंसे यह सिद्ध है कि मारवाके ऊपर दिये हुए अङ्ग विश्लेषण और वक्रयमकके निरूपणका आधार प्रचलित प्रयोग है। इसके साथ ही साथ यह भी सिद्ध होता है कि हिन्दुस्तानी सगीत-पद्धतिमें दो अङ्गोंके यमककी अनिवार्यताको कितना महत्त्व दिया गया है। इस पद्धतिका केवल पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गके सवादसे ही सन्तोष नही होता। इसका ध्येय तो ग्राम या मेलके यमकत्वके आधारपर रागको प्रस्फुटित करना है। अङ्ग-सवादकी आकाक्षा इसी यमकत्वके लिए है।

---

१ हिन्दुस्तानी सगीत प्रवेशिका—भाग २ पृ० १८।

२ आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिमें स्वरित स का प्रधानता होने पर भी यह मारवा मेल मस्तक स प वर्जित ओडव जातिका विलक्षण उदाहरण है।

संयुक्ताङ्ग और वियुक्ताङ्गमें केवल क्षेत्रका भेद है। यदि मेलको मध्य सप्तकके दोनों ओर बनाया जाये तो यह दीख पडेगा कि जहाँ मध्य-सप्तकमें वियुक्ताङ्ग है वहाँ इसके दोनों ओर तार और मन्द्रमें संयुक्ताङ्ग होगा और जहाँ मध्यमें युक्ताङ्ग है वहाँ तार और मन्द्रमें वियुक्ताङ्ग होगा। युक्ताङ्ग और वियुक्ताङ्ग एकके बाद एक आते ही रहेंगे, चाहे मेलको जितना भी बढ़ाया जाये, जैसे—

वियुक्ताग युक्तांग वियुक्ताग युक्ताग

१ स र ग म प ध न सं र ग म प ध न स र ग म

युक्ताग वियुक्ताग युक्ताग वियुक्ताग

२ स र ग म प ध न म र ग मं पं ध म स र ग म

तात्पर्य यह कि किसी मेलमें एक बार यमक बन जानेपर यह कभी टूटता नहीं चाहे मेलका कितना ही विस्तार हो। हिन्दुस्तानी संगीतका एक चतु संघात ही या एक अङ्ग ही इकाई है, जो बार बार दोहराया जाता है। इसी एक कडीसे ग्रामकी लम्बी साकल बनी है। दाक्षिणात्य पद्धतिकी इकाई या कडी स से सं तक पूरा सप्तक है। इसीलिए हिन्दुस्तानी पद्धतिमें सप्तकके भीतर भी यमक चाहिए जो दाक्षिणात्य पद्धतिके लिए आवश्यक नहीं है। इस आभ्यन्तरिक यमकके कारण ही राग भाव और रसकी एकता बनी रहती है।

यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि एक ठाटमें एक ही प्रकारका यमक होना आवश्यक नहीं है। किसी किसी ठाटमें एकसे अधिक यमक भी हो सकते हैं। जैसे, अगर भैरवी ठाटको देखा जाये तो पता चलेगा कि इसके दोनों अङ्गोंमें एक तो शुद्ध पञ्चम-संवाद है, दूसरा मिश्र संवाद है। अर्थात् स म, ग ध, म न और प-स म तो मध्यम-संवाद हैं और र ध में पञ्चम संवाद। इस मिश्र संवादके कारण भैरवी ठाटमें

'अपमृत यमक' भी होगा। जैसे—

स रे ग्‌ म म प ध्‌ नृ स रे

भैरवी रागकी गतिसे पता चलता है कि इस अपमृत यमकका उपयोग इस रागके अन्तरामें होता है।

ऊपरके विचारोंसे हिन्दुस्तानी संगीतमें 'यमक भाव' का अधिकार सिद्ध होता है। यह इस पद्धतिकी विशेषता है। इस यमकके सिद्धान्तपर प्रत्येक रागका विश्लेषण किया जाये तो रागोंकी प्रकृतिका पता लगाया जा सकता है। पर यह एक स्वतन्त्र विषय है। यहां तो केवल सिद्धान्तका निरूपण करना ही लक्ष्य है।

१३१ ' प्राचीन कालसे ही रागोंके विभागकी एक विशेष प्रथा प्रचलित है जिसके अनुसार राग तीन वर्गोंमें विभक्त किये जाते हैं —(१) शुद्ध, (२) छायालग, सालङ्क या सालग और (३) संकीर्ण या मिश्र। भरतके जाति विभागोंमें भी इसका संकेत मिलता है। मतङ्ग और शार्ङ्गदेवने भी इसकी चर्चा की है। शुद्ध वे राग समझे जाते हैं जो अपने शुद्ध रूपमें हों। छायालगमें दूसरे रागकी भी छाया होती है। संकीर्ण शुद्ध और छायालगका मेल है। प्राचीन रागोंका रूप अज्ञात होनेसे यह वर्गीकरण भी दुर्बोध है। पर इसका प्रसंग आधुनिक ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। अतिया बेगम इसके विषयमें लिखती हैं[1]— शुद्ध उन रागोंका नाम है जिनके स्वर अपनी मौलिक शुद्धतामें चले आ रहे हैं—समय या व्यक्तिके व्यभिचारसे जिनमें विकृति नहीं होने पायी है जैसे, ६ राग (पुरुष राग) और कुछ मुख्य रागिनियाँ (स्त्री राग)।

सालङ्क वे राग हैं जिनमें दूसरे रागोंकी छाया है। ऐसे राग बहुतसे हैं।

---

१ 'The music of India' by Atia Begum Fyzee Rahamin

संकीर्ण वे राग हैं जो या तो दो शुद्ध रागों या पाँच या छह रागिनियोंके मेलसे बने हों। इनकी संख्या बहुत है।

महासालङ्क वे राग हैं जो सालङ्क और संकीर्णके मेलसे बने हों। इनकी संख्याका कोई अन्त नहीं। कुछ ग्रन्थोंमें 'महासालङ्क'की जगह 'महासंकीर्ण' आया है।

रुद्रदेवका मत है कि जिन मेलोंके दोनों अङ्गोंमें यमक होता है उन्हें शुद्ध कहा जाता है जिनमें यमक नहीं होता ऐसे विषम मेलोंको संकीर्ण' या 'मिश्र' कहते हैं। 'छायालग' उन मेलोंके लिए आता है जिनमें तीव्र न को कोमल या कोमल न को तीव्र कर दिया जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि अब हिन्दुस्तानमें छायालगका व्यवहार आकस्मिक न और म दोनोंके लिए होता है। इसके सरल उदाहरण हैं पिलोटी (न) और बिहाग (म') इनमें । न और म' अधिक स्वर नहीं, वैकल्पिक हैं। यह नियम दूसरे स्वरोंमें भी लगाया जाता है, जैसे देसमें ग्।'

उनकी यह भी धारणा है कि "ये तीनों भेद भरतको ज्ञात थे यद्यपि उन्होंने इनके नाम दूसरे ही दिये हैं। विषम चतुसंघातोंको मिश्रको व जाति-साधारण कहते हैं।'

रुद्रदेवकी यही व्याख्या यथार्थ मालूम पड़ती है। जो हो इस व्याख्याको यदि स्वीकार किया जावे तो वर्गीकरणके आधारपर उत्तरीय और दाक्षिणात्य पद्धतिका व्यवधान मिट जाता है और दोनोंमें एकता स्थापित हो जाती है। फिर इस वर्गीकरणका प्रसंग दोनों ही पद्धतियोंके आधुनिक ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है।

रुद्रदेवके मतानुसार सरल शब्दोंमें (१) यमक मेलको शुद्ध, (२) विषम मेलको संकीर्ण और (३) दोनों गान्धार, दोनों निषाद आदिवाले मेलको छायालग कहेंगे।

इस परिभाषाके अनुसार वेंकटमखीके ७२ मेलोंका विभाग इस प्रकार होगा—

(१) शुद्ध—भातखण्डेके १० हिन्दुस्तानी मेल।

(२) संकीर्ण—रामस्वामीके ३२ मेलोंमें-से शेष २२ मेल (परिशिष्ट १ ख)।

(३) छायालग—वेंकटमखीके ७२ मेलोंमें-से शेष ४० मेल (परिशिष्ट १ ग)।

उत्तरीय और दाक्षिणात्य संगीतके इस संमिश्रणके उद्देश्यसे स्ट्रैंग्वेज़की परिभाषाके अनुसार रागोंके शुद्ध संकीर्ण और छायालग भेदको महत्त्व देना आवश्यक है।

[घ] वादी संवादी

१३२ मेलगत समकके साथ रागके वादी-संवादीका घनिष्ठ सम्बन्ध है। भरतकी पद्धतिमें वादी-संवादी अनुवादी विवादी, ये स्वरोंके पारस्परिक सम्बन्ध माने जाते थे। जातिके प्रधान या जीवस्वरको अंश कहा जाता था। अब वादी-संवादी आदि रागकी ही उपाधियाँ माने जाते हैं। रागका जो मुख्य या जीवस्वर होता है उसे अब अंश न कहकर वादी कहते हैं। इस वादीपर ही रागकी प्रकृति निर्भर है। दो राग एक ही ठाटके हों, दोनोंके स्वर समान हों, जाति (ओडव षाडव या सम्पूर्ण) एक हो, फिर भी वादी भेदसे दोनों रागोंकी प्रकृतियाँ भिन्न भिन्न होती हैं। जैसे, भूपाली और देशकारके स्वर प्रबन्ध बिलकुल एक-से हैं। दोनों ही (म नि वर्जित) ओडव



जातिके हैं। दोनों ही का आरोही-अवरोही स रे ग प ध स है। पर



भूपालीका वादी गान्धार है और देशकारका धैवत। इस वादी भेदसे ही दोनोंकी प्रकृतिमें स्पष्ट अन्तर दीख पड़ता है। इसी प्रकार पूरिया—मारवा, रेवा—विभास आदिमें जो अन्तर है वह वादीके कारण ही है। वादीसे ही रागोंमें व्यक्तित्व आता है उसका रूप निखरता है। चतुर गवैया वादीको

आलापचारीका केन्द्र बनाता है। इसीलिए आलापमें रागका सच्चा रूप खिलता है। रागके दोनों अङ्गोंमेंसे एक अङ्गमें वादी स्वर निश्चित हो जानेपर दूसरे अङ्गमें इस वादीका मध्यम या पञ्चम अनायास संवादी स्वर निश्चित हो जाता है। दोनों सप्तक-अङ्गोंमेंसे एकका केन्द्र वादी स्वर और दूसरेका संवादी स्वर होता है। इस प्रकार वादी और संवादी सप्तकके दोनों अङ्गोंको जोड़ते हैं। दोनों अङ्गोंके समकत्वके साथ-साथ दोनों केन्द्रोंका संवाद रागकी स्पष्टता और एकरसताके लिए बड़ा महत्त्व रखता है। एक अङ्गके वादी स्वरसे जब गवैया दूसरे अङ्गके संवादी स्वरपर जाता है तो रागकी प्रकृति ज्योंकी-त्यों बनी रहती, भावमें कोई बाधा नहीं पड़ती।

१३३ वादी और संवादीका पारस्परिक अन्तराल $\frac{4}{3}$ या $\frac{3}{2}$ होता है। इनके युग्म स-म स-प, रे-प, रे-ध, ग-ध ग-नि, म-ध, ग-नि रे-ध हैं। सारिणी ५ को देखनेसे पता चलेगा कि इन युग्मोंमेंसे प्रत्येकका अन्तराल $\frac{3}{2}$ या $\frac{4}{3}$ है। मध्यम अन्तराल तो पञ्चमका ही उल्टा है क्योंकि जहाँ रे-प ग-ध और ग-ध् का अन्तराल $\frac{3}{2}$ है वहाँ प-रे, ध्-ग और ध-ग का अन्तराल $\frac{4}{3}$ है। अर्थात जहाँ दो स्वरोंमें मध्यम संवाद हो वहाँ ऊपरले स्वरको एक सप्तक उतार देनेसे पञ्चम-संवाद हो जाता है और जहाँ पञ्चम-संवाद हो वहाँ निचले स्वरको एक सप्तक चढ़ा देनेपर मध्यम-संवाद हो जाता है।

यह बताया जा चुका है (अनुच्छेद ५५) कि $\frac{4}{3}$ या $\frac{3}{2}$ का अन्तराल सबसे अधिक इष्ट होता है। इसीलिए इन अन्तरालोंका पाश्चात्य संगीत पद्धतिकी सहति क्रियामें उपयोग होता है। पर ऐसे दो स्वरोंका सहनिम जैसे साथ-साथ उच्चारण इष्ट होता है वैसे ही सक्रममें एकके-बाद एक उच्चारण भी इष्ट होता है। इसलिए संवादके नियमके अनुसार रागके वादी और संवादी स्वरोंके बीच सञ्चार कलाकी दृष्टिसे जितना प्रिय है विज्ञान-की दृष्टिसे उतना ही पूर्ण है।

संवादके नियमका किसी किसी रागमें व्यतिक्रम भी दीख पड़ता है, जैसे मारवामें रे-ध संवाद और श्रीमें रे-प संवाद। ये दोनों ही अन्तराल

अनिष्ट है। यहां इन दो स्वरोंकी इष्टताके बदले इनकी गिनतीका विचार रखा गया है। उद्देश्य रागोंका भेद दिखाना है। जब पूरियामें ग न संवाद है तो मारवामें र ध संवाद होनेपर भी यह परिणाम भिन्न दिखाया जा सकता है। पर यह ध्यान देनेकी बात है कि प्रयोगमें इष्टताका संस्कार छूटने नहीं पाता। हिंदुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिकाकी तीसरी पुस्तकमें श्रीरागका आरोही स र र स र म॑ प नि सां और पकड़ स र र स, प म ग र् ग र्, र स' दिया गया है। इनमें यह दीख पड़ता है कि र् से म॑ पर और स से प पर प्लुतसे पहुंचते हैं— र प प्लुतका प्रयोग नहीं है। वैसे ही मारवामें र के वादी होनेपर भी 'ग' की प्रधानता स्पष्ट है। इन उदाहरणोंसे यह सिद्ध है कि ऐसे अपवादोंसे हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतिके संवाद-तत्त्वमें कोई व्याघात नहीं पड़ता।

१३४ हिन्दुस्तानी रागोंकी छान-बीन करनेपर पता चलता है कि वादीके रूपमें म, स और प का सबसे अधिक प्रयोग होता है। इनके बाद स्थान है शुद्ध गांधारका। ग के बाद र और ध आते हैं। ग ध और र में ध् का प्रयोग सबसे अधिक होता है। पीछे दिये हुए (अनुच्छेद ५५) इष्ट स्वरोंको देखनेसे विदित होगा कि वादी स्वरमें इष्टता होना आवश्यक है। साथ ही साथ जिन स्वरोंमें जितनी अधिक इष्टता है वादी रूपमें उनका प्रयोग भी उतना ही अधिक होता है। तीव्र र इष्ट नहीं है। पर र का इष्टता तमूरके पञ्चमपर निर्भर है। र के साथ प संवादी होता है। इसलिए बहुत-से रागोंमें जिसका र वादी है प को ही प्रधानता रहती है। केवल रातका राग होनेके कारण र को वादी मान लिया गया है। जिन रागोंमें र वादीके रूपमें पूरी तरह मिलता है जैसे जयजयवन्ती और दरबारीमें, उनमें मन्द्र प के साथ र का संगति बार-बार दिखायी जाती है। इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि जहां र वादी होता है वहां यह षड्जका आधार छोड़कर म व प पर अटकता है।

र्, ग् और ध् का वादित्व कुछ विलक्षण है। वादी स्वरोंका प्रस्फुटन

मुख्यतः दो क्रियाओंसे दिखाया जाता है। एक तो लीनकसे, अर्थात वादी स्वरपर देर तक ध्वनिके ठहरावसे और दूसरी वादी स्वरके बार बार प्रयोगसे। 'प्रयोग बहुल स्वर। वादी रागोऽत्र गीयत।' रे और ध में इस दूसरी क्रियाका प्रयोग होता है। रे अति अनिष्ट और ग, ध् अल्प इष्ट स्वर हैं इसलिए ये लीनकमें स्वरितके साथ नहीं ठहर सकते। इन स्वरोंका गमकके साथ उच्चारण करके ध्वनि षड्ज और पञ्चमपर ही आकर ठहरती है। पर हिन्दुस्तानी संगीतके सामान्य व्यवहार और वैज्ञानिक विचारसे यह स्पष्ट है कि वादीका लीनकत्व प्रधान गुण है। इसलिए रे् ध और न को गौणवादी मानना ही उचित है। म प, ग आदिमें दोनों ही क्रियाएँ हो सकती हैं पर रे ध और ग् में एक ही क्रिया सम्भव है।

न और न कभी वादी न होकर केवल संवादी होते हैं और म न तो वादी और न संवादी होता है। इसका कारण पहले बताया जा चुका है (अनुच्छेद १२८)। षडजके सम्बन्धसे न ($\frac{15}{8}$) अनिष्ट स्वर और म' ($\frac{45}{32}$ या $\frac{64}{45}$) तो अति अनिष्ट है। फिर न का तार स से और म का प स से अर्ध स्वरका अन्तराल है इसलिए इनकी अनिष्टता अधिक बाधक हो जाती है। वैसे ही न का तार स से एक स्वरका अन्तराल होनेसे यह भी अनिष्ट है। इसलिए ये तीनों स्वर कभी भी वादी नहीं माने जाते। म तो ग्राममें सबसे अधिक अनिष्ट है इसलिए यह संवादी होने का भी अधिकारी नहीं। सच तो यह है कि र् भी इसी कोटिके स्वरोंमें है। अति अनिष्ट स्वर होनेसे इसे भी वादी होनेका अधिकार नहीं है। अगर रे सच्चा वादी होता तो किसी-न-किसी रागमें म' ($\frac{45}{32}$) भी संवादी अवश्य माना जाता। पर म का कहीं संवादी न होना इस बातको सिद्ध करता है कि र् का वादित्व चाहे भ्रान्त है या कल्पित।

ऊपरकी विवेचनासे यह सिद्ध है कि स्वरोंका वादित्व उनकी इष्टतापर निर्भर है। इस दृष्टिसे स्वरोंका विभाग सारिणीमें दिया जाता है—

सारिणी १८

स्वर	इष्टता	वादित्व	क्रिया
स प म	अति इष्ट	मुख्य वादी संवादी	लीनक, बहुल
ग ध	इष्ट		
र	पञ्चम इष्ट		
ग ध	अल्प इष्ट	गौण वादी संवादी	
न न	अनिष्ट	केवल संवादी	बहुल
र	अति अनिष्ट	कल्पित वादी संवादी	
म'	अति अति अनिष्ट	न वादी न संवादी	बहुल

उपरोक्त विचारसे यह विदित है कि जो ऐसा मानते हैं कि हिन्दुस्तानी संगीतके वादी-संवादी विचारका भरतके संवादसे कोई सम्बन्ध नहीं अर्थात हिन्दुस्तानी संगीतके वादी और संवादीमें चार या पांच स्वरोंका अन्तर होना ही स्पष्ट है, इनमें ठीक ठीक ९ या १३ श्रुतियोंका अन्तर होना आवश्यक नहीं वे हिन्दुस्तानी संगीतकी प्रकृतिको नहीं समझते। इस पद्धतिमें वादी संवादीके निर्णयके लिए दो नियमोंका उपयोग आवश्यक है—(१) वादी स्वर षड्ज या स्वरितके सम्बन्धसे इष्ट हो और (२) वादी और संवादी स्वरोंमें पञ्चम ($\frac{3}{2}$) या मध्यम ($\frac{4}{3}$) का सच्चा अन्तराल हो। कुछ अपवादोंसे इन नियमोंका मूल्य नहीं घटता। इन नियमोंका आधार भरतकी परम्परा रागोंका सम्वत्व और एकरसता तथा तम्बूरेकी संगति है। इसलिए इन्हें उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता। किसी रागके ठाट्या-

पहले दो यमक अङ्कोंमें बाटना फिर एक अङ्कके किसी दृष्ट स्वरको वादी निश्चित करना और तब दूसरे अङ्कमें वादीके पञ्चम ($\frac{3}{2}$) या मध्यम ($\frac{4}{3}$) स्वरको संवादी मानना—इसी प्रक्रियामें वादी संवादी निर्धारित होता है।

१३५ गान्धार-संवाद—यह बताया जा चुका है कि ग $\frac{5}{4}$ और ग ($\frac{6}{5}$) में भी इष्टता है। इसलिए पाश्चात्य संगीतमें स–प स–म संवादकी तरह ही स–ग या स–ग् संवाद भी माना जाता है। इसीसे महतिक संघातोंमें गान्धारका भी समावेश होता है जैसे 'स ग प' का गुरु संघात और 'स-ग्-प' का लघु संघात (अनुच्छेद ६२)। हिन्दुस्तानी संगीतमें स–प, स म संवादको कितना महत्त्व दिया गया है इसकी चर्चा की जा चुकी है। पर इसमें गान्धार संवादका प्रयोग भी विशेष रूपसे होता है। बहुतरे रागों में कुछ 'संगतियां' विशेष रंजितदायक मानी जाती हैं जो रागके परिचायक भी हैं। दो विशेष स्वरोंके एकके-बाद एक लगातार उच्चारणको 'संगति' कहते हैं। संगतिमें कमसे कम एक स्वरका लघन होता है। इसलिए संगतिके दो स्वरोंमें कभी-कभी मध्यम ($\frac{4}{3}$) या पञ्चम ($\frac{3}{2}$) का अन्तराल होता है, पर अधिक ग ($\frac{5}{4}$) या ग ($\frac{6}{5}$) का ही अन्तराल दीख पड़ता है। यह 'संगति' हिन्दुस्तानी संगीतकी विशेषताओंमें-से एक है। यह कहा जाता है कि दाक्षिणात्य रागोंका विकास पग पगके सञ्चारसे होता है और उत्तरीय रागोंका विकास 'मण्डूक-प्लुति' या लघनसे। जहा भी प्लुत होता है वहा इष्ट अन्तरालोंका ही प्रयोग होता है। इसलिए हिन्दुस्तानी संगीतकी संगति में गान्धार-संवादकी प्रधानता है। यह नीचेकी सारिणीमें दिये हुए कुछ उदाहरणोंसे स्पष्ट होगा।

सारिणी १६

राग	सगति	अतराल
दरबारी	न–प	६/५ (ग॒)
श्यामकल्याण	म–र (१०/९)	६/५ (ग)
मालश्री	ग–प	६/५ (ग)
दुर्गा	ध–म, र–म	५/४ (ग) ६/५ (ग)
खबावती	ध–म	५/४ (ग)
तिलग	न–प	६/५ (ग॒)
रागेश्वरी	ध–म	५/४ (ग)
सोरठ	ध–म, म–र	५/४ (ग), ६/५ (ग)
जागिया	ध–म	६/५ (ग)
धनाश्री	प–ग	५/४ (ग)
हसकिकणी	प–ग	६/५ (ग)

इस सारिणाम मध्यम-सवादवाली या पञ्चम-सवादवाली स्वर-सगीत नही दी गयी ह क्याकि एसा सगतियाको इतना तो प्रत्यक्ष ह । कुछ रागामें र–म या म–र सगतिका प्रयोग होता ह । ऐसी सगतियामें ऋषभका मान ९/८ न होकर १०/९ होना आवश्यक ह, नही तो र–म प्लुत अनिष्ट हो आयेगा।

ऊपरके कुछ उदाहरणासे ही यह स्पष्ट ह कि हिदुस्तानी रागाको मुख्य मुख्य सगतियाम गाधार-सवादकी प्रधानता ह ।

१३६ विवादी—भरतकी पद्धतिमें जब दो स्वराके बीच दो श्रुति या अध स्वरका अतर होता ह ता व परस्पर विवादी माने जाते ह । हिन्दुस्तानी पद्धतिमें वादी सवादीकी तरह हा विवादोका भी रागाम प्रयोग हाता ह । आधुनिक सगीतज्ञ प्राय विवादीकी परिभाषा 'वर्ज्य स्वर' बताते हैं ।

इस परिभाषाके अनुसार मन्तव्य अध स्वरका बंधन नहीं रहता, जैसे, यमन ठाटके मालश्री रागमें र और ध वर्जित हैं जो क्रमश स और ग स और प और न स एक एक स्वरके अंतरपर हैं।

पर वर्जित स्वर' से क्या तात्पर्य है ? यदि १२ स्वरवाले अधस्वरक ग्रामको ले तो सम्पूर्ण रागामें भी ५ स्वर वर्जित मानने पड़ेंगे। षाडव और ओडवमें तो क्रमश ६ और ७ वर्जित होंगे। यदि सात स्वरवाले ठाटका लें तो षाडव और ओडवमें क्रमश १ और २ स्वर वर्जित होंगे। सम्पूर्णमें कोई भी स्वर वर्जित न होगा। आधुनिक पद्धतिमें ठाटके प्रसंगमें ही वर्जित स्वरका व्यवहार होता है। जब मालश्रीमें र और ध वर्जित कहा जाता है तो अभिप्राय यह होता है कि यमन ठाटके ७ स्वरोंमें-से ये दो स्वर वर्जित हैं। यदि १२ स्वरोंका ध्यान होता तो र्, र, ग म, ध ध और न ये सातों स्वर वर्जित समझे जाते। अब यदि विवादी' को अध ठाटका वर्जित' स्वर माना जाये तो एक गड़बड़ी आ खड़ी होती है। कामोद यमन ठाटका सम्पूर्ण राग समझा जाता है। अर्थात इसमें कोई स्वर वर्जित नहीं है। पर विधान यह है कि इस रागमें न का धैवतके साथ 'विवादी' रूपमें प्रयोग होता है। यदि वर्जित और विवादीका अर्थ एक ही हो तो फिर यह न विवादी कहाँसे आया ? इसी तरह केदार ओडव षाडव माना जाता है क्योंकि इसके आरोहमें र और ग वर्जित हैं और अवरोहमें ग दुर्बल या वर्जित है। पर इस रागमें भी विवादी रूपमें र या ग का प्रयोग न होकर धैवतके साथ न का प्रयोग होता है। इन दृष्टांतोंसे यह प्रकट होता है कि न तो लक्षणमें और न लक्ष्यमें विवादी' और वर्जित पर्यायवाची शब्द हैं। ओडव और षाडव रागोंमें यदि वर्जित स्वरका प्रयोग हो तो राग भ्रष्ट हो जायेगा पर विवादी स्वरका थोड़ी मात्रामें कुशलतासे प्रयोग हो तो वह रक्तिदायक होता है। इस विचारसे वर्जित स्वर ठाटके उन स्वरोंको कहेंगे जिनका रागमें कभी प्रयोग नहीं होता। अर्थात जो उस ठाटके स्वर तो हैं जिससे राग निकला है

पर उस रागका स्वर नहीं है। 'विवादी' उसे कहेंगे जो रागके जनक ठाटके बाहरका स्वर है और जिसका अन्तर रागके किसी बड़े स्वरसे अर्ध स्वर या दो श्रुति है। 'वर्ज्य स्वर' असलमें 'मेल ग्राह्य' पर 'राग-वर्ज्य' है और 'विवादी स्वर' 'मेल वर्ज्य' है। 'केदार' रागकी रचना जनकमेल यमनमें आरोहीमें र, ग और अवरोहीमें ग का लोप करके होती है। इसलिए ये वर्जित स्वर माने जायेंगे। पर न्, जो जनकमेलके बाहरका स्वर है विवादी माना जायगा। यह धैवतसे अर्ध स्वरके अन्तरपर है और इसका प्रयोग भी धैवतके साथ ही होता है। वर्जित स्वरका कभी प्रयोग नहीं होता। पर विवादीका द्विश्रुतिक स्वरके रूपमें कभी-कभी प्रयोग होता है। वर्जित स्वरका रागमें 'अभाव' है पर 'विवादी' का वादी और संवादीकी तरह ही रागमें भाव है।

नीचेकी सारिणीमें कुछ मुख्य-मुख्य रागोंके विवादी स्वर दिखाये जाते हैं —

सारिणी २०

राग	ठाट	विवादी स्वर	संगति	अन्तराल
यमन	यमन	म	ग–म	[illegible]
हमीर, केदार, कामोद, छायानट, गौड़-सारंग	यमन	न्	ध–न	१६/१५
अल्हैया	बिलावल	न	ध–न	[illegible]
देस	खम्माज	ग	र–ग	[illegible]

इस सारिणीमें म, न् और ग् विवादीके स्पष्ट उदाहरण हैं जिनका प्रयोग क्रमशः ग, ध और र के साथ ही होता है। ये प्राय 'ग म ग',

'ध न ध' 'र ग़ र' आनके रूपमें समक्के साथ आते हैं। इसीलिए इन विवादी स्वरोंका रागके आनेक स्वरोंके साथ ही प्रयोग होता है।

पर विवादीके प्रयोगमें भी संवादकी भावना लुप्त नहीं होती। म, न और ग अधस्वरक होनेसे क्रमशः औनेक स्वर ग, ध और र के साथ तो विवादी हैं पर रागमें इनका संवादी स्वर भी अवश्य रहता है। यमनमें म का संवादी स, दसमें ग़ का संवादी न् और अल्हैया में न का संवादी म है। हमीर, केदार, कामोद, छायानट और गौड सारंग यमन ठाटके माने जाते हैं पर इनमें शुद्ध म को प्रधानता रहती है—म' का प्रयोग पञ्चमके साथ प्रवेशकके रूपमें होता है। इसलिए इन रागोंमें भी विवादी न का संवादी शुद्ध म रागमें मौजूद है। पर यमनमें शुद्ध म के अभावसे न का प्रयोग विवादीके रूपमें नहीं होता।

विवादी की इस विवेचनासे यह सिद्ध है कि हिंदुस्तानी संगीतमें वादी संवादीकी तरह ही विवादीका भी सच्चे भरतके अर्थमें ही प्रयोग होता है। आधुनिक लक्षणकारोंने इसे वर्ज्य स्वर का पर्याय मानकर लक्ष्यकी परम्पराके साथ व्यर्थ ही अन्याय किया है। लक्ष्यमें रागके विवादी स्वरका अपने पड़ोसी किसी औनेक स्वरके साथ अर्ध स्वर या दो श्रुतिका अन्तर होना आवश्यक है साथ ही साथ उस विवादीका एक संवादी स्वर भी अवश्य होना चाहिए, नहीं तो वह रागमें खप नहीं सकता। भरतके विवादीमें ये दोनों ही लक्षण पाये जाते हैं।

[च] श्रुति प्रयोग

१३७ आधुनिक पाश्चात्य ग्रामकी तरह ही आधुनिक हिंदुस्तानी ग्राम भी १२ रागियाम बटा है। पर क्या ये १२ स्वर ध्रुव हैं या ये अपने स्थानसे विचलित भी होते हैं ? यदि विचलित होते हैं तो किस अंशमें ? क्या भरतकी श्रुतियोंका प्रयोग अब भी प्रचलित है ? या १२ स्वरोंके अतिरिक्त और स्वरोंका भी प्रयोग होता है ? हिंदुस्तानी रागोंकी सूक्ष्म रचना समझनेके लिए इन प्रश्नोंपर विचार करना आवश्यक है।

सात शुद्ध और पाँच विकृत—इन १२ स्वरोंको प्रधान मानकर भी हिन्दुस्तानी संगीत पण्डित २२ श्रुतियोंकी प्रथा अभी तक चलाये जा रहे हैं। श्रुतियोंके कारण एक एक विकृत स्वरके कई-कई भेद हो जाते हैं। अहोबलकी पद्धतिमें र, ग, ध और न की विकृति उतार और चढ़ाव दोनों ही दिशामें हुई है। इससे कई स्वरोंके दो दो नाम पड़ गये हैं। आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धतिमें र, ग, ध और न की विकृति केवल उतारकी ओर होती है और म की चढ़ावकी ओर। शुद्ध स्थानसे क्रमशः एक एक श्रुति उतारनेपर कोमल तीन प्रकारके होते हैं—कोमल, अतिकोमल और सहकार। वैसे ही शुद्ध स्थानसे एक एक श्रुति चढ़नेपर तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम होते हैं। पण्डित विष्णु दिगम्बरने 'सहकार' की जगह अति-अति कोमल माना है।

पण्डित भातखण्डेने इन अति विकृत स्वरोंकी उपेक्षा की है। उनकी स्वर लिपिमें इन्हें स्थान नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि साधारण गायकोंमें अति विकृत स्वरोंका व्यवहार नहीं होता। पर इससे यह नहीं माना जा सकता कि ऊँची कोटिके गायकोंमें इनका अभाव है। हिन्दुस्तानी संगीतमें बहुत-सी गुरु परम्पराएं हैं जिन्हें 'घराना' कहते हैं। हर एक घरानेकी अपनी-अपनी गायकी होती है जो और घरानोंकी गायकीसे भिन्न है। घराने घरानेकी गायकीका भेद बहुत-कुछ इन विकृत स्वरोंके प्रयोगपर निर्भर है। जैसे किसी घरानेके भैरवमें कोमल धैवतका व्यवहार होता है और किसी घरानेके भैरवमें अतिकोमल धैवतका। कभी-कभी रागोंका भेद उनमें आनेवाले विकृत स्वरोंके भेदसे दिखाया जाता है जो दक्ष गायक ही कर सकते हैं। पण्डित विष्णु दिगम्बरने १८ स्वर माने हैं, जिनका प्रयोग उन्होंने रागोंकी स्वर लिपिमें किया है। इन १८स्वरोंके अतिरिक्त उन्होंने एक अति अति-कोमल ऋषभ भी माना है जिसे वे पूरियामें लगाते हैं।

१३८ * पूनाके असरकरने पूरे २२ स्वरोंका निरूपण किया है और यह भी बताया है कि किन किन रागोंमें वे लगाये जाते हैं। नीचेकी सारिणी

सारिणी २१

अंक	श्रुति	अहोबल	विष्णु दिगम्बर	असरेकर	असरेकर राग
१	छन्दावती	स	स	[illegible]	—
२	दयावता	पूव र	(अतिअ को र)	अतिकोमल र	भरव
३	रञ्जनी	कामल र	अतिकोमल र	कोमल र	भरवी
४	रक्तिका	गुद्ध र (पूव ग)	कोमल र	गुद्ध र	विभास
५	रौन्री	कामल ग (तीव्र र)	गुद्ध र	तीव्र र	यमनकल्या
६	क्राधा	गुद्ध ग (तीव्रतर र)	अतिकोमल ग	अतिकामल ग	टाडी
७	वज्रिका	तीव्र ग	कोमल ग	कामल ग	भरवी
८	प्रसारिणा	तीव्रतर ग	गुद्ध ग	मध्य ग	मालकौस
९	प्रीति	तीव्रतम ग	×	तीव्र ग	यमनकल्या
१०	माजनी	गुद्ध म (अ तीव्रत)ग	गुद्ध म	कोमल म	भरवी
११	क्षिनि	तीव्र म	तीव्र म	मध्य म	पूर्वी
१२	रक्ता	तीव्रतर म	तीव्रनर म	तीव्र म	यमनकल्या
१३	सन्दीपनी	तीव्रतम म	तीव्रतम म	तीव्रतर म	पूरिया
१४	आलापिनी	शुद्ध प	गुद्ध प	गुद्ध प	—
१५	मदन्ती	पूव ध	×	अनिकोमल ध	भरव
१६	रोहणी	कामल ध	अतिकामल [illegible]	कामल ध	भरवी
१७	रम्या	गुद्ध ध (पूव न)	कोमल [illegible]	गुद्ध ध	बि मा कौस
१८	उग्रा	कोमल न (तीव्र ध)	गुद्ध ध	तीव्र ध	यमनकल्या
१९	क्षोभिणा	गुद्ध न (तीव्रनर ध)	अतिकोमल न	अतिकामल न	गौड मलार
२०	ताया	तीव्र न	कोमल न	कोमल न	भरवी
२१	कुमुद्वती	तीव्रनर न	गुद्ध न	मध्य न	मालकौस
२२	मदा	तीव्रतम न	×	तीव्र न	यमनकल्या

म श्रुति मनाके साथ पण्डित विष्णुदिगम्बर और अमरकरका स्वर निरूपण दिया गया है। आखिरी खानमे अमरकरके दिये रागके नाम हैं जिनमें इन स्वरोंका प्रयोग होता है। हिल्मानके लिए अहोबलका स्वर निरूपण भी दे दिया गया है।

२२ श्रुतियोंपर इन २२ स्वरोंकी स्थापनासे ऐसा न समझना चाहिए कि ये ज्योंकी-त्यों भरत या शार्ङ्गदेवकी श्रुतियाँ हैं। यह बताया जा चुका है (अनुच्छेद १०१) कि ग्रामको २२ या २४ रागिणीमें विभक्त करनेकी अनेक विधियाँ हो सकती हैं और प्रत्येक विधिसे भिन्न भिन्न स्वर-क्रम तैयार होता है। चक्रिक प्रक्रियामें आरोही और अवरोही-क्रमसे ग्राम २४ रागिणियोंमें विभक्त होता है और सक्रमिक प्रक्रियाके द्वारा २२ रागियोंमें। हिन्दुस्तानी-सभ्यतामें सक्रमिक प्रक्रियाका प्रयोग होता है। इसलिए २२ श्रुतियोंको मानना आवश्यक है। पर इन श्रुतियोंके मान भिन्न भिन्न हो सकते हैं।

१६६ रागमें विकृत स्वरोंके अनेक भेदोंमेंसे किसी एकका विकल्पसे प्रयोग होता है। जिन दो स्वरोंमें एक श्रुतिका अन्तर हो, वे दोनों लगातार रागमें नहीं आते। पर क्रमबद्ध रूपमें इनका प्रयोग हो सकता है। इस प्रकारका प्रयोग प्रायः सभी पूर्वी देशोंमें प्रचलित है। हेल्महोल्ज़ने अपने एक मित्रका अनुभव बताया है कि मिस्र (इजिप्ट) में एक स्वरमें चतुर्थांशका व्यवहार होता है। बहुतेरे तान एक श्रुतिके अन्तरसे शुरू होकर शुद्ध स्वरपर ठहरते हैं। एलिस इसपर टिप्पणी लिखते हुए बताते हैं—"गायक यह क्रिया वैसी ही थी जैसी मैंने राजा रामपालसिंह (कालाकांकर) को अपने सितारपर दिखाते हुए पाया। उन्होंने सुन्दरीपर तार दबाकर स्वर पैदा करनेमें सुन्दरीपर अङ्गुली खिसकायी और इस तरह तारको खींचकर और तारका खिंचाव बढ़ाकर स्वरको एक चौथाई ऊंचा कर लिया और तब तारको बिना छेड़ खाली कर उसे अपने ठीक स्वरपर आनेको छोड़ दिया। तार जितनी दूर तक खींचा गया था उसे मैंने नाप

लिया और तब फुसतमें मैंने अपने द्विभुजसे असली और चढ़ाये हुए स्वराका आवृतियाँ नापी जिनका अन्तराल ४८ सेंट निकला।"[१] एक गुरु स्वर २०३ ७ सेण्ट होता ह इसलिए यह अन्तराल लगभग एक स्वरका चौथाई हुआ। इस प्रकारकी क्रिया वीणा आदि तारके बाजामें प्राय देखनेमें आती ह। पर यह निश्चय ह कि जहाँ एक श्रुतिके अन्तरवाले स्वरका प्रयोग होता ह वहाँ इसका मान निश्चित नहीं रह सकता।

१४० दाक्षिणात्य पद्धतिके आधुनिक पण्डितोंने श्रुति प्रयोगका विचार विस्तारके साथ किया ह। यह तो सभी मानते हैं कि गमकमें श्रुतियोंका प्रयोग होता ह। पर सुब्रह्मण्य अय्यरका मत ह कि दाक्षिणात्य गायकोंमें 'राग भाव' के लिए भिन्न भिन्न श्रुतियोंपर स्थित स्वर काममें आते हैं। कोमल निषादवाले दो रागोंके भाव इसलिए भिन्न भिन्न प्रतीत होते ह कि दोनोंके कोमल निषाद भिन्न भिन्न श्रुतियोंपर ह। अय्यरने वैज्ञानिक प्रयोग करके अपने विचार निश्चित किये हैं। उन्होंने सारिणी १४ में दिये हुए २२ सक्रमिक स्वरोंको माना ह पर इनका कहना ह कि इसमें मुझे सन्देह ह कि प्रचलित सक्रम-मशीनमें स्वरितके आगरिन रहनेपर ध्वनि कभी २५६/२४३, ३२/२७, ८१/६४, २७/२०, ४५/३२, ६४/४५, १२८/७५, १६/९ और २४३/१२८—इन जटिल भिन्नाङ्कवाले स्वरोंपर सीधे पहुँचता ह।[२] इन्होंने दाक्षिणात्य रागोंका विचार करते हुए एक एक रागके अनेक स्वर-सन्दर्भ बताये हैं। उदाहरणमें मायामालव गौडा (भैरव) को लें। इसके तीन भिन्न भिन्न स्वर-सन्धान हो सकते ह जैसे—

स्वर—	स	रे॒	ग	म	प	ध॒	न	स
मान—(१)	१	१६/१५	५/४	४/३	३/२	८/५	१५/८	२
		७५/६४				७५/६४		

१ Sensation of tones—Helmholtz (PP 265)

२ The Grammer South of Indian Music (PP 31)

(२) १   २५/२४   ९/८   ४/३   ३/२   २५/१६   १५/८   २

(२५/२४ — ९/८ : ६/५ ; २५/१६ — १५/८ : ६/५)

(३) १   १६/१५   ३२/२७   ४/३   ३/२   ८/५   ४८/२५   २

(१६/१५ — ३२/२७ : ६/५ ; ८/५ — ४८/२५ : ६/५)

इन प्रबन्धोंमेंसे पहला १२ रागिनियोंवाले ग्रामके सामान्य स्वरोंसे बना है। पर इसमें र–ग अन्तराल (२७/२५) अनिष्ट है। यह इष्ट अन्तराल (६/५) से लगभग दो कोमा या १० सवट छोटा है। इसलिए र–ग अन्तरालको इष्ट बनानेके लिए चाहे र को १० सवट उतारना होगा या ग को इतना ही चढ़ाना होगा। दूसरे प्रबन्धमें र को उतारकर और तीसरेमें ग को चढ़ाकर र–ग अन्तराल ६/५ बनाया गया है। इससे दूसरेमें र १३५/१२८ और तीसरेमें ग ३२/२७ हो जाता है। सुब्रह्मण्य अय्यरके मतानुसार इस सञ्चारमें ध्वनि निश्चय ही ३२/२७ से ४/३ पर जाती है और तब २५/२४ के अन्तरालसे उतरकर फिर म पर चढ़ता है।' अर्थात् गमकमें तीसरे प्रबन्धके ग ३२/२७ का व्यवहार होता है। पर उनके विचारमें दूसरा प्रबन्ध ही उचित और प्रचलित जान पड़ता है जिसमें र १३५/१२८ और ग ३२/२७ का गमकमें प्रयोग होता है।

इसी तरह उन्होंने अनेक रागोंके वैकल्पिक स्वर प्रबन्धपर विचार किया है जिससे यह भी पता चलता है कि एक ही रागमें स्वरके भिन्न भिन्न उपभेदोंका प्रयोग होता है। जैसे दाक्षिणात्य हिण्डोल (मालकौस) में न ९/५ के प्रधान होनेपर भी कभी-कभी न १६/९ और न २७/१६ काममें लाये जाते हैं। सुब्रह्मण्य अय्यरके मतानुसार कुछ स्वरोंपर ध्वनिका ठहराव होता है जो लाक्षणिक स्वर माने जाते हैं। ऐसे स्वर इष्ट होते हैं और सरल भिन्नाङ्कोंमें प्रकट किये जाते हैं। उनके मतानुसार ऐसे लाक्षणिक स्वरके मान सत्ता और राग जिनमें वे आते हैं, नीचेकी सारिणीमें दिये जाते हैं—

सारिणी २२

स्वर मान	संज्ञा	राग
१	षड्ज	स्वरित
१६/१५	त्रिश्रुति र	दरबार और मध्यमावती जब ग वर्ज्य हो
९/८	चतुःश्रुति र	खरहरप्रिया
(१०/९)		
३२/२७	मध्यम गान्धार	भैरवी आनन्दभैरवी
६/५	साधारण गान्धार	रीतिगौडा
५/४	अन्तरा गान्धार	यदुकुल्काम्भोजी
(८१/६४)		
४/३	शुद्ध मध्यम	
(२७/२०)		
४५/३२	प्रति मध्यम	रामप्रिया
३/२	पञ्चम	
८/५	द्विश्रुति धवत	परज
५/३	त्रिश्रुति धैवत	काम्भोदी
१६/९		सुरति
९/५	कैशिकी निषाद	रीतिगौडा
१५/८	काकली निषाद	शंकराभरण

इस सारिणीके [illegible], [illegible] और [illegible] इन तीन स्वरोंके विषयमें निश्चयक साथ नहीं कहा जा सकता कि इनका व्यवहार दाक्षिणात्य रागोंमें होता है या नहीं। पर सुब्रह्मण्य अय्यर ग [illegible] और म [illegible] के बीच एक तीव्र गान्धार और इसी तरह न [illegible] और स २ के बीच एक तीव्र निषाद पाते हैं। उनका अनुमान है कि यह तीव्र गान्धार [illegible] ही है।

१४१ दाक्षिणात्य संगीतके कर्नाटिक समालोचक रामचन्द्रन ने भी कर्नाटकी रागोंका श्रुति विश्लेषण किया है। उनके विचारसे भी श्रुतियोंका प्रयोग मुख्यतः गमकमें ही होता है। वे कहते हैं कि—"रागके स्वरोंमें श्रुतियोंकी बहुलता रहती है। यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि प्रत्येक रागमें एक स्वर कई रूप ग्रहण करता है। यह एक सामान्य प्रवृत्ति-सी है कि आरोहमें स्वरकी श्रुति चढ़ जाती और अवरोहमें उतर जाती है। किसी एक स्वरके प्रयोगमें गमकके कारण अनेक श्रुतियोंका ग्रहण होता है।[1]"

"शुद्ध मेल कनकाङ्गीको लें तो देखेंगे कि शुद्ध रे के कमसे-कम दो मान होते हैं—एक $\frac{१०}{९}$ और दूसरा $\frac{२५६}{२४३}$। इसी तरह शुद्ध ध $\frac{५}{३}$ और $\frac{१२८}{८१}$ का होता है[1]।"

इन्होंने एक प्रकारके 'स्वराभास' की भी चर्चा की है। जहाँ वीणा आदि तन्त्रोंमें म प म, न स न, ध न ध, स रे स आदि द्रुत प्रयोग होता है वहाँ बीचवाले ऊँचे स्वरका पूरा उच्चारण नहीं होता—ध्वनि इसके पास पहुँचकर लौट आती है। इसलिए बीचवाले स्वरका आभा-सामात्र प्रतीत होता है। इन्होंने शङ्कराभरणमें स का आवृत्ति २५६ मानकर प्रयोग-द्वारा निश्चित

---

१ The Ragas of Karnatic Music N S Ramchandran (pp 49)

(३) जिन स्वरोंपर ध्वनिका ठहराव होता है ऐसे लीनक या धीर स्वरोंका उच्चारण हिन्दुस्तानी-संगीतमें स्वरोंके संवाद और तमूरेकी संगति से नियन्त्रित होता है। इस संवाद और संगतिके आधारपर निकले हुए स्वरोंका मान निश्चित होता है। इसलिए रागका धीर स्वर सदा तमूरेकी संगतिसे इष्ट होगा।

(४) वादी स्वर प्रायः लीनक या धीर होते हैं अर्थात उनपर ध्वनि कुछ देर तक ठहरती है। इसलिए वादीका इष्ट होना आवश्यक है। इसी प्रकार संवादी स्वरका वादीसे सच्चा मध्यम या पञ्चम-संवादी होना भी जरूरी है।

(५) प्लुताचारमें जहाँ एक या एकसे अधिक स्वरोंका लंघन होता है अन्तिम स्वर सदा आरम्भके स्वरका पञ्चम-संवादी ($\frac{३}{२}$) मध्यम संवादी ($\frac{४}{३}$) या गान्धार-संवादी ($\frac{५}{४}$ या $\frac{६}{५}$) होगा।

(६) पदाचारमें, जहाँ स्वरोंका लंघन नहीं होता अर्थात प्रत्येक स्वरको छूकर ध्वनि ऊपर चढ़ती या नीचे उतरती है प्रायः एक स्वरका मान $\frac{१०}{९}$ न होकर $\frac{९}{८}$ होता है।

अब क्रमशः नियम ३ से नियम ६ तकके उदाहरण दिये जाते हैं—

(३) यदि किसी रागमें गान्धार या धैवतपर ठहराव हो तो इनका मान $\frac{८१}{६४}$ और $\frac{२७}{१६}$ न होकर क्रमशः $\frac{५}{४}$ और $\frac{५}{३}$ होगा क्योंकि ये स्वर तमूरेके स्वरितकी दृष्टिसे इष्ट हैं।

(४) गान्धार और धैवत वादी हों तो इनका मान $\frac{५}{४}$ और $\frac{५}{३}$ होगा और इनके संवादी—

($\frac{५}{४}$)⟶$\frac{५}{३}$ (ध) या $\frac{१५}{८}$ (न) और

($\frac{५}{३}$)⟶$\frac{५}{४}$ (ग) या $\frac{१०}{९}$ (र) होंगे।

तमूरक पञ्चमके आधारपर यदि र ९/८ वादी हो तो इसका संवादी प ३/२ या ध २७/१६ होगा।

इसी प्रकार यदि वादी कोमल गान्धार ६/५ हो तो इसका संवादी ध ८/५ या न ९/५ होगा।

सभी इष्ट वादियों और उनके संवादियोंका मान नीचेकी सारिणीमें दिया जाता है —

सारिणी २३

वादी	संवादी	
	मध्यम (४/३)	पञ्चम ३/२
स १	म ४/३	प ३/२
र ९/८	प ३/२	ध २७/१६
ग ६/५	ध ८/५	न ९/५
ग ५/४	ध ५/३	न १५/८
म ४/३	न १६/९ या स १	स २
प ३/२	र ९/८	स १
ध ५/३	ग ५/४	र १०/९

(५) प्लुताचारमें अनेक विलक्षण स्वरोंकी निष्पत्ति हो सकती है। नीचेकी सारिणियोंमें इष्ट स्वरोंके आधारसे भिन्न भिन्न प्लुताचारके द्वारा निकले हुए स्वर हो दिखाये गये हैं। इनमें पहली सारिणी आरोही क्रमकी और दूसरी अवरोही-क्रमकी है।

सारिणी २४

	प्लुत (आरोही)			
आधार स्वर	ग ६/५	ग ५/४	म ४/३	प ३/२
स १	ग ६/५	ग ५/४	म ४/३	प ३/२
र ९/८	म+ २७/२०	म′ ४५/३२	प ३/२	ध २७/१६
ग ६/५	म′ ३६/२५	प ३/२	ध ८/५	न ९/५
ग ५/४	प ३/२	ध २५/१६	ध ५/३	न १५/८
म ४/३	ध ८/५	ध ५/३	न १६/९	स २
प ३/२	न ९/५	न १५/८	स २	—
ध ५/३	स २	—	—	—

सारिणी २५

	प्लुत (अवरोही)			
आधार स्वर	ग॒ $\frac{६}{५}$	ग $\frac{५}{४}$	म $\frac{४}{३}$	प $\frac{३}{२}$
ग $\frac{५}{४}$	र $\frac{२५}{२४}$	— —	— —	— —
म $\frac{४}{३}$	र $\frac{१०}{९}$	र॒ $\frac{१६}{१५}$	— —	— —
प $\frac{३}{२}$	ग $\frac{५}{४}$	ग॒ $\frac{६}{५}$	र $\frac{९}{८}$	— —
ध $\frac{५}{३}$	म' $\frac{२५}{१८}$	म $\frac{४}{३}$	ग $\frac{५}{४}$	र $\frac{१०}{९}$

(६) पश्चात्यकी रीतिसे यदि स से ग पर जायँ तो तान 'स र ग' होगा। इस दशामें प्राप्त गान्धारका मान $\frac{५}{४}$ न होकर $\frac{८१}{६४}$ होगा, जैसे—

स $\frac{९}{८}$ र $\frac{९}{८}$ ग
१ $\frac{९}{८}$ $\frac{८१}{६४}$

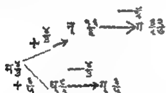
इसी तरह प–ध में ध $\frac{२७}{१६}$, प ध न' में न $\frac{२४३}{१२८}$ और ग–म' में म' $\frac{७२९}{५१२}$ होगा। पर इन क्रियाओंमें ग, ध, न या म' पर स्वरोंका ठहराव न होना चाहिए।

१४३ ऊपर दिये हुए नियमोंके उपयोगसे हिन्दुस्तानी रागोंके स्वर निर्णयमें बहुत कुछ मदद मिल सकती है। इन नियमोंका आधार संवाद है जो हिन्दुस्तानी-संगीतका प्राण है। संवाद स्वभाव प्रेरित होनेसे वैज्ञानिक नियमोंसे बँधा है और सामान्य गणितसे निश्चित किया जा सकता है। किस

रागमें कौन-कौन स्वर लगने चाहिए, इस विषयमें बहुधा गुणियोंमें मत भेद हो जाया करता है। पर ऊपरके नियमोंसे, जिनमें उत्तरीय पद्धतिके किसी भी आचार्यको कोई आपत्ति नहीं हो सकती, यह मतभेद बहुत-कुछ दूर किया जा सकता है। इस विषयमें इतना ही आवश्यक है कि राग-लक्षण और रागकी प्रकृति स्पष्ट हो और इस सम्बन्धमें कोई मतभेद न हो। यदि राग-लक्षणमें मतैक्य न हुआ, तो स्वर निर्णयमें भी भेद हो जायगा।

उदाहरण स्वरूप कुछ मुख्य रागोंपर नीचे विचार किया जाता है—
(१) मालकौंस—इस रागका वादी मध्यम है। म से ध्वनि म पर जाती है। ग मुख्यतः म के साथ आता है। म स ध और न पर प्लुत होता है। पञ्चम और ऋषभ वर्जित है।

नियम ५ के अनुसार प्लुताचारमें ध् $\frac{8}{5}$ और न $\frac{16}{9}$ होना चाहिए। अवरोही प्लुतमें ध $\frac{8}{5}$ स कोमल गान्धार ग $\frac{6}{5}$ और न् $\frac{16}{9}$ से ग $\frac{32}{27}$ मिलना है। जैसे—



मालकौसके इस स्वर निदानसे ज्ञात पड़ता है कि इसमें दो प्रकारके कोमल गान्धारका प्रयोग होता है—(१) ग $\frac{32}{27}$ और (२) ग $\frac{6}{5}$। पहला दूसरेसे एक कामा ($\frac{81}{80}$) उतरा हुआ है। अवरोहमें ग् $\frac{32}{27}$ का प्रयोग होता है। अनिष्ट अन्तराल होनेपर भी इससे स्वरित स पर जानेमें कोई बाधा नहीं होती। फिर पश्चात्में नियम (६) के अनुसार म-ग में एक गुरु स्वरका अन्तर होना चाहिए जिसमें ग $\frac{32}{27}$ की ही निष्पत्ति होती है। इस गान्धारके अनिष्ट होनेसे ही यह स्वर मालकौसमें लीनक नहीं होता।

आरोहीमें और विशेष रूपसे म ग॒ म तानमें ग॒ ६/५ का प्रयोग होता है। ऐसे प्रयोगमें स्वरका एक कोमा चढ़ जाना स्वाभाविक है।

(२) मुल्तानी-टोड़ी—मुलतानीका वादी पञ्चम और संवादी षड्ज माना जाता है। आरोहमें रे और ध वर्जित हैं इसलिए ध्वनि प्लुताचारसे सा से ग॒ पर और प से नि पर जाती है। अवरोहमें पदाचारका प्रयोग होता है। पर प–ग॒ प्लुत अवरोहमें भी पाया जाता है। इसलिए इस रागका स्वर नियम पाँचवें और छठे नियमके अनुसार हो सकता है। जैसे—

(प्लुताचार) सा १ —(+ ६/५)→ ग॒ ६/५ —(+ ५/४)→ प ३/२ —(+ ५/४)→ नि १५/८

(पदाचार) ग॒ ६/५ —(− ९/८)→ रे॒ १६/१५

(संवाद) ग॒ ६/५ —(+ ४/३)→ ध॒ ८/५

रे॒ १६/१५ —(+ ३/२)→ ध॒ ८/५

रे॒ १६/१५ —(+ ४/३)→ म' ६४/४५

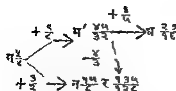
इस रागमें तीव्र मध्यमका प्रयोग कई रीतियोंसे होता है। यह कभी प्रवर्तक स्वर और कभी स्वतन्त्र स्वरके रूपमें आता है। इसलिए रीतिभेदसे इसके मानमें भी भेद हो जाता है। प्रवर्तक स्वरके रूपमें म' ६४/४५ का प्रयोग होता है। प से म' पर उतरनेमें अर्धस्वरका अन्तराल आवश्यक है, इसलिए यहाँ म' ४५/३२ आता है। प ग म' ग रे सा तानमें या ग॒ म' तानमें म' का मान ३२/२५ होता है।

टोड़ीमें मुल्तानीके ही स्वर लगते हैं। पर इसका वादी स्वर कोमल गान्धार है। वादी होनेसे, नियम ४ के अनुसार इसे इष्ट होना चाहिए। यह

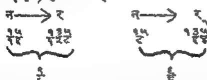
बताया जा चुका है कि ग ६/५ पूरी तरह इष्ट नहीं है (अनुच्छेद ५५)। फिर यह माना जाता है कि टोडीका कोमल गान्धार मुल्तानीके कोमल गान्धार से कुछ उतरा हुआ लगता है। ग ६/५ से एक कोमा उतरा हुआ ग ३२/२७ है। पर यह तो अनिष्ट है जिसपर तमूरेकी संगतिमें स्वर कभी ठहर ही नहीं सकता। टोडीमें गान्धारपर ध्वनि जितनी देरतक और जिस रीतिसे ठहरती है, उससे यह सिद्ध है कि टोडीका गान्धार बहुत ही इष्ट है। ग ६/५ से उतरा हुआ पर पूरी तरह इष्ट सात्विक गान्धार होता है जिसका मान ७/६ है। तमूरेके स्वरोंमें सात्विक निषाद (नि^{7} ७/४) पाया जाता है (अनुच्छेद ११९) जिसका ग॒^{7} ७/६ से पञ्चम संवाद है। तमूरेके आंशिकोंमें सप्तम आंशिक भी बली होता है। इसलिए तमूरेके साथ ग^{7} ७/६ का पूरा मेल है और इसीलिए इसपर ध्वनि देर तक ठहर सकती है। ग ६/५ और ग॒^{7} ७/६ में १२ सेवटका अन्तर है जहां ग॒ ६/५ और ग॒ ३२/२७ में केवल ५ सेवटका है। १२ सेवटका अन्तर अर्ध स्वर (२८ सेवट) के लगभग आधा है। इसीसे मुल्तानी और टोडीके गान्धारोंका अन्तर इतना स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रवीण गायक इसका अनुभव करता है।

टोडीके शेष स्वर सामान्य ग्रामके स्वर हैं या वे भी सात्विक जातिके हों हैं यह कहना कठिन है। हो सकता है कि इनमें सात्विक म'^{7} २१/१६ और सात्विक ध॒^{7} १४/९ का प्रयोग होता हो। पर यदि सामान्य स्वरोंका व्यवहार होता है तो उनका आधार स नहीं, पञ्चम है।

(२) पूरिया मारवा—पूरियाका वादी गान्धार है और इसमें पञ्चम वर्जित है। गान्धार वादी होनेसे इसका इष्ट अर्थात् ग ५/४ होना आवश्यक है। ग–म' पत्ताचारमें ९/८ का अन्तर और म'–ध प्लुतमें ६/५ का अन्तर होना चाहिए। फिर ग–न का पञ्चम संवाद और म'–रे का अवरोही प्लुत (४/३) भी निश्चित है। इस विवरणके अनुसार पूरियाका स्वर विन्यास इस प्रकार होगा—



इस स्वर विन्यासमें र् को छोड़ और सभी स्वर परिचित और प्रचलित है। १३५/१२८ का मान षड्जसे २३ है अर्थात् र् १६/१५ (२८ से) से यह एक कामा उतरा हुआ है। अवरोहमें इसके प्रयोगमें कोई बाधा नहीं पड़ती क्योंकि यह षड्जके अवसादके रूपमें आता है। आरोहमें बाधा अवश्य पड़ती है क्योंकि यह अर्ध स्वरसे छोटा है। पर पूरियामें बहुधा षड्ज-का लंघन करके 'न र्' या 'न र' का प्रयोग होता है, और ऐसे प्रयोगमें र् १६/१५ लिया जाये तो यह अन्तराल गुरु स्वरसे एक कामा बढ़ जायगा जो अनुचित है। पर र् १३५/१२८ को लिया जाये तो इन दो स्वरोंका अन्तराल एक गुरु स्वर (९/८) हो सकता है। जैसे—



इससे यह जान पड़ता है कि पूरियामें र् १३५/१२८ का ही प्रयोग होता है।

आरोहमें म'–ध प्लुतसे ध २७/१६ निकलता है। पर अवरोहमें 'न ध ग' या 'म' ध ग' तानोंमें इए धैवत ५/३ का प्रयोग होता है, क्योंकि अवरोही प्लुत ध–ग का [illegible] होना आवश्यक है, जैसे—



इसके अतिरिक्त अवरोहमें या स्पर्शमें रागके मुख्य धैवत २७/१६ का एक कामा उतर जाना स्वाभाविक है।

इसी तरह ग–र् अवरोहमें र् का मान १६/१५ होना चाहिए जो र्

$\frac{१३५}{१२८}$ से भी एक कोमा उतरा हुआ है। जैसे—

—$\frac{६}{५}$

ग $\frac{५}{४}$——>र $\frac{२५}{२४}$

मारवाका वादी स्वर कोमल ऋषभ काल्पनिक सा प्रतीत होता है। पर धैवतका संवादी होना मान्य है। इसमें गान्धारकी भी प्रधानता मानी जाती है। इस हिसाबसे मारवामें इष्ट धैवत $\frac{५}{३}$ का ही व्यवहार विशेष होना चाहिए। गान्धारका मान भी $\frac{५}{४}$ ही होना उचित है। ध $\frac{५}{३}$ की संगतिसे म′ $\frac{२५}{१८}$ और र $\frac{२५}{२४}$ का प्रयोग होगा। जैसे—

—$\frac{६}{५}$ —$\frac{४}{३}$

ध $\frac{५}{३}$——> म′ $\frac{२५}{१८}$——> र $\frac{२५}{२४}$

म′–ग संगतिमें गांधार $\frac{१००}{८१}$ आता है या ग $\frac{५}{४}$ अपनी प्रधानता बनाये रखता है, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता।

१४४ ऊपर दिये हुए कुछ उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी संगीतके व्यावहारिक नियमोंसे एक एक स्वरके अनेक अनेक भेद निकलते हैं जो भिन्न भिन्न श्रुतियोंपर स्थित हैं। ये उपस्वर कहीं तो आकस्मिक होते हैं और कहीं प्रमुख। यों तो स्थूल विचार और व्यवहारमें इन उपस्वरों या श्रुतियोंकी उपेक्षा की जा सकती है। पर सूक्ष्म विचार और शुद्ध व्यवहारमें इनपर ध्यान रखना आवश्यक है। यह समझ बैठना कि हिन्दुस्तानी संगीतके सारे राग बारह निश्चित स्वरोंसे ही पूर्ण होते हैं, सर्वथा अनुचित है। हिन्दुस्तानी संगीतमें ऊपर दिये हुए ६ नियमोंके अनुसार ऐसे अनेक स्वरोंका उपयोग होता है जो इन बारह निश्चित स्वरोंके अतिरिक्त हैं। *इस प्रकार इन स्वरोंको बारह मुख्य श्रुतियोंके अतिरिक्त और भी श्रुतियाँ काम* में आती हैं। पर इन श्रुतियोंका भरतकी २२ श्रुतियोंसे कोई नित्य सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। यों तो भरतकी श्रुतियाँ भी तीन प्रकारकी बतायी गयी हैं—एक कोमा (५ सेवट) दूसरा लघु अर्ध स्वर (१८ सेवट) और तीसरा लीमा (२३ सेवट) (अनुच्छेद १००)। पर स्वरोंके उतार

चढावमें इनका स्वच्छन्द प्रयोग होता है। इनके अतिरिक्त सान्विक संवाद की श्रुतियाँ जिसका उदाहरण टोडी रागकी विवेचनामें दिया गया है, भरतके श्रुति प्रबन्धमें नहीं पायी जाती। ऐसी और भी विलक्षण श्रुतियाँ हो सकती हैं जो संवादिक नियमोंसे निकलें पर जिनका अस्तित्व भरतकी पद्धतिमें न पायी जाये। तात्पर्य यह कि हिन्दुस्तानी संगीतकी अनेक विरल श्रुतियाँ भौतिक नियमोंसे निकलती हैं, पर इससे यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि इन श्रुतियोंके निष्करणसे भरतकी २२ श्रुतियोंवाली पद्धतिकी पुष्टि होती है।

२७ हिन्दुस्तानी सगीतकी वैज्ञानिकता और परम्परा

१४५ हिन्दुस्तानी सगीतकी विशेषताए पिछले अध्यायाम जगह-जगह बतायी गयी ह । यहा उन्हीको चचा एक साथ सक्षेपमें की जाती ह जिससे हिन्दुस्तानी सगीतकी वज्ञानिकता और परम्परापर कुछ प्रकाश पडगा ।

उत्तर और दक्षिण दोना ही क्षेत्राम सगीत सम्बन्धी कुछ धारणाएँ समान रूपसे प्रचलित हैं । उनम स एक ता यह ह कि दाक्षिणात्य सगीत पद्धति हिन्दुस्तानी सगीत पद्धतिकी अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है दूसरी यह कि दाक्षिणात्य पद्धति शुद्ध भरत परम्पराका अनुकरण करती ह और उत्तरीय पद्धतिपर विदेशियाका प्रभाव पडनस यह प्राचीन हिन्दू परम्पराम अलग हो गयी है । ये दोनों धारणाएँ हिन्दुस्तानी सगीतक तत्व और इसकी विशेषताआक अज्ञानके कारण पदा हुई ह ।

शायद दाक्षिणात्य पद्धतिको वज्ञानिक इसलिए कहा जाता ह कि उसका वर्गीकरण नियमित ह । इसम सन्देह नही कि हिन्दुस्तानी सगीतका वर्गीकरण उतना नियमित नही ह । पर केवल वर्गीकरणका नियमित होना ही वैज्ञानिकताका द्योतक नही ह । वेंकटमखीका मलकर्ता निरूपण गणितसाध्य ह । पर सगीतकी विवचनामें गणितकी उतनी महत्ता नही ह जितनी ध्वनि विज्ञानकी । इसलिए किसी भी सगीत-पद्धतिको वज्ञानिकता ध्वनि विज्ञानके नियमोंके आधारपर ही आँकी जा सकती ह । ध्वनि विज्ञानकी दृष्टिसे दाक्षिणात्य-पद्धतिपर विचार करनपर उसकी वज्ञानिकताम त्रुटियाँ ही अधिक दीख पडती हैं । दाक्षिणात्य शुद्ध ग्राम (कनकाङ्गी) किसी भी वज्ञानिक पद्धतिमें स्वीकृत नही ह । यह अधस्वरक ग्राम ह जिसमें दो अध स्वर लगातार आत हैं (अनुच्छेद १२०) । दो लगातार अध स्वरकी इस अव्यावहारिकताक कारण ही पुरन्दरदासने मायामालवगौड (भरव) को शुद्ध ग्राम माननेका प्रस्ताव किया था (अनुच्छेद १२०) । पर यह भी अधस्वरक

ग्राम ही है। शुद्ध वैज्ञानिक ग्राम बिलावलमेल माना जाता है, जिसके प्रत्येक स्वर स्वरित (षड्ज) के सम्बन्धसे इष्ट हैं। बिलावलमेल सरल, इष्ट और स्वभावसिद्ध है (अनुच्छेद १२०)। दक्षिणमें भी शंकराभरण (बिलावल) का ही व्यवहारमें अधिक प्रचार है। शंकराभरणकी यह प्रधानता इस बातकी मूक स्वीकृति है कि दाक्षिणात्य शुद्ध-ग्राम (कनकाङ्गी) अवैज्ञानिक है।

स्वरोंकी इष्टता और संवादकी व्याख्या और इनकी औचित्य सिद्धिमें हेल्महोल्ज़ने महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंका निरूपण किया है। इन सिद्धान्तोंके कारण ही संगीत ध्वनि विज्ञानकी परिधिके भीतर आ गया है। पर दाक्षिणात्य पद्धतिमें इष्टता और संवादके सिद्धान्तकी उपेक्षा की गयी है। वेंकटमखीने ७२ मेलकर्त्ताओंकी पद्धतिका निरूपण केवल सिद्धान्तमें ही किया। ऐसा न समझना चाहिए कि उन्होंने प्रचलित रागोंका वर्गीकरण ७२ मेलोंमें किया है। ये सभी मेल दक्षिणमें प्रचलित नहीं हैं फिर भी ऐसे बहुत से मेल और राग प्रचलित हैं जिनके स्वर अनिष्ट हैं और जिनके स्वर-स्थान विसंवादी हैं (अनुच्छेद १२९)। विसंवादी और अनिष्ट मेलोंके निरूपणका परिणाम और प्रमाण यह है कि दाक्षिणात्य पद्धतिमें अर्ध स्वरसे भी छोटे अन्तरालका विधान पाया जाता है (अनुच्छेद १२०, १२२)।

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धतिमें बिलावल ठाटको शुद्ध मान लेनेसे इसकी वैज्ञानिकता प्रमाणित होती है। फिर इसमें इष्टता और संवादको बड़ी प्रधानता दी गयी है। रागका प्रसार, वादी और संवादीको ही केन्द्र मानकर होता है। पञ्चम-प्लुत मध्यम-प्लुत और गान्धार-प्लुतका व्यवहार बहुत अधिक होता है और इनमें इष्ट अन्तरालोंका ही प्रयोग होता है (अनुच्छेद १४२)। मेलमें कोई भी ऐसा स्वर ग्रहण नहीं किया जा सकता जिसका पञ्चम-संवादी या मध्यम-संवादी भी उस मेलमें मौजूद न हो (अनुच्छेद १२५)। यहाँतक कि विवादी स्वर (नि ग म) का प्रयोग भी किसी रागमें तभी हो सकता है जब इसका संवादी स्वर रागमें मौजूद हो (अनुच्छेद

१३६)। स्वर संवादसे हो मलक पर्वाङ्ग और उत्तराङ्गका यमकभाव प्रस्फुटित होता है जो हिन्दुस्तानी पद्धतिमें अनिवार्य सा जान पड़ता है (अनुच्छेद १३०)। यमकभावकी प्रधानता मारवा ठाटकी विवेचनासे पूरी तरह सिद्ध हो जाता है (अनुच्छेद १३०)। इसी संवाद और यमकभावकी निष्पत्तिके लिए हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतिमें ७२ मेलामें से १०को छोड़ शेष सभी मेलोंका निराकरण किया गया है (अनुच्छेद १२९)। भातखण्डेके इन मेल निरूपणसे यह नया भ्रम फैल गया है कि दाक्षिणात्य रागोंका क्षेत्र बड़ा ही विशाल है और हिन्दुस्तानी रागोंका क्षेत्र १० मेलों तक ही संकुचित है। तत्त्व यह है कि विज्ञान और कलाकी प्रेरणासे हिन्दुस्तानी संगीतमें पूरी तरह संवादी १० मेलोंके अतिरिक्त और किसी भी मेलको स्थान नहीं है। विज्ञानके सर्व-स्वीकृत नियमों और कलाके सब प्रिय सौष्ठवका परित्याग करके संगीतके क्षेत्रको विस्तृत करनेकी आकांक्षा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतिमें नहीं पाया जाता।

संवादकी भाँति ही अर्ध स्वर अन्तरालवाले दो स्वरोंका परस्पर 'विवाद' भी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धतिमें माना जाता है, जो वैज्ञानिक नियमसे बँधा है।

यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक है कि कलाके क्षेत्रमें विज्ञानका अधिकार गौण है। विज्ञान कलाके विधि निषेधोंको केवल भौतिक दशापर प्रकाश डालता है। यह कलाकारका अनुभव है कि किन्हीं दो स्वरोंकी संगति अप्रिय होती है और किन्हीं दो स्वरोंकी प्रिय। जैसे सन्य संगति भी प्रिय होती है और जिन दो स्वरोंका अन्तराल अर्ध स्वर ($\frac{१६}{१५}$) होता है उनकी संगति सबसे अधिक अप्रिय होती है। हेल्महोल्ट्ज़ने बताया है कि जिन दो स्वरोंकी संगति अप्रिय होती है उनमें डोलकी मात्रा अधिक होती है। लगभग ३३ डोल प्रति सेकेण्ड सबसे अधिक अप्रियता पैदा करता है (अनुच्छेद ५६)। मध्य सप्तकमें यह दशा लगभग अर्ध स्वरके अन्तरालवाले स्वरोंमें ही पायी जाती है। पर दो स्वरोंका डोल क्यों अप्रिय

होता है, यह विज्ञानका तथ्य नहीं, यह तो कलाकी अनुभूति है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कोई भी संगीत-पद्धति सच्चे अर्थमें वैज्ञानिक नहीं होती। इसमें वैज्ञानिकता इतनी ही हो सकती है कि इसके कलात्मक तथ्यों और अनुभूतियोंकी मौलिक भित्ति वैज्ञानिक नियमोंसे समर्थी जा सके। इस अर्थमें हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धतिकी वैज्ञानिकता पूरी तरह सिद्ध होती है। भरतने दो श्रुति (अर्ध स्वर) अन्तरवाले स्वरोंको परस्पर विवादी माना है। हिन्दुस्तानी संगीतमें अर्ध स्वरका अन्तराल विवादी माना जाता है (अनुच्छेद १३६)। हेल्महोल्ज़ने डोलकी धारणासे इस विवाद'की भौतिक दशाको व्यक्त और स्पष्ट किया है। रागकी एक रसताके लिए पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्गका समकभाव होना आवश्यक है। इस समक भावकी सृष्टि तभी हो सकती है जब पूर्वाङ्गके प्रत्येक स्वरका पञ्चम या मध्यम-संवादी स्वर उत्तराङ्गमें हो। दो स्वरोंमें पञ्चम या मध्यम संवाद तभी हो सकता है जब इनकी आवृत्तियोंका अनुपात $\frac{3}{2}$ या $\frac{4}{3}$ हो। इस प्रकार हिन्दुस्तानी संगीतके कलात्मक तथ्य वैज्ञानिक नियमोंसे अभिव्यक्त होते हैं।

अब रही परम्पराकी बात। यह बताया जा चुका है कि शार्ङ्गदेवका शुद्ध ग्राम और भरतका शुद्ध ग्राम एक नहीं है (अनुच्छेद १०८)। दक्षिणका शुद्ध ग्राम शार्ङ्गदेवके शुद्ध ग्रामका अनुकरण करता है (अनुच्छेद १०८)। उत्तरका शुद्ध ग्राम भरतके शुद्ध ग्रामसे निकला है (अनुच्छेद ११५)। उत्तरीय मध्ययुगीय अहोबलका ग्राम काफी मेल [redacted] जो अवरोही भरत ग्रामका शुद्ध आरोही रूप है (अनुच्छेद ११३)। यदि भरत ग्रामकी श्रुतियोंको भी आरोही क्रममें स्थापित करें तो वह आधुनिक शुद्ध ग्राम (बिलावल मेल) बन जाता है (अनुच्छेद ११५)। यह प्रत्यक्ष है कि भरत-ग्राम काफी और बिलावलकी तरह ही द्विस्वरक है। दक्षिणके अवस्वरक ग्रामका सम्बन्ध इससे नहीं जोड़ा जा सकता। ग्रामकी तरह ही संवादकी प्रधानता हिन्दुस्तानी संगीतमें भरत-पद्धतिसे आयी है। भरतके ग्राममें हिन्दुस्तानी

पद्धतिकी तरह ही यमकभाव दीख पडता है। इस ग्राम यमकत्वको भरतने इतना महत्त्व दिया है कि ओडवमें वे ही दो स्वर वर्जित हुए हैं जिनका परस्पर पञ्चम-सवाद है (अनुच्छेद ८८)। हिंदुस्तानी सगीतमें भी यह नियम माना जाता है। अन्तर इतना ही है कि भरतने ऐसी जगहोंपर पञ्चम सवादको ही प्रशस्त माना है। पर हिंदुस्तानी सगीतमें पञ्चम और मध्यम—दोनों ही सवाद ग्राह्य हैं। इसी तरह हिन्दुस्तानी सगीतमें विवादीका प्रयोग शुद्ध भरतके मन्तव्यके अनुसार होता है। नि, ग और म का प्रयोग विवादी रूपमें क्रमश ध, रे और ग के साथ होता है जिनसे उनका अन्तर अर्ध स्वर (दो श्रुतियाँ) है (अनुच्छेद १३६)। फिर यदि भरतकी मूर्च्छनाको देखें तो इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि आधुनिक हिंदुस्तानी संगीतमें तन्त्रोंका स्वर प्रबन्ध भरतके मूर्च्छना प्रबन्धका अनुकरण मात्र है। हिंदुस्तानी तन्त्रोंमें बाजेका तार मध्यममें मिला होता है। इसीसे भरतने मध्यमको अविलोपी कहा है (अनुच्छेद ८७)।

हिंदुस्तानी सगीत पद्धतिमें विदेशी अश बहुत अल्प दीख पडता है। या तो भरतका आरोही स्वर प्रबन्ध, मूर्च्छना प्रबन्ध, मध्यमकी प्रधानता, न्यास स्वरके गुण धर्म आदि अनेक बातें प्राचीन यूनानी पद्धतिसे इतनी मिलती हैं कि भरत-पद्धतिपर यूनानी प्रभावका पडना आसानीसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता (अनुच्छेद ८६, ८७, ८८)। कुछ विद्वानोंका मत है कि भरत नाट्यशास्त्रमें यूनानी नाट्य शास्त्रका बहुत कुछ प्रभाव है। भरतने अपने नाट्यशास्त्रमें ही प्रसगवश सगीतका निरूपण किया है। इस सगीत-पद्धतिकी प्राचीन यूनानी पद्धतिके साथ स्पष्ट समतासे नाट्यशास्त्रपर यूनानी प्रभावके सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। पर यह यूनानी प्रभाव तो भरतकी परम्परासे भारतवर्षकी सभी पद्धतियोंमें पाया जाता है। विचार यह करना है कि हिंदुस्तानी सगीतपर मुसल्मानोंके ससर्गसे इरानी या अरबी पद्धतिका कितना प्रभाव पडा है। हिंदुस्तानी सगीतके आदि मुसल्मान आचार्य अमीर खुसरू हुए हैं। कहा जाता है कि उन्होंने कई ईरानी धुनोंका भारतीय

संगीतमें समावेश किया। पर उनकी संगीत पद्धति सांगोपांग भारतीय थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। उन्होंने स्वयं इस बातकी घोषणा की है (अनुच्छेद ७७)। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने सितार और तबलेका ईजाद किया। पर सितार और तबला अतिप्राचीन वीणा और मदंगके क्रमशः संक्षिप्त रूप हैं ये कोई विदेशी बाजे नहीं हैं। उत्तरके दूसरे प्रसिद्ध आचार्य तानसेन माने जाते हैं। वे पहले हिन्दू थे और वृन्दावनके स्वामी हरिदासके शिष्य थे। तानसेनके साथ ही अकबरके दरबारमें प्रसिद्ध बीनकार मिसरी सिंह थे जो तानसेनकी कन्यासे विवाह करनेके बाद मुसलमान हो गये थे। ये मिसरी सिंह सरस्वती वीणामें इतने प्रवीण थे कि तानसेन भी इनसे हार मानते थे। इन्हींके वंशमें मुहम्मदशाह (१७२० ई०) के समयमें नियामतखाँ हुए जो सदारंगके नामसे आज भी प्रसिद्ध हैं। ये खयाल पद्धतिके प्रमुख प्रवर्तक समझे जाते हैं। इन्होंने सैकड़ों खयालके गाने बनाये जिनमें राधाकृष्णकी लीलाओंका वर्णन है। पर ये स्वयं प्रवीण बीनकार थे। इनका एक खयाल प्रसिद्ध है जिसमें उन्होंने कहा है कि 'आदि महादेव बीन बनाय पाये नयामतखाँ।' इन्हींके वंशज आधुनिक समयके प्रसिद्ध बीनकार रामपुर दरबारके वजीरखाँ हुए हैं। इसी दरबारके बीनकार सादिकअलीखाँ अपनेको स्वामी हरिदासका वंशज बतलाते हैं। तानसेनके बड़े बेटे विलास खाँसे प्रसिद्ध रबाबियोंका घराना चला है और उनके दूसरे बेटे सुरतसेनसे सितारियोंका। यह सेनिया घरानेके नामसे प्रसिद्ध है।[१]

इस प्रकार यह देखा जाता है कि हिन्दुस्तानी संगीतके सभी प्रसिद्ध घरानोंकी वंशावली और गुरु-परम्परा हिन्दू नायकों और संगीत गुरुओंसे ही चली है।

---

१ 'Tantra' in Indian Music—G P Dwivedi The Sunday Leader October 21 and November 4 1945

यह सिद्ध है कि शार्ङ्गदेव आदि द्वारा वर्णित प्राचीन प्रबन्ध-गायन और ध्रुवपदसे ही हिन्दुस्तानी संगीतकी ध्रुपद शैलीका विकास हुआ है। इस ध्रुपदकी चार अन्य शैलियाँ 'बानी' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इन बानियोंके नाम (१) नौहार (२) गौरहार (३) खण्डार और (४) डागुर हैं। गौरहार बानी तानसेनकी कही जाती है। खण्डार बानी बहुत ही प्राचीन है जो हिन्दूकालसे ही चली आती है। डागुर बानी स्वामी हरिदासकी है। इसी बानीसे खयालकी शैली निकली है। आरम्भमें खयालकी शैली ध्रुपदसे इतनी मिलती जुलती थी कि इसे लोग 'लँगड़ा ध्रुपद' कहते थे।[1] आगे चलकर विलम्बित खयालसे छोटा खयाल और फिर इससे टप्पा और ठुमरीका विकास हुआ। अब ये सभी शैलियाँ साथ साथ प्रचलित हैं। हिन्दुस्तानी संगीतकी इन भिन्न भिन्न शैलियोंके विकास-क्रमसे यह स्पष्ट है कि इनका स्रोत प्राचीन प्रबन्ध शैलीसे ही अनवरत चला आ रहा है।

हिन्दुस्तानी संगीतपर अनेक मुसलमान संगीत-पण्डितोंने उर्दूमें पुस्तकें लिखी हैं, जैसे, नग़माते आसफी (रज़ाखाँ), सरमाय इशरत (सादिक अलीखाँ) मुआरिफुल नग़मात (राजा नवाबअलीखाँ), मादनुल्मूसीकी (मुन्शी वाजिदअली), गुन्चय राग आदि। पर इन सभी पुस्तकोंमें श्रुति ग्राम, मूर्च्छना आदिका विचार प्राचीन पद्धतिकी परिपाटीपर ही किया गया है। इनमें कहीं भी ईरानी या अरबी संगीत-पद्धतिकी छाया नहीं दीख पड़ती।

यह ऐतिहासिक घटनाओंका परिणाम है कि हिन्दुस्तानी संगीतके प्रधान उन्नायक और विधायक अधिकतर मुसल्मान ही रहे हैं। पर उन्हें बैजूबावरे, गोपाल नायक और स्वामी हरिदासकी परम्पराका गौरव रहा है। वे सदा संगीत रत्नाकरकी ही दुहाई देते रहे हैं। जहाँतक संगीतका

---

१ हिन्दुस्तानी संगीत प्रवेशिका (दूसरा भाग)—श्री मुरारीप्रसाद।

सम्बन्ध है, उनकी आत्मा पूरी तरह भारतीय रही है। उनकी विलक्षण प्रतिभासे हिंदुस्तानी संगीतके गान और तन्त्रके व्यवहारमें आश्चर्यजनक उन्नति और विकास हुआ है। पर इस विकासकी प्रेरणा उन्हें भारतीय पद्धतिसे ही मिली है, किसी विदेशी पद्धतिसे नहीं। इसलिए केवल मुसलमानोंका सम्बन्ध देखकर ही हिंदुस्तानी संगीतपर विदेशी प्रभावकी कल्पना कर लेना बहुत बड़ा भ्रम है।

इन सारी विवेचनाओंका यह उद्देश्य नहीं है कि दाक्षिणात्य-पद्धतिका हिन्दुस्तानी-पद्धतिकी अपेक्षा हीन सिद्ध किया जाये। दाक्षिणात्य पद्धतिका प्रसंग इसलिए उठाया गया है कि बहुधा इसकी तुलना हिंदुस्तानी पद्धतिसे की जाती है। यों तो सभी पद्धतियोंकी अपनी अपनी विशेषता होती है और प्रत्येक पद्धतिके माननेवालोंकी रुचि उसी पद्धतिके अनुरूप बन जाती है। हिंदुस्तानी-पद्धतिकी विशेषताओंसे यह सिद्ध होता है कि इस पद्धतिमें वैज्ञानिकता अधिक यथेष्ट है और इसकी परम्परा शुद्ध भारतीय है।



उदाहरण-ग्रन्थ

१ Tyndall—Sound
२ Richardson—Sound
३ Barton—Sound
४ A. [redacted] Wood—A Text book of Sound
५ A Wood—Sound waves and their uses
६ Miller—Musical Sound
७ Helmholtz—Sensation of Tones
(Translation by Ellis)
८ Jeans——Science and Music
९ M H Statham—What is Music ?
१० Sedly Taylor—Sound and Music
११ Pictro Blaserna—The Science of Music
१२ Ranade—Hindusthani Music
१३ Raman—Musik instrumante und Ihre Klange (Hand Buch Der Thysik pp 361)
१४ Darwin—Descent of man
१५ James Jeans—Science and Music
१६ Fox Strangways—Music of Hindustan
१७ Alain Dane'lou—Introduction of the Study of Musical Scales
१८ M S Ramswami—Ed स्वरमेल कलानिधि by रामामात्य (Introduction)

१९ T R Srinivas Ayyangar—Ed सग्रहचूडामणि by गोविन्द (Introductian)
२० C Subrahmanya Ayyar—The Grammar of South Indian (Karnatic) Music
२१ N S Ramchandran—The Ragas of Karnatic Music
२२ Bhavarnav A Pingle—Indian Music
२३ Atiya Begum Fyzee Rahmin—The Music of India
२४ भरत—नाटयशास्त्र ।
२५ शाङ्गदेव—सगीत रत्नाकर ।
२६ रामामात्य—स्वरमेल कलानिधि ।
२७ सोमनाथ—रागविबोध ।
२८ दामोदर—सगीत दर्पण ।
२९ अहोबल—सगीत-पारिजात ।
३० श्रीनिवास—रागतत्त्व विबोध ।
३१ चतुर पण्डित (वि० ना० भातखण्डे)—लक्ष्य-सगीत ।
३२ मुरारीप्रसाद—हिंदुस्तानी सगीत प्रवेशिका ।
३३ वि० ना० भातखण्डे—हिंदुस्तानी सगीत पद्धति भाग १–४ (मराठी) ।
३४ भा० सी० सुकथनकर—हिंदुस्तानी सगीत-पद्धति (क्रमिक पुस्तकमालिका भाग १–६) ।

उदाहरण-लेख

१ R N Ghosh—Musical Drums Phys Rev Oct 1922

२ R N Ghosh—Indian Drums Phil mag Feb 1923

३ K C Kar—Dynamical Theory of the Bridge of Certain Class of Stringed Instruments Phy Rev 1923

४ D G Gunnaiya and G Subramanya—Vibration of String under Intermittent Impulses Phy Rev 1925

५ G P Dwivedi—Tantra in Indian Music The Sunday Leader—
Oct 21 1945
Nov 4 1945
Dec 16 1945
March 10, 1946

६ V N Bhatkhande—A short Historical Survey of the Music of Upper India (A speech at the First All India Music Conference, 1916)

परिशिष्ट २

[क] ७२ बृहन्मेलकर्ता (वेंकटमखी)

नीचे ६ चक्रोंमें वेंकटमखीके ७२ मेलकर्त्ता दिये जाते हैं। इनके नाम महावैद्यनाथ शिवनके 'मेल रागमालिका' के अनुसार हैं। सारिणीके बीचमें स्वरप्रबन्ध, हिन्दुस्तानी स्वर नाम दिये गये हैं जिनके बायें शुद्ध मध्यमवाले पूर्वमेलके और दायें तीव्र-मध्यमवाले उत्तरमेलके नाम हैं।

क्रमांक	पूर्वमेल 'म'	स्वर प्रबन्ध	उत्तरमेल 'म''	क्रमांक
		चक्र १		
१	कनकांगी	स र् र म (म') प ध ध स	सालग	३७
२	रत्नांगी	स र् र म (म') प ध् न स	जलार्णव	३८
३	गानमूर्त्ति	स र र म (म') प ध न स	झालवराली	३९
४	वनस्पति	स र र म (म) प ध न् [illegible]	नवनीतम	४०
५	मानवती	स र् र म (म') प ध न स	पावनी	४१
६	तानरूपि	स र् र म (म') प न् न स	रघुप्रिया	४२
		चक्र २		
७	सनावती	स र् ग् म (म') प ध् ध स	गवाम्भोधि	४३
८	हनुमत्टोडी	स र् ग म (म') प ध न स	भवप्रिया	४४
९	धेनुक	स र् ग म (म) प ध् न सं	शुभपन्तुवराली	४५
१०	नाटकप्रिया	स र् ग् म (म') प ध न स	षड्विधमार्गिणी	४६
११	कोकिलप्रिया	स र ग् म (म') प ध न स	सुवर्णांगी	४७
१२	रूपावती	स र् ग म (म') प न न स	दिव्यमणी	४८

चक्र ३

क्रमांक	पूर्वमेल 'म	स्वर प्रबंध	उत्तरमेल 'म''	क्रमांक
१३	गायकप्रिया	स र् ग म (म') प ध् ध स	धवलाम्बरी	४९
१४	वकुलाभरण	स र् ग म (म') प ध् न स	नामनारायणी	५०
१५	मायामाल्वगौडा	स र् ग म (म') प ध न स	कामवर्धनी	५१
१६	चक्रवाक	स र् ग म (म') प ध न स	रामप्रिया	५२
१७	सूर्यकान्त	स र् ग म (म') प ध न स	गमनश्रम	५३
१८	हाटकाम्बरी	स र् ग म (म') प न न स	विश्वम्भरी	५४

चक्र ४

क्रमांक	पूर्वमेल 'म	स्वर प्रबंध	उत्तरमेल 'म''	क्रमांक
१९	झंकारध्वनि	स र ग म (म') प ध ध स	श्यामलांगी	५५
२०	नटभैरवी	स र ग म (म) प ध् न् स	षण्मुखप्रिया	५६
२१	कीरवाणी	स र ग् म (म') प ध् न स	सिंहेन्द्रमध्यम	५७
२२	खरहरप्रिया	स र ग म (म') प ध न् स	हेमवती	५८
२३	गौरीमनोहारी	स र ग् म (म') प ध न [illegible]	धर्मवती	५९
२४	वरुणप्रिया	स र ग म (म') प न न स	नीतिमती	६०

चक्र ५

क्रमांक	पूर्वमेल 'म	स्वर प्रबंध	उत्तरमेल 'म''	क्रमांक
२५	माररजनी	स र ग म (म') प ध ध स	कान्तामणि	६१
२६	चारुकनी	स र ग म (म') प ध् न स	ऋषभप्रिया	६२
२७	सुरसांगी	स र ग म (म') प ध न स	लतांगी	६३
२८	हरिकाम्बोजि (हरिकाम्भाजि)	स र ग म (म') प ध न स	वाचस्पति	६४
२९	धीरशंकराभरण	स र ग म (म') प ध न स	मेचकल्याणी	६५
३०	नागानन्दिनी	स र ग म (म') प न न स	चित्राम्बरी	६६

चक्र ६

क्रमांक	पूर्वमेल 'म	स्वर प्रबंध	उत्तरमेल 'म''	क्रमांक
३१	यागप्रिया	स ग् ग म (म') प ध ध स	सुचरित्र	६७
३२	रागवर्धनी	स ग् ग म (म') प ध् न स	ज्योतिस्स्वरूपिणी	६८
३३	गांगेयभूषणी	स ग् ग म (म') प ध न स	धातुवर्धनी	६९
३४	वागधीश्वरी	स ग् ग म (म') प ध न स	नासिकाभूषणी	७०
३५	शूलिनी	स ग् ग म (म) प ध न स	कोसल	७१
३६	चलनाट	स ग ग म् (म') प न् न स	रसिकप्रिया	७२

चक्र ३

क्रमांक	पूर्वमेल 'म'	स्वर प्रबंध	उत्तरमेल 'म''	क्रमांक
१३	गायकप्रिया	स र ग म (म') प ध् ध स	धवताम्बरी	४९
१४	वकुलाभरण	स र् ग म (म') प ध् न् स	नामनारायणी	५०
१५	मायामालवगौडा	स र ग म (म') प ध न स	कामवर्धनी	५१
१६	चक्रवाक	स र् ग म (म') प ध न स	रामप्रिया	५२
१७	सूर्यकांत	स र् ग म (म') प ध न स	गमनश्रम	५३
१८	हाटकाम्बरी	स र् ग म (म') प न न स	विश्वम्भरी	५४

चक्र ४

क्रमांक	पूर्वमेल 'म'	स्वर प्रबंध	उत्तरमेल 'म''	क्रमांक
१९	झंकारध्वनि	स र ग म (म') प ध ध स	श्यामलांगी	५५
२०	नटभरवी	स र ग म (म) प ध् न् स	षण्मुखप्रिया	५६
२१	कीरवाणी	स र ग् म (म') प ध् न स	सिंहेंद्रमध्यम	५७
२२	खरहरप्रिया	स र ग म (म) प ध न् स	हेमवती	५८
२३	गौरीमनोहारी	स र ग् म (म') प ध न सं	धर्मवती	५९
२४	वरुणप्रिया	स र ग् म (म) प न न स	नीतिमती	६०

चक्र ५

सं०	मेलराग नाम	स्वर		
२५	मारंजनी	स र ग म (म॑) प ध ध सं	[illegible]	[illegible]
२६	चारुकेशी	स र ग म (म॑) प ध ध सं	[illegible]	[illegible]
२७	सरसांगी	स र ग म (म॑) प धृ ध सं	[illegible]	[illegible]
२८	हरिकाम्बोजि (हरिकाम्भोजि)	स र ग म (म॑) प ध नृ सं	[illegible]	[illegible]
२९	धीरशंकराभरण	स र ग म (म॑) प ध न सं	[illegible]	[illegible]
३०	नागानन्दिनी	स र ग म (म) प ध न सं	[illegible]	[illegible]

चक्र ६

सं०	मेलराग नाम	स्वर		
३१	यागप्रिया	स ग़ ग म (म॑) प ध़ ध सं	[illegible]	[illegible]
३२	रागवर्धनी	स ग़ ग म (म॑) प धृ नृ सं	[illegible]	[illegible]
३३	गांगेयभूषणी	स ग़ ग म (म॑) प ध़ न सं	[illegible]	[illegible]
३४	वागधीश्वरी	स ग़ ग म (म॑) प ध नृ सं	[illegible]	[illegible]
३५	शूलिनी	स ग़ ग म (म॑) प ध न सं	[illegible]	[illegible]
३६	चलनाट	स ग़ ग म़ (म॑) प नृ न सं	[illegible]	[illegible]

[ख] लघु मेलकर्ता (रामस्वामी)

क्रमांक	पूर्वमेल 'म'	स्वर प्रबंध	उत्तरमेल 'म''	क्रमांक
१	टोडा	स र ग म (म') प ध न स	भावप्रिया	१७
२	धनुका	स र ग् म (म) प ध न स	शुभपंतुवराडा	१८
३	नाटकप्रिया	स र् ग म (म) प ध न स	पडविधमागनी	१९
४	कोकिलप्रिया	स र ग म (म') प ध न स	स्वर्णांगी	२०
५	वकुलाभरण	स र ग म (म) प ध् न स	रामनारायणी	२१
६	मायामालवगौडा	स र् ग म (म') प ध न स	कामवधनी	२२
७	चक्रवाक	स र ग म (म') प ध न स	रामप्रिया	२३
८	सूर्यकान्त	स र ग म (म') प ध न स	गमनप्रिया	२४
९	नटभरवी	स र ग म (म') प ध न स	षणमुखप्रिया	२५
१०	गिर्वाणी	स र ग् म (म') प ध न स	सिंहेंद्रमध्या	२६
११	खरहरप्रिया	स र ग् म (म') प ध न स	हेमवती	२७
१२	गौरीमनोहारी	स र ग् म (म) प ध न स	धमवती	२८
१३	चारुकेशी	स र ग म (म') प ध न् स	ऋषभप्रिया	२९
१४	सरसांगी	स र ग म (म) प ध् न स	लतांगी	३०
१५	हरिकाम्भोजी	स र ग म (म') प ध न स	वाचस्पति	३१
१६	शंकराभरण	स र ग म (म) प ध न स	मेचकल्याणी	३२

परिशिष्ट २

(क) शिक्षा—

षड्जं वदति मयूरो गावो रम्भन्ति चर्षभम् ।
अजा वदति गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ॥
पुष्पसाधारणे काले कोकिलो वदति पञ्चमम् ।
अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः ॥
—नारदी शिक्षा ।

षड्जो वेद शिखण्डी स्याद्वृषभः स्याद्गवामुखे ।
गावो रम्भन्ति गान्धारं क्रौञ्चाश्चैव तु मध्यमम्॥
कोकिलः पञ्चमो ज्ञेयो निषादं तु वदेद्गजः ।
अश्वश्च धैवतो ज्ञेयो स्वराः सप्तविधा मताः ॥
—याज्ञवल्क्य शिक्षा ।

(ख) भरत—

(१) षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा ।
पञ्चमो धैवतश्चैव सप्तमश्च निषादवान् ॥
चतुर्विधत्वमेतेषां विज्ञेयं श्रुतियोगतः ।
वादी चैवाथ संवादी ह्यनुवादी विवाद्यपि ॥
(२) संवादो मध्यमग्रामे पञ्चमस्यर्षभस्य च ।
षड्जग्रामे च षड्जस्य संवादः पञ्चमस्य च॥
(३) अन्तरस्वरसंयोगो नित्यमारोहिसंश्रयः ।
कार्यस्त्वल्पो विशेषेण नावरोही कदाचन ॥
(४) —द्वे वीणे तुल्यप्रमाणतन्त्र्युपवादनदण्डमूर्च्छने षड्ज
ग्रामाश्रिते कार्ये । तयोरन्यतरां मध्यमग्रामिकीं कुर्यात् । पञ्च
मस्यापकर्षे तामेव पञ्चमस्य श्रुत्युत्कर्षवशात् षड्जग्रामिकीं

कुर्यात् । एवं श्रुतिरपकृष्टा भवति । पुनरपि तद्वेवापकर्षात् गान्धारनिषादावपि इतरस्या धैवतपमौ प्रविशतः श्रुत्यधिकत्वात् । पुनस्तद्वेवापकर्षाद्धैवतर्षभावितरस्या पञ्चमषड्जौ प्रविशतः श्रुत्यधिकत्वात् । तद्वत्पुनरपकृष्टायां तस्यां पञ्चम मध्यमषड्जा इतरस्या मध्यमनिषादगान्धारवन्तः प्रवेक्ष्यन्ति चतुःश्रुत्यधिकत्वात् । एवमनेन श्रुतिदर्शनविधानेन ग्रामिक्यो द्वाविंशति श्रुतयः प्रत्यवगन्तव्या ।

(भरतनाट्यशास्त्र अट्ठाविंशोऽध्याय)

(च) द्विकत्रिकचतुष्कास्तु ज्ञेया वैणास्वराः ।
कम्पिता ह्यङ्गुल्याश्च न्यक्षमुक्तास्तथैव च ॥
× × ×
स्वराणां च श्रुतिस्तत्र तच्च मे सन्निबोधत ।
न्यक्षमुक्ताङ्गुलिस्तत्र स्वरो ज्ञेयश्चतुःश्रुतिः ॥
कम्पमानाङ्गुलिश्चैव त्रिश्रुतिश्च स्वरो भवेत् ।
द्विकोऽधाङ्गुलिमुक्तस्तु एव श्रुत्याश्रिता स्वराः ॥

(भ०ना०—त्रिंशोऽध्याय ।)

(ग) शार्ङ्गदेव—

(१) गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं सङ्गीतमुच्यते ।
मार्गो देशीति तद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते ॥
यो मार्गितो विरिञ्च्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः ।
देवस्य पुरतः शम्भोर्नियताभ्युदयप्रदः ॥
देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरञ्जकम् ।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते ॥

(२) नादोऽतिसूक्ष्मः सूक्ष्मश्च पुष्टोऽपुष्टश्च कृत्रिमः ।
इति पञ्चविधां धत्ते पञ्चस्थान स्थितः क्रमात् ॥

(३) व्यवहारे स्वसौ त्रेधा हृदि मन्द्रोऽभिधीयते ।
कण्ठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तर ॥

(४) रिमया श्रुतिमकैका गा धारश्चे ममाश्रित ।
पश्रुति धो निपान्तु घश्रुति मश्रुति श्रित ॥

(५) अधस्तनैर्निषादाद्यै षडन्या मूर्छना क्रमात् ।
मध्यमध्यममारभ्य सौवीरी मूर्छना भवेत् ॥
षडन्यास्त न्धाऽधम्यस्वरानारभ्य तु क्रमात् ।
षडनस्थानस्थितैन्याद्यै रपन्याद्या पर विद् ॥

(६) श्रुत्य तरभावी य स्निग्धोऽनुरणनात्मक ।
स्वत रञ्जयति श्रोतृचित्त स स्वर उच्यत ॥

(७) मयूरचातकच्छागक्रौञ्चकोकिलदर्दुरा ।
गजश्च सप्तषड्जादीन् क्रमादुच्चारयन्त्यमो ॥

(८) व्यक्तहे तुमह तासा वीणाद्वन्द्वे निदर्शनम् ।
द्वे वीणे सदृश कार्ये यथा नादे समो भवेत् ॥
तयाद्वाविंशतिस्तन्त्र्य प्रत्यक तासु चादिमा ।
कार्या म न्द्रतमध्वाना द्वितीयाद्य वनिमनाक् ॥
स्यान्निरन्तरता श्रुत्योमध्य ध्वन्यन्तरा श्रुत ।
(सङ्गीतरत्नाकर-अध्याय १, प्रकरण २–४)

(घ) रामामात्य—

(१) दर्शारागाश्च सकला षड्जग्रामसमुद्भवा ।
म्रहादान्यामम न्द्रादि पादर्वाङ्गपूर्वका ॥

(२) अन्तरस्य च काकल्या प्राह प्रतिनिधिक्रमात् ।
च्युतमध्यमगा धारश्च्युतषड्जनिपादक ॥ ४४ ॥

(३) स्वयमुव स्वरा होत न स्वबुद्ध्या प्रकल्पिता ॥
तस्मात्प्रमाणयुक्तम्न कर्तुं मार्गो निरूप्यते ।
श्रुतयो द्वादशाद्यै वा ययोरन्तरगोचरा ॥ ४५ ॥

मिथ सवादिनौ तौ तु स्वरौ सवत्र योनयत् ।
एव स्वनास्यप्रोक्तो मार्गोऽय सम्प्रदर्शित ॥४६॥
स्वरप्रमाणता कर्तुं मार्गान्तरमथोच्यते ।
चतुर्थत न्त्या सभूत शुद्धोऽय मन्द्रपञ्चम ॥४७॥
द्वितीयाया सारिकायां स्वयभूरिति कथ्यते ।
तस्माद्द्वितीयसार्यां य जाता सर्वेऽपि ते स्वरा ॥४८॥
स्वयभुव प्रमाणात्या कर्तुं शक्या न चान्यथा ।
द्वितीयसाया जातस्य मन्त्या चापि द्वितीयया ॥४९॥
अनुमन्द्रस्य शुद्धस्य निपादस्य प्रमाणत ।
चतुर्थसार्यां सजात तन्त्या चापि तुरीयया ॥५०॥
मन्द्रे शुद्धनिपादाख्य सप्रमाणे कृते सति ।
चतुर्थसार्यां सजाता स्वरा सर्वे स्वयभुव ॥५१॥
प्रमाणयुक्ता अनापि न शक्या कर्तुमन्यथा ।
तुरीयसाया तन्त्या तु सजातस्य द्वितीयया ॥५२॥
च्युतपड्जनिपादस्य चानुमन्द्रप्रमाणत ।
पष्ठसार्यां तन्त्रिस्या चतुर्थ्या जनिते स्वर ॥५३॥
च्युतपड्जनिपादाख्य मन्द्रे मानयुत कृत ।
पष्ठसार्यां समुत्पन्ना स्वरा सर्वे स्वयभुव ॥५४॥
प्रमाणयुक्ता शक्यन्ते नान्यथा कर्तुमञ्जसा ।
पञ्चम्या सारिकाया तु पड्जमध्यमसञ्ज्ञात् ॥५५॥
तज्जाना प्रभवाश्च (?) त सर्वे स्यु स्वयभुव ।
पञ्चम्यां सारिकायां तु तन्त्या जातस्य तुर्यया ॥५६॥
मन्द्रस्य कैशिकाख्यस्य निपादस्य प्रमाणत ।
तृतीयाया सारिकाया जात तन्त्रा द्वितीयया ॥५७॥
अनुमन्द्रे कैशिकाख्ये निपादे मानसयुत ।
कृते सति तदुद्भूता स्वरा सर्वे स्वयभुव ॥५८॥

तृतीयायां सारिकायां सञ्जातस्य तुरीयया ।
तन्त्र्या मन्द्रस्य शुद्धस्य धैवतस्य प्रमाणतः ॥५९॥
आद्या सार्या समुद्भूते तन्त्र्या चापि द्वितीयया ।
अनुमन्द्रामिधे शुद्धे धैवते मानयोगिनि ॥६०॥
कृत सति समुत्पन्ना सर्वे प्रामाणिका स्वराः ।
अयं प्रकारः सारीषु षट्सूत्पन्नस्वरावले ॥६१॥
प्रमाणनिर्णयकृते रामामात्येन दर्शितः ।

(स्वरमेलकलानिधि तृतीय प्रकरण)

(ध) सोमनाथ—

द्वादशविकृता पूर्वे वदन्ति तत्र तु पृथक् पृथग्ध्वनितः ।
सप्तैव स्युर्मिश्रा न पञ्च यदिस समध्वनयः ॥२५॥
स्वान्त्यश्रुतावुपान्त्यश्रुतौ च सति पञ्चमः क्रमात् स स्यात् ।
किन्तु विकारो द्वयोर्न पञ्चम तदिह स प्रथमः ॥२६॥

(रागविबोध अध्याय १)

(छ) वेंकटमखी—

(१) षड्जस्वरस्य पुरतश्चत्वारः क्रमशः स्वराः ।
ऋषभाख्यानकाः कश्चिद्गान्धाराख्यानकाश्च तः ॥२॥
तत्राद्यो नैव गान्धारश्चतुर्थो ऋषभो न हि ।
ऋषभाख्यौ गान्धारौ द्वितीयकतृतीयकौ ॥ ३ ॥
तृतीय वा चतुर्थं व्यपेक्ष्य स्याद्द्वितीयकः ।
ऋषभाख्यः स एव स्याद्गान्धारोऽपेक्ष्य चाग्निमम् ॥४॥
तृतीयो ऋषभाख्यानश्चतुर्थापेक्षया भवेत् ।
स हि व्यपेक्ष्य गान्धारः प्रथमं वा द्वितीयकम् ॥५॥
एवं च सति निष्पन्नः द्वितीयकतृतीययोः ।
गान्धारत्व च ऋषभत्व भूयसिश्यर निर्णयः ॥६॥

तस्मादाद्यद्वितीयौ च तृतीयश्चषभा मता ।
तत्राद्यो गौडऋषभ श्रीरागऋषभ पर ॥७॥
तृतीयो नाटऋषभ इति लक्ष्यविदा मतम् ।
आद्य शुद्धषभ पञ्चश्रुतिकषभसञ्ज्ञक ॥८॥
द्वितीयश्च तृतीय षट्श्रुतिकषभ उच्यते ।
लक्षणज्ञैस्तयोस्तास्त त्रयो रिरिसञ्ज्ञका ॥९॥
द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थश्च त्रय स्वरा ।
सामान्यत स्युर्गान्धारास्तेष्वाद्यो लक्ष्यवेदिभि ॥१०॥
प्रोक्त मुखारिगान्धारो द्वितीयो भैरवाश्रुत ।
गान्धारोऽथ तृतीयस्तु गौडगान्धार उच्यते ॥११॥
लक्षणज्ञैस्तु तत्राद्य शुद्धगान्धार उच्यते ।
साधारणाख्यगान्धारो द्वितीय परिकीर्तित ॥१२॥
तृतीयोऽन्तरगान्धार इत्यह तु वदामि तान् ।
क्रमाद्गरिगुनाम्नस्त्रीन् मत्प्रस्तारसिद्धय ॥१३॥
एव च षड्जात् पुरत निवसन्तु चतुर्ष्वपि ।
स्वरेषु प्रथमादित्रितय ऋषभनामकम् ॥१४॥
गान्धारस्य द्वितीयादित्रयमित्यत्र निर्णय ।
चतुर्ष्वेतेषु जानस्य रिरिव्याख्यानशालिन ॥१५॥
गान्धारत्रितयस्यापि पूर्वाङ्कारव्या मया कृता ॥१६॥

(२) नियमेनैव सग्राह्य षड्जस्तत्पुरत क्रमात् ।
विद्यमानेषु चतुर्षु स्वरेष्वन्यतरावुभौ ॥४६॥
तत्रर्षभ पूर्वभवो गान्धारस्त्वनुगो भवेत् ।
द्वयोर्मध्यमयोरेक सग्राह्यो मध्यमो भवेत् ॥४७॥
नियमेन हि सग्राह्य पञ्चमस्तत्पुर स्थिता ।
स्वरा क्रमेण चत्वारस्तेषु चान्यतरावुभौ ॥४८॥

सग्राह्य पूर्वंजातोऽत्र धैवत परिकीर्तित ।
पश्चाद्भवो निषाद स्यादिति सप्त स्वराश्च ये ॥४९॥
तथा च मल्न मल्लो गीतवद्भि प्रकीर्तित ।
भेदा द्विसप्ततिस्तस्य भवन्त्यस्माभिरीरित ॥५०॥
यनोपायेन मल्लास्ते द्विसप्ततिरिति स्फुटम् ।
तमुपाय प्रवक्ष्यामि लक्ष्यलक्षणतुल्यय ॥५१॥
रगौ रगी रगू चैव रिगी रिगू रगू तथा ।
षड्भेदा इति पूर्वाङ्गे द्रष्टव्या गीतकोविदै ॥५२॥
धनौ धनी धनू चैव धिनी धिनू धुनू तथा ।
उत्तराङ्गेऽपि षड्भेदा द्रष्टव्या गीतकोविदै ॥५३॥
पूर्वाङ्गगतषड्भेदा षड्जाद्या स्तु पृथक् पृथक् ।
उत्तराङ्गस्थषड्भेदा पञ्चमाद्या पृथक् पृथक् ॥५४॥
आद्य पूर्वाङ्गगो भेद उत्तराङ्गस्थितै क्रमात् ।
योज्यत यदि षड्भेदै षण्मला समवन्त्यत ॥५५॥
पूर्वाङ्गस्य द्वितीयोऽपि भेदस्तनैव वत्मना ।
संयोज्यते यदि तदा षण्मेला समवन्त्यत ॥५६॥
एव तृतीयो भेदोऽपि षण्मलोत्पादको भवेत् ।
चतुर्थोऽपि तथैव स्यात्पञ्चमोऽप्येवमव हि ॥५७॥
एव षष्ठोऽपि विज्ञेय षण्मलोत्पत्तिकारणम् ।
अत पूर्वाङ्गभेदाना षण्णामपि पृथक् पृथक् ॥५८॥
उत्तराङ्गस्थितै षड्भिर्भेदै संयोजने कृत ।
षट्षण्मलप्रकारेण मेला षट्त्रिंशदागता ॥५९॥
षट्त्रिंशन्मलकल्पेषु प्रतिमल च मध्यम ।
मसज्ञा यदि मध्य स्यात् पूर्वमेलाभिधास्तदा ॥६०॥
एतष्वेव तु षट्त्रिंशन्मलेषु प्रतिमलकम् ।
मसज्ञमध्यमस्थान मिसज्ञा यदि मध्यम ॥६१॥

निवेश्यत तदा तेषा भवेदुत्तरमन्वता ।
द्वयरमाभि समुन्नीता जाता मल्ल्ह्निसप्तति ॥६२॥

(३) प्रसिद्धा पुनरत्पु मन्ना कतिचिदव हि ।
दृश्यन्त न तु सर्वेऽपि तन तल्लस्पन वृथा ॥८१॥
यत्स्नागौरवन्यायादिति चेदिदमुच्यते ।
अनन्ता खलु दशास्तद्देशस्था अपि मानवा ॥८२॥
तपु सगातिकैरचावचसगातकोविदै ।
य कल्पयिष्यमाणाश्च कल्प्यमानाश्च कल्पिता ॥८३॥
अस्मदादिभिरज्ञाता ये च शास्त्रैरगोचरा ।
ये च दशायरागास्तद्रागसामान्यमल्का ॥८४॥
ये न पन्तुवराद्यास्यकल्याणिप्रमुखा अपि ।
नाना देशीयरागास्तद्रागसामान्यमल्कान् ॥८५॥
सप्रदीत समुन्नीता एते मला द्विसप्ततिं ।
ततश्चैतपु वैयर्थ्यशङ्का किं कारण भवेत् ॥८६॥

(चतुर्दण्डी प्रकाशिका—प्रकरण ४)

(४) परमो गुरुरस्माक तानप्पाचार्यशेखर ।
सर्वेषामपि रागाणामतद्धस्मानुसारत ।
ठाया प्रकल्पयामास रहस्यमस्य तदव स ॥ ७ ॥

(चतु०—प्र० ७)

(५) मासते श्रुतिरित्यादि स्वरालौत्रिपुटादिषु ।
अहमव श्रुतीर्वेदयाह गोपालनायक ।
अद्यप्रभृति ता सर्वे श्रुतीर्जानन्तु पण्डिता ॥५७॥

(चतु०—प्र० २)

गीतप्रबन्धयोरव भेदो यदि न कल्प्यत ।
कुत सिद्ध्येच्चतुर्दण्डी कुना गोपालनायक ॥५॥

(चतु०—प्र० ९)

(ज) अहोबल—

ध्वन्यवच्छिन्नवीणाया मध्ये तारस्य स्थितः ।
उभयोः षड्जयोर्मध्ये मध्यमं स्वरमाचरेत् ॥
त्रिभागात्मकवीणायां पञ्चमः स्यात्तदग्रिमे ।
षड्जपञ्चमयोर्मध्ये गान्धारस्य स्थितिर्भवेत् ॥
सपयोः पूर्वभागे च स्थापनीयोऽथ रिस्वरः ।
सपयोर्मध्यदेशे तु धैवतं स्वरमाचरेत् ॥
धत्रातद्वयसस्याग्रे निषादस्य स्थितिर्भवेत् ॥

(संगीत-पारिजात)

(झ) श्रीनिवास—

भागत्रयान्विते मध्ये मरौ ऋषभमध्यितात् ।
भागद्वयोत्तरे मरौ कुर्यात् कोमलरिस्वरम् ॥
मधैवतयोर्मध्ये तीव्रगान्धारमाचरेत् ।
भागत्रयविशिष्टेऽस्मिन् वामगान्धारषड्जयोः ॥
पूर्वभागोत्तरे मध्ये म तीव्रतरमाचरेत् ।
भागत्रयान्विते मध्ये पञ्चमोत्तरषड्जयोः ॥
कोमलधैवतं स्थाप्य पूर्वभागे विवेकिभिः ॥
तथैव धसयोर्मध्ये भागत्रयसमन्विते ।
पूर्वभागद्वयादूर्ध्वं निषादं तीव्रमाचरेत् ॥

(रागतत्त्व विबोध)

(ट) भावभट्ट—

पूर्वान्त्ययोश्च मन्द्राश्च मध्ये तारकसः स्थितः ।
तदर्धे ध्वनितारस्य सस्वरस्य स्थितिर्भवेत् ॥
मध्यस्थानादिमषड्जमारभ्यातारषड्जकम् ।
सूत्रं कुर्यात्तदर्धे तु स्वरं मध्यममाचरेत् ॥

भागत्रयसमायुक्त तत्सूत्र कारित भवेत् ।
पूर्वभागद्वयादग्रे स्थापनीयोऽथ पञ्चम ॥
षड्जपञ्चमग सूत्रमशत्रयसमन्वितम् ।
तत्राशद्वयसत्यागात् पूर्वभागे तु रिर्भवेत् ॥
पञ्चमोत्तरषड्जाख्यमध्ये धैवतमाचरेत् ।
यथा शुद्धपमस्यासौ प्रस्फुट पञ्चमो भवेत् ॥
मन्द्रधैवतयोर्मध्ये तारगान्धारमाचरेत् ।
तत्सवादिनिषादाख्य षड्जधैवतयो क्षिपेत् ॥
मध्ये षड्जपमकयो सस्थित कोमलपंम ।
षड्जपञ्चमभावेन तत्सवादी धकोमल ॥
षड्जपञ्चमयोर्मध्ये गान्धार कोमलो भवेत् ।
मध्यपञ्चमयोर्मध्ये तीव्रमध्यममाचरेत् ॥
मपयोर्मध्यभागे स्याद्भागत्रयसमन्विते ।
पूर्वभागद्वयादग्रे निषाद कोमलो भवेत् ॥

(अभिनव-रागमञ्जरी)

परिशिष्ट ३

इजिप्ट (मिश्र) के आधुनिक स्वर और मेल

नीचे दी हुई सारिणीके स्वर-मान मोखतार और मोशवफा-द्वारा वैज्ञानिक विधिसे निर्धारित किये गये हैं ।[1]

क्रमांक	स्वर-सज्ञा	अन्तराल		आवर्त्तकस्वर		स्वर-सज्ञा
	(मिश्र)	दशमलव	सवट	(सेवट)		हिन्दुस्तानी
१	रास्त	१	०	०	स	स
२	शाहनबाज़	१ ०५७	२४ १			ऱ्
३	दोका	१ १२३	५० ३	५१	र	र
४	कुर्द	१ २००	७९ २			ग
५	सोका	१ २२८	८९ २ }	९७		ग
६	मीमबुसालीक	१ २७४	१०५ २ }		म	ग (१२०
७	गिरका	१ ३३०	१२३ ९	१२५	म	म
८	हजाज़ या साहा	१ ४१७	१५१ ३			म (१४३)
९	नवा	१ ४९८	१७५ ६	१७६	प	प
१०	हिसार	१ ५९०	२०१ ४			धृ
११	हुसनी	१ ६८५	२२६ ६	२२२	ध	ध' (२२७)
१२	अगनू	१ ७७९	२५० २			न
१३	ईकार	१ ८३१	२६२ ७			नृ
१४	नाम माहुर	१ ८८०	२७४ २	२७३	न	न
१५	गवाब एत रास्त	२ ०००	३०१ ०	३०१ ०	स	स

१ Mo des in Modern Egyptian Music—M Mokh tar and M Moshawala Nature September 25, 1937

इन १४ स्वरोंमें-से ४ मेल तयार होते हैं, जैसे —

(१) १, ३, ५, ७ ९, ११, १३ ।
(२) ३, ४, ८, ९, ११, १३, १ ।
(३) ३, ५, ७, ८, ११, १२, १ ।
(४) १, ३, ४, ७, ९, १० १४ ।

परिशिष्ट ४

अरबी-फ़ारसी स्वर-ग्राम और मेल*

१ नीचे अरबी-फ़ारसी स्वर ग्रामके १७ स्वर दिये जाते हैं जो अब्दुल क़ादिर (१४वीं सदी) के निर्धारित किये हुए हैं। ये फ़राबी (मृत्यु ९५० ई०) और मुहम्मद शीराज़ी (मृत्यु १३१५ ई०) के बताये हुए स्वरोंसे मिलते हैं। इन स्वरोंकी संज्ञाएँ हिन्दुस्तानी रखी गयी हैं। स्वरोंके नीचे क्रमशः सेवट और भिन्नमें मान दिये गये हैं।

(१) स — (२) रे — (३) रे₁ ⌣ (४) रे —
०,१ — २२ २५६/२४३ — ४६, १०/९ — ५१, ९/८

(५) ग — (६) ग₁ ⌣ (७) ग — (८) म —
७४, ३२/२७ — ९७, ५/४ — १०२, ८१/६४ — १२५, ४/३

(९) प(म′)—(१०) प₁ (म″)⌣(११) प — (१२) ध —
१४८, ४५/३२ — १७१, ४०/२७ — १७६, ३/२ — १९९, १२८/८१

(१३) ध₁ ⌣ (१४) ध — (१५) न —— (१६) न₁ —
२२२, ५/३ — २२७ २७/१६ — २५०, १६/९ — २७३, १५/८

(१७) सं₁ ⌣ (१८) सं।
२९६, १६०/८१ — ३०१,२

संकेत—

(१) दो स्वरोंके बीच '—' का अर्थ है 'लीमा' (२३ सवट) का अन्तराल।

---

* Sensation of Tones—Helmholtz Trans Ellis

(२) दो स्वराक बीच '⌣' का अर्थ ह कोमा (५ सेवट) का अन्त राल । ठीक ठीक यह पायथागोरसका कामा है जो कोमा डाय सिस (५ सवट) स कुछ बडा ह ।

(३) जिन स्वराको दाहिनी ओर नीचे '१' अक लगा ह वे सच्चे आवतक स्वर हैं । ये पायथागोरसी स्वरांसे ५ सवर्ट उतरे हुए होते ह, जो यहाँ शुद्ध मान गये ह । असलमें '१' चिह्नवाले स्वर आवतक मानसे भी एक एक स्विस्मा (लगभग ५ से या ८८७।८८६) उतरे हुए ह पर यहाँपर इसे छोड दिया गया ह ।

२ इन १७ स्वरासे १२ मुकामात या मेल तयार होत हैं जिनमें-से ८ तो सात स्वरवाले हैं और ४ आठ स्वरवाले । नीचे इन १२ मेलाकी सारिणी दी जाती ह जिसमें स्वरोका मान दिया गया है । अतिम खानमें गान समय भी बताया गया है ।

मोकामात

क्रमांक	मेल के नाम	स्वर प्रबंध	गान समय
१	ईनाक	स र ग म प ध नृ स	सूर्यास्तके लगभग
२	नवा	स र ग म प धृ नृ स	आधीरात
३	बूसलीक	स रृ गृ म पृ धृ नृ सं	दोपहर बाद (दिन)
४	रास्त	स र$_1$ ग$_1$ म प ध$_1$ नृ सं	दोपहर
५	हुसनी	स र$_1$ गृ म प$_1$ धृ न स	सूर्योदयके ३घण्टे बाद
६	हजाज	स र$_1$ गृ म प$_1$ ध$_1$ न स	इस्फहानीके बाद
७	रहावी	स र$_1$ ग$_1$ म प$_1$ ध नृ स	सूर्योदय तक
८	जंगूला	स र ग$_1$ म प$_1$ ध$_1$ नृ स	सूर्योदयके ३घण्टे बाद
९	हराक	स र$_1$ ग$_1$ म प ध$_1$ न स$_1$ स	दोपहर तक
१०	इस्फहानी	स र ग$_1$ म प$_1$ ध$_1$ न स$_1$ सं	नवाके बाद
११	बुजग	स र ग$_1$ म प$_1$ प ध न$_1$ स	जगूलाके बाद
१२	बूजक	स र$_1$ गृ म प$_1$ धृ ध$_1$ न$_1$ स	सूर्यास्तसे ३घण्टे पूर्व

अनुक्रमणिका